महादेव प्रणीत
अद्भुतदर्पणम् नाटक का
समीक्षात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि

के लिए प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध
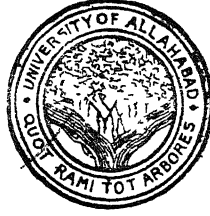
शोधकर्त्री

कु० अरुन्धती ओझा

निर्देशक

डॉ० राजेन्द्र मिश्र

प्रवाचक, संस्कृत विभाग, इ० वि० वि०

सम्प्रति

आचार्य एवं अध्यक्ष (संस्कृत विभाग)

हिमाचल प्रदेश वि० वि०, शिमला

संस्कृत-विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

अगस्त १९९२ ई०

पु - रो - वा - क्

संस्कृत साहित्य के विशाल वाङ्मय में रामकथा का अपना अलग वैशिष्ट्य है । वस्तुतः रामकथा भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा की आधारस्तम्भ है । भारतीय धर्म, दर्शन, सामाजिक सदाचार एवं राजनीतिक जीवन जैसे रत्नों की तो यह कोश है । यही कारण है कि इससे न केवल भारतीय जनजीवन को एक समृद्ध परम्परा प्राप्त हुई है अपितु विश्वमानवता को इसके प्रकाश में सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा भी मिली है ।

ऐतिहासिक दृष्टि से तो रामकथा वेदों के समकक्ष प्राचीन सिद्ध होती ही है साथ ही भौगोलिक दृष्टि से भी यह विश्व के अधिकांश भाग में व्याप्त रही है । पश्चिम में ईरान, अफगानिस्तान से लेकर सुदूर पूर्व में वियतनाम और इण्डोनेशिया तक रामायण संस्कृति का प्रभाव रहा है । आज भी बृहत्तर भारत के अनेक राष्ट्र में रामायणकालीन नगर, रामायणीय पात्रों के नाम तथा स्मृतिचिन्ह बड़ी सरलता से देखे जा सकते हैं । यह भी कम आश्चर्य नहीं कि भारत की ही तरह इन देशों का ऐतिहासिक स्रोत वहां की रामायण से ही फूटता है । सिंहलद्वीप का "रामकेत्ति", इण्डोनेशिया का "रामायण ककविन", थाइलैण्ड का "राम कियेन", मलेशिया का "सीरतराम" और लाओस का "फालक फालाम" जैसे रामकथात्मक ग्रन्थ इसी तथ्य को प्रमाणित करते हैं ।

अमेरिका, चीन और इण्डोनेशिया आदि में भारत के राजदूत रह चुके, प्रसिद्ध प्राच्यविद् "श्री पेराला रत्नम्" महोदय रामायण संस्कृति की इसी व्यापकता को देखकर "रामायण कॉमन वैल्थ" की स्थापना करना चाहते थे । राजनैतिक अवरोधों के कारण भले ही उनका स्वप्न पूरा नहीं हुआ फिर भी उनके विचारों की युक्तियुक्तता को चुनौती नहीं दी जा सकती है ।

रामकथा की परम्परा में जो ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध रहे उन पर प्रायः विद्वानों और शोधार्थियों की दृष्टि पड़ी है परन्तु परवर्ती परम्परा के कुछ ऐसे

ग्रन्थ अवश्य हैं जो कि साहित्यिक दृष्टि से पूर्वापेक्षया समधिक मूल्यवान होते हुए भी उपेक्षित रह गये हैं। इस उपेक्षा के मुख्यतः दो कारण हैं, एक तो इन ग्रन्थों का संस्कृत के ह्रासोन्मुख काल में लिखा जाना और दूसरा प्रसिद्ध साहित्यिक केन्द्रों से अलग-थलग होना। प्रायः ऐसा हुआ है कि सुप्रसिद्ध, प्रतापी राजाओं के आश्रय में लिखे गये ग्रन्थ बड़ी सरलता से कम ही समय में प्रचारित और प्रसारित हो गये किन्तु किसी छोटी रियासत में लिखे गये ग्रन्थ अन्धकार में ही पड़े रह गये।

महाकवि महादेव की अमर नाट्यकृति "अद्भुतदर्पणम्" के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ प्रतीत होता है। एक तो यह कवि सुदूर दक्षिण भारत का होने के कारण काशी, उज्जयनी, पाटलिपुत्र और विदिशा जैसे प्रसिद्ध साहित्य- केन्द्रों से जुड़ नहीं सका और दूसरी बात यह कि इस ग्रन्थ की रचना भी तब हुई जब कि संस्कृत के स्थान पर प्राकृत अथवा अन्य क्षेत्रीय भाषाएं प्रतिष्ठित होने लगी थीं। संस्कृत का वर्चस्व तो महाराज हर्ष के बाद ही क्षीण होने लगा था।

शोधकर्त्री ने इन्हीं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए रामकथा के इस अनूठे ग्रन्थ-रत्न को प्रकाश में लाने का संकल्प किया। यह एक साहित्यिक अध्ययन के साथ शोधात्मक अपेक्षा भी है क्यों कि भास, कालिदास, राजशेखर, मुरारि और भवभूति के रामकथापरक नाटकों का तो विश्लेषण विभिन्न विश्व-विद्यालयों में सैकड़ों बार हो चुका है,जबकि महाकवि महादेव की काव्य प्रतिभा के मूल्यांकन का अभी तक प्रयास भी नहीं हो पाया। इस प्रकार प्रस्तुत शोध-कार्य की अपेक्षा एवं औचित्य दोनों स्वतः सिद्ध हो जाते हैं।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में अन्तर्बाह्य साक्ष्यों के आधार पर अद्भुतदर्पणम् नाटक की समीक्षा का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध अपनी विषय-वस्तु के आधार पर 7 अध्यायों में विभाजित है।

शोध-प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में रामकथा के विकासक्रम का विवेचन किया गया है। वैदिक वाङ्मय में रामकथा के स्रोत, पुराणों में रामकथा,

रामकथा के आदिस्रोत के रूप में वाल्मीकीय रामायण का अध्ययन तथा अध्यात्म रामायण, भुशुण्डि रामायण आदि साम्प्रदायिक रामायणों का संक्षिप्त परिचय, महाभारत में उपलब्ध रामकथा, रामकथा का बौद्ध एवं जैन साहित्य में विकास, संस्कृत काव्य की दो धाराओं :- दृश्य एवं श्रव्य वाङ्मय के अन्तर्गत परवर्ती संस्कृत वाङ्मय में रामकथा का विकास, संस्कृत नाट्यसाहित्य में रामकथा का पल्लवन आदि का विवेचन किया गया है । इसके साथ ही महाकवि महादेव प्रणीत अद्भुतदर्पणम् नाटक का संक्षिप्त परिचय भी प्रस्तुत किया गया है ।

द्वितीय अध्याय में कविवर महादेव का जीवन परिचय, पाण्डित्य एवं साहित्यक साधना आदि के विवरण के साथ ही, अद्भुतदर्पणम् नाटक की संक्षिप्त कथावस्तु, नाटक के कथानक के विविध स्रोतों की समीक्षा, साम्य एवं वैषम्य के बिन्दुओं के आधार पर नाटक की वाल्मीकीय रामायण से तुलना व नाटक में प्राप्त नवीन कथांशों की समीक्षा की गई है ।

तृतीय अध्याय में प्रतिपाद्य विवेचन के अन्तर्गत सर्वप्रथम नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से नाटक के तीन प्रधान तत्त्व वस्तु, नेता एवं रस के सामान्य उल्लेख के पश्चात् नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से कथावस्तु के स्वरूप, आधिकारिक एवं प्रासंगिक कथाओं तथा दृश्य एवं सूच्य कथावस्तु की समीक्षा है । तदनन्तर अद्भुतदर्पणम् नाटक की कथावस्तु का नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से विश्लेषण करते हुए नाटक की आधिकारिक तथा पताका एवं प्रकरी कथाओं, अर्थोपक्षेपकों तथा श्राव्य, अश्राव्य एवं नियत श्राव्य वस्तु का विस्तृत विवेचन किया गया है ।

शोध प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में पात्रों का विवेचन है । इसमें नायक का नाट्यशास्त्रीय स्वरूप, नायक भेद, नायक के परिकर तथा प्रतिनायक आदि का शास्त्रीय विवेचन किया गया है साथ ही नायिका का स्वरूप, नायिका भेद तथा अन्यान्य नारी पात्रों का भी नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन किया गया है । तदनन्तर इसी अध्याय में अद्भुतदर्पणम् नाटक के प्रमुख पुरुष एवं नारी पात्रों जैसे-

राम, लक्ष्मण, रावण, महोदर, सीता, सरमा, त्रिजटा आदि का नाटक के आधार पर विस्तृत चरित्रांकन प्रस्तुत किया गया है ।

पंचम अध्याय में रस, गुण, अलंकार एवं छन्दों का वर्णन है । रस एवं उसके घटक - विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावों के शास्त्रीय अध्ययन के साथ ही अद्भुतदर्पणम् नाटक में विभिन्न भावों की स्थिति, नाटक में अंगीरस का निर्णय व अंगभूत रसों का विवेचन किया गया है । साथ ही गुणों का संक्षिप्त नाट्यशास्त्रीय विश्लेषण करते हुए नाटक में विभिन्न गुणों की स्थिति की स्थालीपुलाक न्याय से समीक्षा की गई है । तत्पश्चात् अलंकारों की अवधारणा एवं नाटक में प्राप्त प्रमुख अलंकारों की व्याख्या की गई है । इसी अध्याय में नाटक में प्राप्त विभिन्न छन्दों का भी विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है ।

षष्ठ अध्याय में अद्भुतदर्पणम् नाटक के कथानक का साहित्यिक सौन्दर्य निरूपित है । इसके अन्तर्गत नाटक में प्राप्त प्रकृति चित्रण, नाटक की भाषा-शैली, उसमें मानवीय संवेदनाओं का चित्रण तथा उसके सामाजिक एवं राजनैतिक दर्शन आदि का विवेचन किया गया है ।

सप्तम अध्याय शोध-प्रबन्ध का अन्तिम अध्याय है । इसमें नाटक की संक्षिप्त समीक्षा करते हुए नाटक की रचना का उद्देश्य एवं इसके माध्यम से नाटककार का सन्देश वर्णित है ।

शोध-प्रबन्ध के अन्त में दिये गये परिशिष्ट में, नाटकगत सूक्तियों को संलग्न किया गया है तथा अकारादि क्रम से सहायक ग्रन्थों की सूची प्रस्तुत की गई है ।

अपनी कृपावृष्टि, आशीर्वाद एवं स्नेह से इस जन को सतत आप्यायित करने वाली भगवती शारदा एवं उन्हीं के समतुल्य माँ और बाबूजी को मैं मात्र प्रणामांजलि ही अर्पित करती हूँ । उनके असीम उपकारों का वर्णन करने की क्षमता मुझमें नहीं है ।

शोधकार्य के प्रति प्रेरणा प्रदान करने एवं विषम परिस्थितियों में भी इस कार्य को मूर्तस्वरूप प्रदान करने में निरन्तर मार्गदर्शन के लिये सम्मान्य आचार्य डा. राजेन्द्र मिश्र जी का आभार शब्दों में प्रकट नहीं किया जा सकता । मैं श्रद्धेय आचार्य डा. बलभद्रप्रसाद गोस्वामीजी की भी परम कृतज्ञ हूं जिन्होंने अपना अनिर्वचनीय सहयोग देकर इस शिथिल शोध-कार्य को पूर्ण करने का मार्ग प्रशस्त किया । साथ ही आभारी हूं नीरज भैया की जिन्होंने अनेक ग्रन्थ एवं आवश्यक लेख आदि उपलब्ध कराने में अपना महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया ।

मेरे छोटे भाई राजेश, देवेश तथा बहन अर्चना ने अत्यन्त आवश्यक विभिन्न कार्यों तथा यथावश्यक लेखन कार्य में विशिष्ट सहयोग प्रदान किया, ये मेरे आशीर्वचन के पात्र हैं । इसलिए इनका भी साशीर्वाद उल्लेख करना मेरा विनम्र दायित्व है । इसी प्रकार श्री गोपालदत्त शर्माजी ने शोध प्रबन्ध के टंकण का गुरुभार अपने कंधों पर लेकर मुझे भारमुक्त कर दिया, इसके लिए मैं उनकी आभारी हूं ।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, डा. गंगानाथा झा संस्कृत शोध संस्थान प्रयाग, बरेली कालेज, बरेली, एवं आचार्य- पीठ बरेली के पुस्तकालयों की मैं चिर ऋणी हूं जहां मुझे यथावश्यक सन्दर्भ ग्रन्थ सुलभ हो सके ।

टंकण कार्य और भाषा -यद्यपि समस्त शोध -प्रबन्ध की भाषा अत्यन्त सामान्य एवं सरल है तथापि टंकण की अपनी सीमाओं के कारण कुछ शब्दों का रूप विकृत हुआ हो, वर्णमाला के पंचम वर्णों के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग हुआ हो, इसी प्रकार यदि भूल से अन्य अशुद्धियां रह गई हों ; तो उन्हें क्षमा की सीमा में रखकर अनुगृहीत करना सहृदय विद्वज्जनों की उदारता होगी ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में अद्भुतदर्पणम् से दिये गए सन्दर्भ, काव्यमाला-55 के अन्तर्गत 1938 ई. में प्रकाशित निर्णयसागर प्रेस, बम्बई के अद्भुतदर्पणम् नाटक पर आधारित हैं ।

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

रामकथा का उद्भव एवं विकास

1. विषय प्रवेश, रामकथा का उद्भव - वैदिक वाङ्मय में रामकथा के स्रोत ।

2. वाल्मीकीय रामायण - रामकथा का मूल स्रोत, अन्य रामकथाएं - योगवासिष्ठ, अध्यात्मरामायण, आनन्द रामायण, भुशुण्डिरामायण, अद्भुतरामायण आदि ।

3. पुराणों में रामकथा ।

4. महाभारत में उपलब्ध रामकथा ।

5. रामकथा का बौद्ध एवं जैन साहित्य में विकास ।

6. परवर्ती संस्कृत वाङ्मय में रामकथा का विकास - दृश्य वाङ्मय में रामकथा, श्रव्य वाङ्मय में रामकथा ।

7. संस्कृत नाट्यसाहित्य में रामकथा का पल्लवन तथा महाकवि महादेव प्रणीत अद्भुतदर्पणम् नाटक का संक्षिप्त परिचय ।

प्रथम अध्याय

रामकथा का उद्भव एवं विकास

विषय प्रवेश

मधुमय प्रकृति के सरस रंगों से अनुरंजित यह विश्व भी एक नाट्यशाला है। अनुक्षण इसके रंगमंच पर होने वाले परिवर्तन के परिदृश्य मानव जीवन के अन्तराल में, हर्ष-विषाद, शोक, श्रृंगार तथा करुण आदि भावनाओं की अनुभूति प्रदान करते रहते हैं। इस रंगमंच का अलक्षित सूत्रधार जो पात्रों का संचालन करता है, वह अखिल ब्रह्माण्ड का नियन्ता परब्रह्म ही है। इस विश्व नाट्यशाला के इन दृश्यों ने ही मनुष्य के मस्तिष्क एवं हृदय में, मानवीय जीवन के विभिन्न पक्षों को भौतिक रंगमंच पर प्रस्तुत करने की प्रेरणा दी है। ये ही शनैः-शनैः परिष्कृत होकर जहां लेखनी के माध्यम से नाट्य रचनाओं के रूप में उद्भूत हुए हैं वहीं दूसरी ओर इन दृश्यों को अभिनीत करने के माध्यमस्वरूप अभिनेता पात्रों एवं रंगमंच के रूप में समाज के सामने आए हैं।

साहित्यजगत में काव्य की रमणीयता तो सर्वविदित ही है, उसमें भी मनीषियों ने "काव्येषु नाटकं रम्यं" कहकर काव्य में भी नाटकों को सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किया है। वस्तुतः नाटक की इस रमणीयता से प्रभावित होकर ही कालिदास जैसे विश्वविख्यात महाकवियों ने जहां "रघुवंश" जैसे महाकाव्यों की रचना की है, वहीं "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" जैसे उत्कृष्ट एवं कालजयी नाटकों की रचना कर समाज को काव्यजगत का सौन्दर्यबोध कराया है।

शोध के लिये आलोच्य रचना "अद्भुतदर्पणम्" नाटक, महाकवि महादेव के नाट्यशास्त्रीय परिष्कृत दृष्टिकोण से परिचय तो कराती ही है, साथ ही अपनी इस रचना में विश्वप्रसिद्ध मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के चरित्र को आधार बनाकर कवि ने स्वर्ण में सुगन्धि जैसा रूप प्रदान कर दिया है। अतः हमारे इस शोध-प्रबन्ध का विषय जहां अद्भुतदर्पणम् नाटक का नाट्यशास्त्रीय विवेचन करना है,

वहीं रामकथा के विभिन्न स्तरों पर हुए अध्ययन एवं रचनाओं के माध्यम से इसकी समीक्षा करने का प्रयास भी किया गया है ।

भारतीय धर्मकथाओं में रामकथा का एक विशिष्ट स्थान है । जन-जीवन की विषम परिस्थितियों में समता का मार्गदर्शन कराने वाली रामकथा प्रत्येक भारतीय का अपना जीवन दर्शन है । वैदिकोत्तर काल में रामकथा का सुश्रृंखलित ग्रन्थरूप हमें सर्वप्रथम वाल्मीकीय रामायण में प्राप्त होता है । रामकथा का जो स्वच्छ, निर्मल एवं अप्रतिहत प्रवाह वाल्मीकीय रामायण में मिलता है वही देश की समग्र भाषाओं के कवियों एवं चिन्तकों का प्रेरणास्रोत रहा है । यही कारण है कि इसे परवर्ती कवियों की रचनाओं का आधार भी कहा गया है[1]। हरिवंश पुराण से भी ज्ञात होता है कि रामायणीय कथा पर आधारित नाटकों को रंगमंच पर अभिनीत किये जाने की परम्परा प्राचीनकाल से ही चली आ रही है[2]।

आलोच्य नाटक अद्भुतदर्पणम् की कथावस्तु भी रामकथा पर ही आधारित है अतः नाटक का नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन करने से पहले इसके प्रतिपाद्य विषय "रामकथा" के उद्भव एवं विकास क्रम का सम्यक् विश्लेषण समीचीन होगा ।

रामकथा का उद्भव

वैदिक वाङ्मय में रामकथा के स्रोत

भारत में प्रचलित रामकथा की पृष्ठभूमि में आध्यात्मिक भावना ही प्रामुख्येन विद्यमान रही है । अतः रामाख्यान के मूलसूत्र की उपलब्धि के लिये

---

1. आश्चर्यमिदमाख्यानं मुनिना सम्प्रकीर्तितम् ।।
   परं कवीनामाधारं समाप्तं च यथाक्रमम् ।
   -वाल्मीकीय रामायण 1/4-26, 27

2. रामायणं महाकाव्यमुद्दिश्य नाटकं कृतम् ।
   जन्म विष्णोरमेयस्य राक्षसेन्द्रवधेप्सया ।।
   -हरिवंशपुराण - विष्णुपर्व -93/6

अत्यन्त प्राचीन वैदिक साहित्य की ओर ही दृष्टि जाती है क्योंकि वेद ही भारतीय संस्कृति के आदि स्रोत हैं ।

वैदिक साहित्य में रामकथा के सूक्ष्म तन्तु इतस्ततः विकीर्ण हैं । उपनिषदों में भी, विशेषतः उत्तरकालीन उपनिषदों में रामकथा के स्पष्ट संकेत प्राप्त होते हैं । यद्यपि इन्हें बहुत पुष्ट एवं सुव्यवस्थित नहीं कहा जा सकता तथापि वैदिक साहित्य में रामकथा के बीज तो दृष्टिगोचर होते ही हैं । पण्डित"नीलकण्ठ सूरि"ने ऋग्वेद के लगभग 150 मन्त्रों में रामकथा की सामग्री का उल्लेख स्वीकार किया है । उन्होंने इन मन्त्रों को"मन्त्ररामायण" के नाम से संकलित कर इनका विस्तृत भाष्य लिखा है ।

"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" इस आपस्तम्ब सूत्र के अनुसार मन्त्र भाग तथा ब्राह्मण भाग दोनों ही वेद कहे जाते हैं । आरण्यकों एवं उपनिषदों का अन्तर्भाव भी ब्राह्मण ग्रन्थों में ही है । कुछ उपनिषदों का अन्तर्भाव तो मन्त्रभाग में ही है । इस तरह मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् ये सभी वेद हैं । वेदों एवं उपनिषदों में जो रामकथा है उसी का वाल्मीकीय रामायण में विस्तृत विवेचन है ।

वेदों में इतिहास ग्रन्थों की भाँति क्रमिक रूप से तो रामचरित्र अथवा रामकथा का वर्णन नहीं आया है किन्तु रामकथा के पात्रों, स्थानों आदि का स्पष्ट उल्लेख इनमें प्राप्त होता है । यथा-

<u>राम</u>

ऋग्वेद के एक मन्त्र में राम का उल्लेख है । यहाँ पर उनका नाम दुःशीम, पृथवान एवं वेन नामक प्रतापी राजाओं के साथ आया है । इस मन्त्र में वर्णित राम रामकथा के नायक राम ही प्रतीत होते हैं[1]। इस विषय में स्वामी

---

1. प्र तद्दुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु ।
   ये युक्त्वाय पंचशतास्मयु पथा विश्राव्येषाम् ।। - ऋग्वेद संहिता 10/93/14

करपात्री जी का मत है कि -

"सूर्यवंशी राजा वेन के अनन्तर वर्णित राम अवश्य ही सूर्यवंशी थे। रामायण के राम बड़े-बड़े यज्ञों के कर्ता थे यह भी प्रसिद्ध है। "असुर" शब्द जहां स्वतन्त्र होता है वहां असुर जाति का बोधक होता है पर जहां विशेषण रूप में प्रयुक्त होता है वहां महाप्राणवान, महाबलवान अर्थ का ही बोधक होता है। इसलिये यहां बलवान राजा राम ही वेद को इष्ट हुए [1]।

यजुर्वेद के एक मन्त्र में सवितृ कुलोत्पन्न राम अर्थात सूर्यवंश में उत्पन्न राम की चर्चा आती है[2]। इसी प्रकार अथर्ववेद का एक मन्त्र है -

नक्तंजातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च।
इदं रजनि रंजय किलास पलितं च यत्[3]।।

इसमें श्री राम का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। इस मन्त्र में रामे-कृष्णे का अर्थ पण्डित रामकुमारदास ने "श्यामवर्ण वाले राम" किया है। उनके अनुसार इस मन्त्र में दशरथ एवं कौशल्या का भी संकेत है[4]।

तैत्तिरीयारण्यक के एक मन्त्र में राम शब्द का प्रयोग रमणीय पुत्र के अर्थ में हुआ है। इस मन्त्र में कहा गया है, "वह एक वर्ष तक मांस का भक्षण न करे, स्त्री का संग न करे, मिट्टी के पात्र से जल न पिये, नउसका राम (पुत्र)

---

1. स्वामी करपात्री जी - रामायण मीमांसा पृष्ठ 16
2. अघोरामो सावित्रिः - यजुर्वेद 29/59
3. अथर्ववेद - 1/23/1
4. "वेदों में श्रीराम" लेखक - मानसतत्वान्वेषी पण्डित श्री रामकुमार दास जी
कल्याण, श्रीरामांक- अंक 1 वर्ष 46 पृ. 41
गीताप्रेस गोरखपुर

उच्छिष्ट पिये इस प्रकार यजमान का तेज पुंजीभूत होता है [1]।" इस मन्त्र में सायण ने राम शब्द का अर्थ रमणीय पुत्र किया है । किन्तु यह तो स्पष्ट ही है कि राम शब्द का अर्थ केवल पुत्र नहीं होता अतः यहां राम के समान पितृभक्त अथवा धर्मशील पुत्र की श्रुति को अभीष्ट है ।

उपनिषदों में, विशेषतः उत्तरकालीन उपनिषदों में राम एवं रामकथा की पर्याप्त चर्चा प्राप्त होती है । प्रश्नोपनिषद् में राम के नाम का एक बार संकेत उपलब्ध होता है । यहां हिरण्यनाभ कौसल्य की चर्चा आई है[2]। यह नाम वाल्मीकीय रामायण के अयोध्या काण्ड के अनुसार राम का ही नामान्तर है[3]।

रामपूर्वोत्तर तापनीय उपनिषद् में रामायण वर्णित कथाओं का विस्तार से उल्लेख है । यहां उनके दशरथ के पुत्र एवं रघुवंशी के रूप में उल्लिखित होने के साथ ही उन्हें विष्णु का अवतार भी कहा गया है[4]।

रामायणीय राम के अतिरिक्त अन्य कई राम नामक व्यक्तियों का परिचय भी वैदिक साहित्य से प्राप्त होता है । ऐतरेय ब्राह्मण [6, 24, 34,] से "राम मार्गवेय" का परिचय मिलता है । इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण [4, 6, 1, 7] में [राम

---

1. संवत्सरं न मांसमश्नीयात् । न रामामुपेयात् । न मृण्मयेन पिबेत् । नास्य राम उच्छिष्टं पिबेत् । तेज एव तत्संश्यति ।।

   - तैत्तिरीयारण्यक 5/8/13

2. "भगवन् हिरण्यनाभः कौसल्यो राजपुत्रो मामुपेत्य प्रश्नमपृच्छत्"

   - प्रश्नोपनिषद् 6/1

3. हिरण्यनाभो यत्रास्ते सुतो मे सुमहायशाः ।।

   - वाल्मीकीय रामायण 2/75, 13

4. चिन्मयेऽस्मिन्महाविष्णौ जाते दशरथे हरौ । रघोःकुलेऽखिलं रति राजतेयो महीस्थितः ।
   स राम इति लोकेषु विद्वद्भिः प्रकटीकृतः ।।

   -राम- पूर्वोत्तर तापनीय उपनिषद्

   1/1, 2

औपतस्विनि" का मत प्राप्त होता है । यहां मात्र इतना ज्ञात होता है कि ये याज्ञवल्क्य के समकालीन उपतस्विन् ऋषि के पुत्र थे । इनके अतिरिक्त जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण {3, 7,3, 2} के दो स्थानों पर "राम क्रातुजेय वैयाघ्रपद" का उल्लेख है ।

इस विषय में स्वामी करपात्री जी का कथन है कि - निर्विशिष्ण राम के ही किन्हीं गुणों के संयोग से अन्य व्यक्तियों में भी राम शब्द का प्रयोग सम्भव हो सकता है अतः सम्भवतः इन राम नामक व्यक्तियों के नाम भी श्रीराम के गुणों से प्रभावित होकर ही रखे गये हों[1]।

सीता

वैदिक साहित्य में सर्वथा भिन्न दो सीताओं का उल्लेख प्राप्त होता है । इनमें से एक कृषि की अधिष्ठात्री देवी सीता हैं तथा दूसरी हैं सीता सावित्री। सीता सावित्री का वृत्तान्त कृष्ण यजुर्वेद के तैत्तिरीय ब्राह्मण में प्राप्त होता है[2]। यहां सीता प्रजापति अर्थात सूर्य की पुत्री कही गई हैं । ये सीता सोम राजा से प्रेम करती हैं तथा पिता के द्वारा दिये गये स्थागर अर्थात मुखलेपन के द्वारा सोम राजा का प्रेम प्राप्त करती हैं ।

इस प्रकरण के सन्दर्भ में श्री बुल्के यह सम्भावना व्यक्त करते हैं कि अनुसूया द्वारा सीता को दिये गये अंगराग का वृत्तान्त इस उपाख्यान के स्थागर वृत्तान्त से प्रभावित हो सकता है[3]।

कृषि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में सीता का उल्लेख ऋग्वेद से लेकर सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में अनेक स्थलों पर मिलता है । ऋग्वेद की सीता विषयक स्तुतियां एवं यजुर्वेद की "सीरायुञ्जन्ति" प्रार्थना की अधिकांश सामग्री में साम्य है ।

- -

1. स्वामी करपात्री जी - रामायण मीमांसा पृ. 42
2. कृष्ण यजुर्वेद तैत्तिरीय ब्राह्मण 3/2/10
3. कामिल बुल्के - रामकथा , अनुच्छेद 9, पृ. 9

यहां सीता को इन्द्र की पत्नी कहा गया है । यथा -

इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषाभिरक्षतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम्[1]।।

इस विषय में श्री बुल्के की मान्यता है कि,"इस सीता का रामायण के उपर्युक्त पात्रों से सम्बन्ध असम्भव ही है, क्योंकि उसका व्यक्तित्व ऐतिहासिक न होकर सीता (लांगल पद्धति) के मानवीकरण का परिणाम है[2]।" इसी प्रकार बेनीप्रसाद जी की भी यही मान्यता है कि प्रभावशाली प्राकृति द्रव्यों और शक्तियों में देवताओं की कल्पना कर ली गई है[3] ।

श्री बुल्के आदि विद्वानों की यह मान्यता कि प्राकृतिक द्रव्यों में एवं शक्तियों में देवताओं की कल्पना कर ली गई है, प्राचीन भारतीय परम्परा से समर्थित नहीं है । ब्रह्मसूत्र के देवताधिकरण के अनुसार भौतिक, द्यौ, अन्तरिक्ष, अग्नि, वायु, सूर्य, वरुण, मित्र आदि से भिन्न उनके अधिष्ठातृ देवता होते हैं । वे ऐश्वर्यशाली होते हैं । इसी प्रकार ऋग्वेद के एक मन्त्र की व्याख्या करते हुए सायण ने भी सीता का अर्थ "सीताभिमानी" देवता"किया है [4]।

---

1. ऋग्वेद संहिता 4/57/7 तथा यजुर्वेद संहिता 3/17/4
2. कामिल बुल्के - रामकथा, अनुच्छेद 20 पृ. 23
3. बेनीप्रसाद - हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, पृष्ठ 4।
4. सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव ।
   यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः ।।
   सायण भाष्य - त्वा त्वां । वन्दामहे नमस्कुर्मः । हे सुभगे सुभाग्ये । सीते सीताभिमानी देवते । सुमनाः शोभनमनस्काः । असः स्याः । यथा येन प्रकारेण । नः अस्माकम् । सुफला शोभनफलोपेता । भुवः भवेः । तथा अर्वाची भवेति सम्बन्धः ।

   -ऋग्वेद संहिता 4/57/8 ॰

अतः सीता की प्रार्थना जड़लांगल पद्धति की प्रार्थना नहीं अपितु कृषि की अधिष्ठात्री देवी सीता की प्रार्थना है ।

इसी प्रकार पारस्कर गृह्यसूत्रों के अनुसार सीता यज्ञों में जड़ लांगल पद्धति रूप सीता की नहीं अपितु कृषि की अधिष्ठात्री महालक्ष्मीरूपा सीता की प्रार्थना की गई है । इसके एक मन्त्र में इन्द्रपत्नी सीता का आह्वान किया गया है[1]। यद्यपि इस मन्त्र में कृषिरूपा सीता का पर्जन्य-रूप इन्द्र से सम्बन्ध है किन्तु कृषि की अधिष्ठात्री सीता का परमात्मास्वरूप इन्द्र से ही सम्बन्ध विवक्षित है । वैदिक मन्त्रों में इन्द्र शब्द ईश्वर के लिये भी प्रयुक्त हुआ है[2]। अतः इस मन्त्र में भी सीता सम्बन्धित इन्द्र सामान्य इन्द्र नहीं है अपितु रामरूप परमेश्वर ही सिद्ध होते हैं । अथर्ववेद के कौशिक सूत्र में भी सीता की इसी अर्थ में विस्तृत स्तुति प्राप्त होती है[3]। वास्तव में सम्पूर्ण वेदों का तात्पर्य सामान्य रूप से अन्य विषयों में प्रतीत होते हुए भी महातात्पर्य एक परमेश्वर ही हैं । शास्त्रवचनों से यह सिद्ध भी होता है[4]। अतः राम-सीता साक्षात् ईश्वर ही हैं

---

1. यस्याभावे वैदिकलौकिकानां भूतिर्भवति कर्मणा इन्द्रपत्नीमुपह्वये सीतां सा मे त्वनपायिनी भूयात् कर्मणि कर्मणि स्वाहा ।

   -पारस्कर गृह्यसूत्र 2/17/4

2. इन्द्रोमायाभिः पुरुरूप ईयते —ऋग्वेद 6/47/18

3. कुमुद्वती पुष्करिणी सीता सर्वाङ्गशोभिनी ।
   कृषिः सहस्रप्रकारा प्रत्यक्षा श्रीरियं मयि ।।
   उर्वी त्वाहुर्मनुष्याः श्रियं त्वा मनवो विदुः ।
   आगमेऽस्मन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः ।।

   -कौशिक गृह्यसूत्र - अध्याय 13

4. सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति — कठोपनिषद् 1/2/15
   इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
   एकं सद्विप्रा बहुधावदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ।।

   - ऋग्वेद संहिता 1/164/46

इसलिये उनमें मन्त्रों की संगति स्वाभाविक है ।

राम एवं सीता के अतिरिक्त श्रीराम के पूर्वजों एवं रामायणीय कथा के कुछ अन्य पात्रों का भी स्पष्ट संकेत वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है । यथा-

मनु

कृष्ण यजुर्वेद की काठक संहिता में मनु का उल्लेख है- "मनुर्वै यत्किं-चावदत् तद् भेषजमेवावदत्[1]।" अर्थात् मनु ने जो कुछ भी कहा वह मानवजाति के लिये पथ्य है ।

इक्ष्वाकु

इक्ष्वाकु का ऋग्वेद में मात्र एक ही बार उल्लेख है किन्तु शतपथ ब्राह्मण एवं अथर्ववेद में भी इक्ष्वाकु का उल्लेख प्राप्त होता है । तीनों की स्थान पर इक्ष्वाकु एक धार्मिक एवं प्रतापी राजा के रूप में वर्णित हैं[2]।

वेदों में प्राप्त इक्ष्वाकु राजा के उल्लेख के विषय में स्वामी करपात्री जी लिखते हैं - " जिस सूर्यवंश में राघवेन्द्र भगवान राम का प्रादुर्भाव हुआ है, इक्ष्वाकु उसके प्रमुख सम्राट थे अतः वेदों में उनका उल्लेख होना उचित ही है । इक्ष्वाकु राजा थे और राष्ट्रहित में उपयोगी उन सब विशिष्ट वस्तुओं के ज्ञाता थे ये बातें वेद से ज्ञात होती हैं, इतना ही पर्याप्त है । वेदों में जो वस्तु सूत्ररूप से कही गई है रामायण में उसी का विस्तार किया गया है । रामायण के अनुसार इक्ष्वाकु वंश में ही श्रीराम का आविर्भाव हुआ था[3] ।

---

1. कृष्ण यजुर्वेदीय काठक संहिता - स्थानक 11, अनुवाक् 5, मंत्र 9
2. यस्येक्ष्वाकुरूपव्रते रेवान् मराय्येधते दिवीव पंचकृष्टय:

   -ऋग्वेद संहिता 10/60/4

3. ईज इक्ष्वाको राज० -शतपथ ब्राह्मण 13/5/4, 5

   यं त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको. -अथर्ववेद 19/39/9

सुद्युम्न

कृष्ण यजुर्वेदीय मैत्रायणी संहिता में सुद्युम्न राजा का वर्णन है[1]।

सुदास

श्रीराम के एक अन्य पूर्वज सुदास का संकेत भी ऋग्वेद के एक मन्त्र में मिलता है[2]।

रघु

श्रीराम के पूर्वज महाप्रतापी रघु का उल्लेख भी ऋग्वेद में प्राप्त होता है[3]।

दशरथ

ऋक्संहिता के मन्त्र 1/126/4 में दशरथ का वर्णन मिलता है[4]। इस मन्त्र पर "मन्त्ररामायण" के रचयिता "श्री नीलकण्ठ सूरि" का विस्तृत भाष्य है, जिसका सार इस प्रकार है - राजा दशरथ के यज्ञ से विदा होकर ऋत्विक् लोग जब अपने-अपने स्थानों को जाने लगे तब उन हजारों ऋत्विकों को दान में मिले हुए बड़े वेग वाले 40-40 श्यामकर्ण घोड़े, अत्यन्त सुशिक्षित मतवाले गजेन्द्रों की पंक्तियों को सेवकगण प्रत्येक के आगे-आगे लेकर चलते हैं ।

इस मन्त्र में भी उन्हीं प्रभावशाली दशरथ का वर्णन है जिनके उदात्त चरित्र का रामायण में विस्तार किया गया है ।

कृष्ण यजुर्वेदीय मैत्रायणीयोपनिषद् के अन्तिम आरण्यक 1/4 में एक

- -

1. सुद्युम्नो द्युम्नंयजमानाय धेहि । - कृष्ण यजुर्वेद मैत्रायणी संहिता 1/2/19
2. विश्वामित्रो यदवहत् सुदासमप्रियायत । -ऋग्वेद 3/53/9
3. रघुः श्येनः पतयत् - - - । -ऋग्वेद 5/45/9
4. चत्वारिंशद् दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति ।
   मदच्युतः कृशनावतो अत्यान् कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पज्राः ।।

साथ कुछ चक्रवर्तियों की सूची देते हुए श्रुति ने श्रीराम के पूर्वजों के कई नाम गिनाए हैं[1]।

श्रीराम के पूर्वजों का ही नहीं अपितु रामायण के अन्य कई प्रमुख एवं गौण पात्रों का उल्लेख वेदों, ब्राह्मणों, आरण्यकों एवं उपनिषदों में प्राप्त होता है। यथा -

जनक

रामायणीय कथा के एक प्रमुख पात्र जनक का भी वैदिक साहित्य में उल्लेख प्राप्त होता है। इस मन्त्र से ज्ञात होता है कि राजा जनक ने ब्रह्मविद्या में निष्णात याज्ञवल्क्य से यथेष्ट प्रश्न करने का वर प्राप्त किया था। जनक ने उसी के आधार पर उनसे ब्रह्म सम्बन्धी प्रश्न किये तथा स्वयं भी याज्ञवल्क्य के समान ब्रह्मनिष्ठ हो गये[2]।

अश्वपति

छान्दोग्य उपनिषद् 5/11/4 तथा शतपथ ब्राह्मण 10/6/1/2 में अश्वपति कैकेय का उल्लेख मिलता है। अश्वपति केकय देश के राजा थे और इतने विद्वान थे कि ब्राह्मण भी उनसे ज्ञान प्राप्त करने आते थे, ऐसा उल्लेख इन स्थानों पर पाया जाता है। इन दोनों ही शास्त्रों में वैदेह जनक का भी उल्लेख है। अतः ये दोनों समकालीन सिद्ध होते हैं। रामायण में कैकेयी के पिता अश्वपति प्रसिद्ध ही हैं।

श्रीराम के विपक्षी राक्षसों में से कतिपय राक्षसों का सुस्पष्ट संकेत

- -

1. अथ किमेतैर्वापरेऽन्ये महाधनुर्धराश्चक्रवर्तिनः। केचित् सुद्युम्नभूरिद्युम्नेन्द्रद्युम्नकुवलयाश्वयौवनाश्ववध्रयश्चाश्वपतिःशशबिन्दुर्हरिश्चन्द्रोऽम्बरीषो ननक्तुः शर्यातिर्ययातिरनरण्योऽक्षसेनादयोऽथ मरुत्तभरतप्रभृतयो राजानो मिषतो बन्धुवर्गस्य महतीं श्रियं त्यक्त्वास्माल्लोकादमुंल्लोकं प्रयाताः ॥

-कृष्ण यजुर्वेदीय मैत्रायणीय उपनिषद् अन्तिम आरण्यक 1/4 पृ. 544

2. याज्ञवल्क्यो वरं ददौ सहोवाच कामप्रश्न एवमे।

वेदों मे है । यथा -कबन्ध[1], त्रिशिरा[2], रावण आदि । दशमुख रावण का तो स्पष्ट उल्लेख वेदों में प्राप्त होता है । अथर्ववेद के एक मन्त्र में उसे ब्राह्मण तथा यज्ञों का कर्ता बताया गया है[3]। यह तो प्रसिद्ध ही है कि विश्रवा का पुत्र रावण विद्वान तो था ही, वह ब्राह्मण भी था साथ ही यज्ञों का कर्ता भी ।

श्रीराम की पुरी अयोध्या का जितना स्पष्ट एवं विस्तृत वर्णन वैदिक साहित्य में है उतना अन्य किसी भी पुरी का नहीं है । अथर्ववेद काण्ड 10 सूक्त 2 मन्त्र 28 के उत्तरार्द्ध से लेकर सूक्तान्त के मन्त्र 33 तक साढ़े पांच मन्त्रों में अयोध्या का वर्णन है । इसके एक मन्त्र में कहा गया है," आठ चक्रों एवं नव द्वारों वाली देवताओं की पुरी है उसका नाम अयोध्या है । उसमें ज्योतिर्मय कोश है तथा वह स्वर्गरूप ज्योतियों की ज्योति है[4]। प्रायः इसी आनुपूर्वी का मन्त्र तैत्तिरीयारण्यक में भी मिलता है[5]।

ऋग्वेद 10/64/9 मन्त्र में अयोध्या नगरी की नदी"सरयू" का भी संकेत है ।

विद्वानों ने रामकथा के पात्रों का ही नहीं अपितु रामकथा की घटनाओं का भी सूत्ररूप में दर्शन वैदिक साहित्य में किया है । "पण्डित दीनानाथ जी शर्मा शास्त्री" ने ऋग्वेद एवं सामवेद में प्राप्त एक मन्त्र-

---

1. नीचीनवारं वरुणः कबन्धं प्रससर्ज — ऋक्संहिता 5/85/3
2. त्रीन्त्समूर्ध्नो असुरश्चक्रे आरभे- - - । — ऋक्संहिता 9/73/1
3. ब्राह्मणोजज्ञेप्रथमो दशशीर्षो दशास्यः । —
   ससोमं प्रथमः पपौ सचकारारसं विषम् ।। — अथर्ववेद 4/6/1
4. अष्टचक्रा नवद्वारा देवानांपूरयोध्या ।
   तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ।।
   — अथर्ववेद 10/2/31
5. तैत्तिरीयारण्यक 1/2/7/3

भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येतिपश्चात् ।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन् रुशद्भिर्वर्णैरभिराममस्थात्[1]।।

में रामकथा की घटनाओं को स्वीकार किया है । इस मन्त्र की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं - "श्रीराम का नाम रामभद्र उत्तररामचरित आदि में बहुत प्रसिद्ध है । "विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदयोर्वा लोपः ।" {अप्रत्यये तथैवेष्टः 5/3/83} इस वार्तिक के अनुसार "सत्यभामा" पद से "भामा","सत्या" आदि की तरह "रामभद्रः" पद से "भद्रः रामः" ये प्रयोग पूर्व पद या उत्तर पद के लोप से बन सकते हैं । इसी प्रकार उक्त मन्त्र में पूर्वपद राम का लोप होकर भद्र बच गया है । अतः उक्त मन्त्र का अर्थ हुआ -

भद्रः - भजनीयो रामभद्रः श्रीरामः । भद्रया - भजनीया सीतया । सचमानः - सेव्यमानः, संगच्छमानः । आगात् - वने प्राप्तः । स्वसारं {यह यौगिक शब्द है} - सीतां गृहीतुं । जारः - रावणः । पश्चात् - रामपरोक्षे । अभ्येति - आगतः । ततो - रावणे हते । अग्निः - अग्निदेवः । सुप्रकेतैः - श्रेष्ठ ज्ञानयुक्तैः । द्युभिः - सीतया सह । रामममि - श्यामवर्णस्य श्रीरामभद्रस्य अभिमुखं । रुशद्भिः - श्वेतवर्णैः तोजोभिः । अस्थात् - उपस्थितः ।

श्रीराम सीता के साथ वन में गये । श्रीराम के पीछे रावण आया । रावण सीता को हर ले गया । रावण के मरने पर अग्निदेव ने राम की तेजोरूपा सीता को लाकर श्रीराम के सामने उपस्थित कर दिया[2]।"

पण्डित रामकुमारदास ने भी इस मन्त्र के चार चरणों में रामकथा के मुख्य चार अंशों का स्पष्ट उल्लेख स्वीकार किया है[3]।

यद्यपि विद्वानों ने वैदिक साहित्य में ही रामकथात्मक बीज की स्थिति

---

1. ऋग्वेद संहिता 10/3/3, सामवेद - 1548
2. पण्डित दीनानाथजी शर्मा शास्त्री - कल्याण, श्रीरामांक ; वर्ष 46, अंक 1 पृष्ठ 74, गीताप्रेस गोरखपुर
3. पण्डित रामकुमारदास - वेदों में भगवान श्रीराम ; कल्याण श्रीरामांक वर्ष 46, अंक 1, पृष्ठ 481

स्वीकार की है, किन्तु फादर कामिल बुल्के इस मान्यता से सहमत नहीं हैं। वे कहते हैं - ," रामायण के एकाध पात्रों के नाम वैदिक रचनाओं में मिलते हैं ; लेकिन न तो उनके पारस्परिक सम्बन्धों की कोई सूचना दी गई है और न इनके विषय में रामायण की कथावस्तु का किंचित भी निर्देश किया गया है[1]।"

श्री बुल्के की इस मान्यता का खण्डन करते हुए रामायण मीमांसा में स्वामी करपात्रीजी लिखते हैं - "वैदिक पद्धति में संदिग्ध अर्थ का निर्णय वाक्यशेष और तत्समान तत्संम्बन्धित शास्त्रान्तरों से किया जाता है। "ब्रीहिभिर्यजेत् यवैर्वा" "राजा स्वराज्यकामो राजसूयेन यजेत्" इत्यादि स्थलों में "यव" और "राजा" शब्द का अर्थ क्या है इस सम्बन्ध में वैदिक शब्दों द्वारा निर्णय न होने पर भी आर्षप्रसिद्धि के अनुसार उनका "दीर्घशूक" और "क्षत्रिय" अर्थ लिया जाता है।

इसी प्रकार उपनिषदों में आकाश, प्राण आदि शब्दों का अर्थ वाक्य-शेष के आधार पर किया जाता है। किन्तु यहां तो रामतापनीय, रामरहस्य और सीतोपनिषद् आदि उपनिषदों में जब सीता, राम आदि पात्रों का सम्बन्ध, स्वरूप और महत्त्व सांगोपांग वर्णित है एवं वेदव्याख्यानभूत रामायण, महाभारत, पुराण एवं तन्त्रों में इन विषयों का परिपूर्ण उपबृंहण विद्यमान है तो भी वैदिक साहित्य में रामकथा की सामग्री का अभाव कहना अनभिज्ञता का द्योतक है[2]।"

इस प्रकार इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि वैदिक साहित्य में रामकथा का कोई क्रमबद्ध रूप तो प्राप्त नहीं होता किन्तु समस्त चारित्रिक बीज-सूत्र अवश्य उपलब्ध होते हैं। राम का नाम, इक्ष्वाकु, सीता, भरत, दशानन, त्रिशिरा, जनक, अश्वपति, सगर, सरयू, अयोध्या आदि नाम तो संहिता ग्रन्थों में स्पष्टरूप से प्राप्त होते हैं, भले ही विद्वानों ने उनका विभिन्न रूपों में अर्थ ग्रहण किया हो। फिर साहित्यशास्त्र का यह सिद्धान्त भी है कि नामों का उल्लेख

---

1. फादर कामिल बुल्के : रामकथा, अनुच्छेद 20, पृ. 24
2. स्वामी करपात्रीजी : रामायण मीमांसा - पृष्ठ- 36

किसी संज्ञा के लिये ही किया जाता है । किन्तु जब ये संज्ञाएं अपने साहचर्य सम्बन्ध से अन्य अर्थ को सम्मिलित कर लेती हैं, तब नाम भी उस सांकेतिक अर्थकी अभिव्यंजना करने लगता है । उन नामों से आध्यात्मिक, नैतिक एवं मान्त्रिक अर्थ भी व्यक्त होने लगते हैं । अतः वेदादि में जो बीज-सूत्र उपलब्ध हैं उनसे रामायण वर्णित आख्यान अंश भी घटित होते हैं । इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि रामकथा का आदिस्रोत वैदिक साहित्य ही है ।

---

1. श्री गणेश नारायण सिंह - भारतीय वाड मय में रामकाव्य, पृष्ठ-544, कल्याण, श्रीरामांक ।

वाल्मीकीय रामायण : रामकथा का मूल स्रोत

वैदिक वाङ्मय से निःसृत रामकथा की पुण्य तरंगिणी पहले पहल वाल्मीकीय मेधा की समतल पृष्ठभूमि को प्राप्त कर रामायण के रूप में अपने विशाल एवं व्यापक प्रवाह के साथ आलोड़ित हुई है। श्री रघुनाथजी के पावन यश का गान करने वाली यह रामायण एक सामान्य ग्रन्थ नहीं अपितु भगवान वेद ही महर्षि की वाणी से उद्भूत हुए हैं। वेदवेद्य परब्रह्म के दशरथात्मज श्रीराम के रूप में धरा पर अवतीर्ण होने पर उनके चरित्र गायन हेतु साक्षात् वेद ही मानो महर्षि की लेखनी से प्रकट हुए। यही कारण है कि वैष्णव सम्प्रदाय में रामायण की वेद-तुल्य ही प्रतिष्ठा है।

महर्षि वाल्मीकि ने वस्तुतः नैतिक आदर्शों, धर्म एवं आचरण को ही इस रचना का मूलाधार बनाया है। इन्हीं गुणों से युक्त मर्यादा पुरुषोत्तम के चरित्र का गायन कर वे सदाचार को ही सर्वाधिक महत्त्व देते हैं[1]। रामायण की इस चारित्रिक प्रधानता के कारण ही महर्षि वेद व्यास ने भी इसे पुराणों में वर्णित रामचरित्र का आधार बनाया है[2]। श्रीमद् भागवत में वे इस बात को स्वीकार भी करते हैं कि राम का अवतार केवल राक्षस वध के लिये नहीं अपितु लोक शिक्षा के लिये भी था[3]। यही कारण है कि रामायण परवर्ती कवियों के लिये उपजीव्य बना। महर्षि वेदव्यास ने रामायण की इसी विशेषता को इंगित करते हुए इसे

---

1. इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
   नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी ॥
   स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः।
   समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ॥ – वाल्मीकीय रामायण 1/1/8, 17
2. रामायणं पाठितं मे प्रसन्नोऽस्मि कृतस्त्वया।
   करिष्यामि पुराणानि महाभारतमेव च ॥ – बृहद्धर्मपुराण 1/30/55
3. मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।
   कुतोऽन्यथास्याद्रमतः स्वआत्मनः सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य ॥
   – श्रीमद् भागवत पुराण 5/19/5

बृहद्धर्मपुराण में रामायण को काव्यबीज भी कहा है [1]।

कविकुलगुरु कालिदास ने रघुवंश में आदिकवि को कई बार स्मरण किया है। एक स्थान पर वे क्रौंचवध से उत्पन्न कवि की करुणा की चर्चा करते हैं। दूसरे स्थान पर महाकवि कालिदास का महर्षि के प्रति बड़ा ही गौरवपूर्ण दृष्टिकोण है। वे कहते हैं, " मैं मन्दमति, कवि की सी ख्याति चाहता हूं, अवश्य ही मैं लम्बे पुरुष को प्राप्य फल के लिये बाहें उठाये बौने के समान उपहास का पात्र होऊंगा[2]।"

श्यामदेश की रामकथा रामकेर्ति के अनुवाद रामकीर्ति में रामायण का तथा महाकवि वाल्मीकि का गुणगान करते हुए आदिकवि को संस्कृत काव्य का जनक बताया गया है। फादर कामिल बुल्के ने भी रामायण को आश्चर्यजनक रूप से लोकप्रिय स्वीकार किया है। रामकथा में वे लिखते हैं - "भारतीय साहित्य में रामकथा की व्यापकता की अपेक्षा

---

1. पठ रामायणं व्यास काव्यबीजं सनातनम् ।

- बृहद्धर्मपुराण 30/47/5।

2. - - - - - - - - - कविः कुशेध्माहरणाययातः ।

निषादविद्धाण्डज दर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः ।।

- रघुवंश 14/70

मन्दः कवियशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम् ।

प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः ।।

- रघुवंश 1/3

विदेश में उसकी लोकप्रियता एक प्रकार से और आश्चर्यजनक है । बौद्धों ने पहले पहल विदेश में रामकथा का प्रचार किया था । अनामकं जातकम् तथा दशरथकथानम् का क्रमशः तीसरी तथा पांचवीं श. ई. में चीनी भाषा में अनुवाद हुआ था ।[1]

रामायण की अद्वितीय लोकप्रियता का कारण अत्यन्त स्पष्ट है । भारतीय परम्परा के अनुसार श्रीराम की कथा मात्र मनोरंजन का साधन नहीं है अपितु भगवान् राम का अवतार लोकशिक्षा एवं लोकानुग्रह के लिए है । कर्तव्य ज्ञान की शिक्षा देना ही रामायण की विशेषता है । रामायण के चरित्र नायक कर्तव्यपालन की तथा धर्मपरायणता की शिक्षा देने के लिए अवतीर्ण हुए । वे स्वयं आदर्श पुत्र, आदर्श भ्राता, आदर्श पति, आदर्श मित्र, आदर्श स्वामी एवं आदर्श सेवक हैं । उनकी पितृभक्ति एवं मातृभक्ति प्रत्यक्ष है । पिता के सत्य की रक्षा के लिए वे आनन्दपूर्वक वन को चले जाते हैं । श्रीराम की मातृभक्ति भी अनिर्वचनीय है।जो कैकेयी उनके वनवास का कारण बनी वही उनकी मातृभक्ति की प्रशंसा भी करती है ।[2]

श्रीराम ने सदैव सत्य रक्षा का ही उपदेश दिया । उनका स्वयं का जीवन भी सत्यनिष्ठा का अनुपम उदाहरण है । वे सत्य को ही

---

1. फादर कामिल बुल्के, रामकथा, अनुच्छेद – 763

2. यथा वै भरतो मान्यो तथा भूयोऽपि राघवः ।
   कौसल्यातोऽतिरिक्तं च मम शुश्रूषते बहु ।।

– वाल्मीकीय रामायण

2/8/18

ईश्वर, सत्य को ही धर्म तथा सत्य को ही तप आदि का आधार मानते हैं ।[1] इसके अतिरिक्त सीता का पातिव्रत, लक्ष्मण का भ्रातृप्रेम, दशरथ की सत्यनिष्ठा, कौशल्या-सुमित्रा का वात्सल्य, भरत की भायप भक्ति लोकशिक्षा के लिए महान आदर्श हैं । इस प्रकार रामायण की कथावस्तु में ईश्वरभक्ति की प्रेरणा के साथ विश्व जनमानस को प्रभावित करने वाली एक आदर्श जीवनदर्शन की महान शक्ति भी है ।

रामायण की कथावस्तु

वाल्मीकीय रामायण का विभाजन सात काण्डों में हुआ है । सभी काण्ड रामचरित्र की कथा का आधार लेकर अभिहित किये गये हैं । इस प्रकार क्रमशः बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड सुन्दरकाण्ड तथा युद्धकाण्ड और उत्तरकाण्ड नाम दिये गये हैं । सुन्दरकाण्ड को छोड़कर सभी काण्डों के नाम परिस्थितिजन्य कथानकों के आधार पर ही हैं । सुन्दरकाण्ड का नाम विशेष रूप से सीतान्वेषण में तत्पर रामभक्त हनुमान की चारित्रिक विशेषता को परिलक्षित कर रहा है । स्वयं वाल्मीकि के हृदय में भी इस चरित्र के प्रति विशेष श्रद्धा रही होगी इसीलिए इसे

---

1. सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः ।
   सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्तिपरंपदम् ।।
   दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च ।
   वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात्सत्यपरोभवेत् ।।

   – वाल्मीकीय रामायण 2/109/13, 14

सुन्दरकाण्ड के नाम से सम्बोधित किया गया है ।

रामायण की कथा का प्रारम्भ तपस्वी वाल्मीकि द्वारा विद्वानों में श्रेष्ठ नारदजी से किये गये प्रश्न के द्वारा होता है । इसी कथा के साथ बालकाण्ड का प्रारम्भ होता है । वास्तव में यह रामायणीय कथा की भूमिका है । यहां महर्षि वाल्मीकि यह जानना चाहते हैं कि इस समय संसार में गुणवान, धर्मज्ञ, सत्यवक्ता और दृढ़प्रतिज्ञ कौन पुरुष है । क्रोध को जजीतने वाला, समस्त प्राणियों का हितसाधक जितेन्द्रिय वह कौन पुरुष है जिसके संग्राम में कुपित होने पर देवता भी डर जाते हैं । इन प्रश्नों से प्रसन्न होकर नारद महर्षि वाल्मीकि को इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न राम नाम से विख्यात दशरथ पुत्र के संबंध में बताते हैं । वे राम की बुद्धिमत्ता, न्यायप्रियता एवं शत्रुसंहारक शक्ति आदि का वर्णन करते हैं । वे श्रीराम को विष्णु के समान बलवान, चन्द्रमा के समान मनोहर, क्रोध में कालाग्नि और क्षमा में पृथ्वी के समान बताते हैं ।

तत्पश्चात् नारदजी राम के जीवनचरित्र का वर्णन करते हुए संक्षेप में समस्त रामकथा का वर्णन कर जाते हैं । यथा- राज्याभिषेक की तैयारी में किस प्रकार दशरथ के द्वारा कैकेयी को वरदान प्रदान करने की विवशता में राम के वनवास जाने की परिस्थिति उत्पन्न हुई एवं उनके साथ लक्ष्मण और सीता भी चले गये । दशरथ का पुत्रवियोग में स्वर्गवास, भरत द्वारा राम की वापसी का प्रयास, दण्डकारण्य में खरदूषण वध तथा सीताहरण से लेकर सुग्रीव की मित्रता, बालिवध, हनुमान द्वारा सीता के अन्वेषण के साथ ही राम के द्वारा समुद्र पर सेतु बांधकर लंका में प्रवेश, राम-रावण युद्ध के पश्चात् रावण का वध, सीता की मुक्ति, रामक के मर्म वचनों से आहत सीता द्वारा अग्नि में प्रवेश तथा अग्नि के सीता के निष्कलंक होने

का प्रमाण देने पर सीता के साथ राम का पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या वापसी और राज्याभिषेक का अत्यंत संक्षिप्त वर्णन किया गया है । यहीं पर नारदजी ने राम-राज्य की संक्षिप्त विशेषताओं के वर्णन के साथ ही रामचरित्र को वेदों के समान पवित्र और पापनाशक बताते हुए इसके पढ़ने का फल भी वर्णित किया है । इसके बाद नारदजी विदा लेकर चले गये ।

तत्पश्चात महर्षि वाल्मीकि तमसा नदी के तट पर जाते हैं । वहां उसी समय उनके सम्मुख क्रीडामग्न क्रौंच पक्षी के जोड़े में से नरपक्षी को एक व्याध ने बाण से मार दिया । उसकी भार्या क्रौंची करुण क्रन्दन करने लगी । उसकी यह दुर्दशा देखकर अचानक महर्षि के मुख से व्याध के प्रति एक श्लोकात्मक शाप निकला । वे कह उठे, "अरे निषाद तुझे कभी शान्ति न मिले जो तूने इस क्रौंच के जोड़े में से एक की निरपराध ही हत्या कर दी जबकि वह काम से मोहित था ।"[1] तभी उनका ध्यान अपने मुख से निकले छन्दोबद्ध वाक्य पर गया । वे उसी के विषय में विचार करते हुए अपने आश्रम पर आ गये । उसी समय वहां ब्रह्माजी पधारे । उन्होंने महर्षि को इन्हीं छन्दों में रामचरित्र लिखने की प्रेरणा दी । ब्रह्माजी ने यह भी कहा कि महर्षि की वाणी से निःसृत छन्द प्रथम लौकिक छन्द रचना है । यही कारण है कि रामायण आदिकाव्य भी कहा जाता है ।

रामायण के बालकाण्ड के चतुर्थ सर्ग से यह ज्ञात होता है कि श्रीराम ने जब वन से लौटकर राज्य-शासन अपने हाथ में ले लिया उसके बाद महर्षि वाल्मीकि ने उनके सम्पूर्ण चरित्र के आधार पर रामायण काव्य का

---

1. मा निषाद प्रतिष्ठांत्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।

— वाल्मीकि रामायण
1/2/15

निर्माण किया । इसमें महर्षि ने चौबीस हजार श्लोक, पांच सौ सर्ग तथा सात काण्डों का निर्माण किया है ।[2] अब महर्षि के सामने प्रश्न यह था कि सुन्दर, मधुर और गेय इस काव्य को किसे पढ़ाया जाय । तभी उनके सम्मुख उनके आश्रम के दो कुमार कुश और लव वहां आये । उन्हीं को सब प्रकार से योग्य देखकर यह संपूर्ण महाकाव्य उन दोनों को कंठस्थ करा दिया । इस काव्य का दूसरा नाम "पौलस्त्य वध" भी था ।

एक समय ये दोनों मुनिकुमार अयोध्या की गलियों में रामायण के श्लोकों का गान कर रहे थे कि श्रीराम की दृष्टि उन पर पड़ी । उन्होंने उन्हें सभाभवन में बुलाकर उनसे रामायण गान करने का आग्रह किया । लव-कुश के गायन के अन्तर्गत ही रामायण की मूल कथा का प्रारम्भ होता है । इस प्रकार सर्वप्रथम अयोध्या के राजा दशरथ के शासन की विशेषताओं के साथ अयोध्या नगरी का वर्णन किया गया है । राजा दशरथ के कोई पुत्र नहीं था । राजा ने पुत्र प्राप्ति हेतु अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय किया तथा इस कार्य में परामर्श हेतु मुनियों को आमन्त्रित किया । राजा के मन्त्री सुमन्त्र ने इस कार्य के लिए मुनि "ऋष्य-श्रृंग " को बुलाने की सलाह देते हुए उनके अंगदेश में आने तथा वहां की राजकुमारी शान्ता से उनके विवाह का प्रसंग महाराज दशरथ को सुनाया । राजा ने देवोपम कान्ति वाले ऋष्यश्रृंग का पुत्र प्राप्ति के निमित्त यज्ञ कराने के उद्देश्य से वरण किया । ऋषि के द्वारा आज्ञा दिये जाने पर

---

1. चतुर्विंशत्सहस्राणि श्लोकानामुक्तवानृषिः ।
   तथा सर्गशतान् पंच षट्काण्डानि तथोत्तरम् ।।

   -वाल्मीकीय रामायण 1/4/2

यज्ञ की तैयारी पूर्ण की गई । तत्पश्चात पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान, दूसरी ओर देवताओं की प्रार्थना से ब्रह्माजी द्वारा रावण वध का उपाय ढूंढ निकालना तथा भगवान् विष्णु का देवताओं को आश्वासन, पुत्रेष्टि यज्ञ में अग्निकुण्ड से प्राजापत्य पुरुष का प्रकट होकर पायस प्रदान करना तथा उसे खाकर दशरथ की रानियों का गर्भवती होना, उधर ब्रह्मा जी की प्रेरणा से प्रमुख देवताओं का वानर यूथपतियों के रूप में जन्मग्रहण करने, समयानुसार चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि में श्रीराम के पश्चात भरत, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न के जन्म का वृतान्त वर्णित है । इन चारों के जातिकर्म संस्कार. शील, स्वभाव तथा सद्गुणों का वर्णन भी इसके बाद किया गया है ।

कुमारावथा में वर्तमान उन राजकुमारों की याचना करने एक दिन विश्वामित्रजी आते हैं । महर्षि वशिष्ठ के समझाने पर दशरथ अपने दो पुत्रों राम और लक्ष्मण को यज्ञ की रक्षा के लिए महर्षि विश्वामित्र को सौंप देते हैं । मार्ग में विश्वामित्र राजकुमारों को अतिबला एवं बला नामक विद्या प्रदान करते हैं । यहीं पर ताटका वध वर्णन तथा प्रसंगवश ताटका की उत्पत्ति तथा विवाहादि का वर्णन है । विश्वामित्र श्रीराम को दिव्यास्त्र भी प्रदान करते हैं । तत्पश्चात श्रीराम द्वारा यज्ञ की रक्षा तथा सुबाहु, मारीच आदि राक्षसों के संहार का भी वर्णन है ।

यज्ञ के पश्चात विश्वामित्र राजकुमारों के साथ मिथिला को प्रस्थान करते हैं । मार्ग में ऋषि उन्हें प्रसंगशः गंगा की उत्पत्ति एवं राजा सगर तथा उनके पुत्रों की कथा, भगीरथ की तपस्या साथ ही गंगावतरण की कथा सुनाते हैं । इसी के मध्य में समुद्र मन्थन, की भी कथा आ जाती है । तदनन्तर अहिल्या चरित तथा प्रसंगवश विश्वामित्र एवं वशिष्ठ के संघर्ष का वर्णन, विश्वामित्र को ब्रह्मत्व प्राप्ति आदि का विशद् वर्णन है ।

इन कथाओं को सुनाते हुए विश्वामित्र राजकुमारों के साथ मिथिला पहुंचते हैं। वहां ऋषि की आज्ञा से श्रीराम शिवधनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर जनक की प्रतिज्ञा पूर्णकर सीता के साथ विवाह करते हैं। इसके बाद राजा जनक का समाचार प्राप्त कर राजा दशरथ दल बल सहित मिथिला पहुंचते हैं। यहां सूर्यवंश के वर्णन के साथ राजा दशरथ द्वारा श्रीराम के लिए सीता तथा लक्ष्मण के लिए उर्मिला के वरण, आगे जनक द्वारा निमि वंश के वर्णन के साथ ही विश्वामित्र द्वारा कुशध्वज की कन्याओं माण्डवी तथा श्रुतकीर्ति के वरण का वर्णन आता है।

राजा दशरथ जनक से विदा लेकर अयोध्या के लिए प्रस्थान करते हैं। मार्ग में ऋषि परशुराम का आगमन होता है। वे श्रीराम को वैष्णव धनुष पर बाण चढ़ाने के लिए ललकारते हैं। श्रीराम अपने बाण के द्वारा परशुराम के तपःप्राप्त पुण्य लोकों का नाश कर देते हैं। परशुराम महेन्द्र पर्वत पर लौट जाते हैं। अन्त में दशरथ का पुत्रों एवं पुत्रवधुओं के साथ अयोध्या में प्रवेश, शत्रुघ्न सहित भरत का मामा के यहां जाना आदि कथायें वर्णित हैं।

अयोध्याकाण्ड

अयोध्याकाण्ड के प्रारम्भ में दशरथ द्वारा श्रीराम को युवराज पद देने की इच्छा से राज्याभिषेक का समस्त विधिविधान एवं तैयारी आदि का वर्णन है। इसके बाद श्रीराम के अभिषेक के समाचार से खिन्न मन्थरा का कैकेयी को राम के विरुद्ध भड़काकर राजा द्वारा पहले दिये हुए दो वरों का स्मरण कराना वर्णित है। इनके द्वारा वह भरत को राज्य तथा राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास मांगने के लिए उकसाती है।

कैकेयी तथोक्त दोनों वरों को दशरथ से मांग लेती है । पिता के सत्य की रक्षा हेतु राम वन जाने के लिए उद्यत हो जाते हैं । सीता और लक्ष्मण भी उनके साथ वन के लिए प्रस्थान कर देते हैं । इधर दशरथ पुत्रविरह से मूर्च्छित हो जाते हैं । राम के पीछे अयोध्यावासियों का समूह भी चलने लगता है । परन्तु तमसा नदी के किनारे रात्रिवास करते समय राम रात में ही आगे बढ़ जाते हैं । पुरवासियों को विवश होकर वापस लौटना पड़ता है । आगे गुहराज निषाद से भेंट होती है जो इन्हें गंगा पार कराता है ।

गंगा पारकर श्रीराम प्रयाग में महर्षि भरद्वाज के आश्रम में आतिथ्य ग्रहण करते हैं । यहां से श्रीराम के चित्रकूट जाने तथा महर्षि वाल्मीकि के दर्शन करने का वर्णन है । चित्रकूट में श्रीराम पर्णकुटी बनाकर निवास करने लगते हैं । इधर राम को वन में छोड़कर, अयोध्या लौटने पर सुमन्त्र शोक संतप्त दशरथ एवं कौशल्या से मिलते हैं । यहीं पर मुनिकुमार श्रवण का प्रसंग आता है । वशिष्ठ जी की आज्ञा से दूत केकय जाकर भरत को ले आते हैं । लौटते हुए भरत अयोध्या की दुरवस्था देख कर अनिष्ट की आशंका करते हैं । माता के पास पहुंचकर जब उन्हें यथार्थ का पता चलता है तब वे कैकेयी की भर्त्सना करते हुए राज्य को अस्वीकृत कर देते हैं तथा श्रीराम को वापस लाने के लिए चित्रकूट को प्रस्थान कर देते हैं । समस्त सेना माताओं, मन्त्रियों एवं पुरवासियों का भी उनके साथ ही गमन होता है । मार्ग में गंगा तट पर निषादराज गुह से भेंट होती है । गुह पहले तो भरत के प्रति आशंकित होते हैं किन्तु उनका अभीष्ट जानकर उन्हें गंगा पार कराते हैं । इसके बाद महर्षि भरद्वाज का आतिथ्य स्वीकार कर भरत चित्रकूट पहुंचते हैं । चित्रकूट को देखकर वे सेना को रोक देते हैं । इधर सेना को निकट आते देखकर लक्ष्मण भरत के प्रति कटु वचनों सहित

आक्रोश व्यक्त करते हैं किन्तु राम उन्हें शान्त करा देते हैं । उसी समय भरत एवं शत्रुघ्न श्रीराम के पास पहुंचते हैं । उन्हें देखकर लक्ष्मण का भ्रम दूर हो जाता है । भरत श्रीराम को पिता की मृत्यु का समाचार देते हैं तथा राज्य ग्रहण करने का अनुरोध करते हैं । श्रीराम इसे अस्वीकार कर देते हैं । भरत के आग्रह पर राम उन्हें उपदेश देते हैं । अयोध्या के एक मंत्री जाबालि नास्तिकों के मत का आश्रय लेकर श्रीराम को समझाना चाहते हैं किन्तु श्रीराम नास्तिक मत का खण्डन कर आस्तिक मत की स्थापना करते हैं । तत्पश्चात भरत के आग्रह पर श्रीराम अपनी चरण-पादुकाएं देकर भरत को विदा करते हैं । अयोध्या आकर भरत उन पादुकाओं को सिंहासन पर स्थापित कर स्वयं नन्दिग्राम में निवास करने लगते हैं । इधर श्रीराम महर्षि अत्रि के आश्रम पर पधारते हैं । यहां अत्रि की पत्नी अनुसूया सीता को दिव्य वस्त्राभूषण एवं अंगराग प्रदान करती हैं । यहीं अयोध्या काण्ड पूर्ण हो जाता है ।

अरण्यकाण्ड

श्रीराम के दण्डकारण्य में प्रवेश के साथ ही अरण्यकाण्ड की कथा का प्रारम्भ होता है । यहां श्रीराम, लक्ष्मण, सीता, अरण्य निवासी तपस्वियों का सत्कार प्राप्त करते हैं । आगे बढ़ते ही विराध नामक एक राक्षस से संघर्ष होता है तथा वह मारा जाता है। आगे चलकर श्रीराम शरभंग मुनि तथा ऋषि सुतीक्ष्ण के आश्रम पर जाते हैं । यहीं मुनियों द्वारा राक्षसों के अत्याचार से अपनी रक्षा की प्रार्थना की जाती है । श्रीराम उनकी सहायता की प्रतिज्ञा करते हैं । तत्पश्चात वे अगस्त्य ऋषि के आश्रम पर जाते हैं । यहीं पर राम अगस्त्य द्वारा इल्वल एवं वातापि राक्षसों के वध की कथा वर्णित करते हैं । अगस्त्य श्रीराम को वैष्णव धनुष प्रदान करते हैं । यहां से चलकर श्रीराम गोदावरी

तट पर स्थित पंचवटी में आश्रम बनाते हैं। यहीं पर उनकी भेंट दशरथ के मित्र जटायु से होती है। तभी नया प्रसंग आता है शूर्पणखा का। वह श्रीराम की भार्या बनना चाहती है। उनके टालने पर वह यही प्रस्ताव लक्ष्मण से करती है। दोनों से प्रवंचित होकर वह सीता पर झपटती है, तो लक्ष्मण उसके नाक कान काट देते हैं। शूर्पणखा की सूचना पर खर नामक राक्षस चौदह हजार राक्षसों की सेना लेकर राम से युद्ध करने आता है। श्रीराम खर, दूषण एवं त्रिशिरा सहित समस्त सेना को मार गिराते हैं। अकम्पन इस वृतान्त की सूचना रावण को देता है तथा मारीच की सहायता से उसे सीताहरण के लिए प्रेरित करता है। मारीच के समझाने से रावण लंका को लौट जाता है किन्तु तभी शूर्पणखा आकर उसे पुनः सीता के अपहरण के लिए प्रेरित करती है। इस बार रावण पूर्ण निश्चय करके मारीच के पास आता है। अन्ततः मारीच को उसकी सहायता करनी पड़ती है। मारीच स्वर्ण मृग बनकर श्रीराम के आश्रम के समीप जाता है। सीता के आग्रह पर राम मृग को मारने चले जाते हैं। राम के बाण से घायल होकर मारीच लक्ष्मण का नाम लेकर पुकारता है। सीता लक्ष्मण को राम की सहायता के लिए भेज देती है। इधर रावण परिव्राजक के वेश में आकर सीता का अपहरण कर ले जाता है। रोती हुई सीता को देखकर मार्ग में जटायु रावण को रोकता है किन्तु युद्ध में घायल होकर गिर पड़ता है। सीता आकाशमार्ग से जाते हुए पांच वानरों को नीचे देखकर अपने आभूषण और वस्त्र गिरा देती हैं।

लंका पहुंचकर रावण सीता को अपना अन्तःपुर दिखाकर उनसे अपनी भार्या बनने के लिए कहता है। किन्तु सीता राम के प्रति अपना अनन्य अनुराग दिखाकर रावण को फटकारती हैं। अन्त में रावण सीता को अशोकवन में रखता है।

इधर राम-लक्ष्मण मायामृग को मारकर लौटते हैं और आश्रम में सीता को न पाकर श्रीराम करुण विलाप करने लगते हैं। सीता को खोजते हुए श्रीराम की भेंट मरणासन्न जटायु से होती है जो बाद में प्राण त्याग देता है। आगे चलकर वे दोनों कबन्ध नामक राक्षस का वध करते हैं। दिव्य रूपधारी कबन्ध उन्हें ऋष्यमूक पर्वत एवं पम्पा सरोवर का मार्ग बताता है। यहां से चलकर श्रीराम शबरी के आश्रम में आकर उसका आतिथ्य ग्रहण करते हैं। वहां से आगे चलकर दोनों भाई पम्पा सरोवर के तट पर पहुंच जाते हैं। यहीं अरण्यकाण्ड समाप्त हो जाता है।

किष्किन्धाकाण्ड

इस काण्ड के प्रारम्भ में पम्पा सरोवर के दर्शन से उद्दीप्त श्रीराम की विरह व्यथा का वर्णन है। उधर ऋष्यमूक पर्वत पर स्थित सुग्रीव श्रीराम लक्ष्मण को आते देखकर भयभीत हो जाते हैं। तब हनुमानजी उन्हें आश्वस्त कर श्रीराम से स्वयं भेंट करते हैं और परिचय के बाद उनकी सुग्रीव से मित्रता कराते हैं। राम बालिवध की प्रतिज्ञा करते हैं। इसी प्रसंग में दुंदुभी दैत्य की कथा के साथ मतंग मुनि द्वारा बालि के शाप की कथा आती है। तत्पश्चात सुग्रीव किष्किन्धा में जाकर बालि को युद्ध के लिए ललकारता है। इन दोनों के युद्ध में राम बालि का वध कर देते हैं। मरणासन्न बालि अंगद की रक्षा की प्रार्थना करता है। इसके बाद श्रीराम की अनुमति से सुग्रीव तथा अंगद का अभिषेक होता है।

श्रीराम प्रस्रवण पर्वत पर वर्षा ऋतु का समय व्यतीत करते हैं। वर्षा व्यतीत होने पर शरद ऋतु आ जाती है। तब सुग्रीव की कृतघ्नता से खिन्न होकर श्रीराम क्रुद्ध लक्ष्मण को किष्किन्धा भेजते हैं। लक्ष्मण के पहुंचने पर सुग्रीव उनसे क्षमा याचना कर सीता के अन्वेषण हेतु चारों दिशाओं में वानरों को भेजते हैं। यहां पर सुग्रीव द्वारा सभी दिशाओं

के महत्वपूर्ण स्थानों का भौगोलिक वर्णन किया जाता है । इन समस्त वानरों में विश्वासपात्र वानर हनुमान को दक्षिण दिशा की ओर भेजा जाता है । श्रीराम उन्हें अभिज्ञानस्वरूप एक मुद्रिका प्रदान करते हैं ।

अंगद के नेतृत्व में दक्षिण दिशा की ओर जाने वाला वानर दल सीतान्वेषण में असफल एवं भूख प्यास से व्याकुल होकर एक गुफा में प्रवेश करता है । उस कन्दरा में उन वानरों को स्वयंप्रभा नामक तपस्विनी के दर्शन होते हैं । वह वानरों का सत्कार करती है तथा उनकी आंखें बन्द करवाकर योगबल से उन्हें समुद्रतट पर पहुंचा देती है । यहां पहुंचकर सीता की खोज न कर सकने के कारण वानर प्राण त्यागने का निश्चय करते हैं । उसी समय जटायु का भाई सम्पाती वहां आता है । वह उन्हें रावण और सीता का पता बताता है । सम्पाती के चले जाने पर सभी वानर अपनी-अपनी शक्ति का कथन करते हैं किन्तु कोई भी लंका जाकर सीता का पता लगाने का साहस नहीं कर पाते । तभी जाम्बवान हनुमानजी को उनकी उत्पत्ति की कथा सुनाकर उनके सामर्थ्य का वर्णन कर उन्हें लंका जाने के लिए उत्साहित करते हैं । यह सुनकर हनुमानजी समुद्र पार करने के लिए महेन्द्र पर्वत पर चढ़ जाते हैं । यहीं किष्किन्धाकाण्ड समाप्त हो जाता है ।

सुन्दरकाण्ड

सुन्दरकाण्ड के प्रारम्भ में हनुमानजी आकाशमार्ग से समुद्र पार करते हुए लंका के लिए प्रयाण करते हैं । मार्ग में समुद्र के कहने पर मैनाक उनसे विश्राम का आग्रह करता है किन्तु वे उसका स्पर्श कर आगे बढ़ जाते हैं । आगे देवताओं द्वारा सुरसा के माध्यम से हनुमानजी की शक्ति एवं बुद्धि की परीक्षा ली जाती है । इसमें सफल होकर एवं सुरसा से विजय का आशिर्वाद ग्रहण कर अपने लक्ष्य की ओर चल देते हैं । मार्ग में पुनः छाया ग्रहण करने वाली सिंहिका राक्षसी के द्वारा अवरोध उत्पन्न किया जाता है । हनुमानजी उसका वध कर अन्ततः लंका में प्रवेश करते हैं । लंका में प्रवेश के

समय लंका की पुर रक्षिका को परास्त कर वे रावण तथा अन्य राक्षसों के अन्तःपुर में सीता की खोज करते हैं । यहां अन्तःपुर का विशद वर्णन है । सीता के न मिलने से हताश होकर हनुमानजी अशोकवन में प्रवेश करते हैं तथा वहां राक्षसियों से घिरी हुई सीता के दर्शन करते हैं । इसी समय हनुमानजी रावण को भी देखते हैं जो वहां आकर सीता को विभिन्न प्रलोभनों के द्वारा आकर्षित करने का प्रयास कर रहा था । सीता के फटकारने पर दो मास की अवधि देकर वह चला जाता है ।

इधर राक्षसियां सीता को अत्यन्त भयभीत करती हैं । उसी समय त्रिजटा नामक राक्षसी एक दुःस्वप्न का वर्णन करती है । उसे सुनकर राक्षसियां चली जाती हैं । इसके बाद हनुमानजी शनैःशनैः रामकथा का वर्णन करते हैं । कुछ सन्देह के पश्चात सीता उनके प्रति आश्वस्त हो जाती हैं । हनुमानजी सीता को अभिज्ञान मुद्रिका देते हैं तथा सीता से चूड़ामणि एवं उनका संदेश लेकर वापस आते हुए अशोकवाटिका ध्वस्त कर देते हैं । यहां हनुमानजी के भयंकर युद्ध तथा उनके द्वारा रावण के पुत्र अक्षकुमार के मारे जाने का वर्णन है । तदनंतर वे मेघनाद के द्वारा नागास्त्र के द्वारा बांध लिये जाते हैं ।

रावण की सभा में हनुमानजी रामदूत के रूप में रावण से सीता की मुक्ति का आग्रह करते हैं किन्तु रावण उन्हें मृत्युदण्ड देता है । इसी समय विभीषण के द्वारा दूतवध का निषेध करने पर अन्य दंड के रूप में उनकी पूंछ में आग लगा दी जाती है । नगर में घुमाये जाते हुए हनुमानजी लंका में आग लगा देते हैं तथा पुनः सीता से मिलकर अपने साथियों के पास लौट आते हैं । उनकी सफलता से प्रसन्न वानर मधुवन में खूब उत्पात करते हुए मधुपान करते हैं । वनरक्षक दधिमुख सुग्रीव को वन उजाड़ने का समाचार

देता है । तत्पश्चात हनुमानादि सुग्रीव एवं श्रीराम के पास जाते हैं तथा उन्हें अपनी सफलता का समाचार सुनाते हैं । हनुमानजी श्रीराम को अभिज्ञानस्वरूप चूड़ामणि देकर काकवृतान्त सुनाते हैं तथा सीता संवाद का वर्णन करते हैं । यहीं सुन्दरकाण्ड पूर्ण हो जाता है ।

युद्धकाण्ड

युद्धकाण्ड के आरम्भ में श्रीराम के समुद्र पार करने के लिए चिन्तित होने पर सुग्रीव उन्हें उत्साहित करते हैं । हनुमानजी से लंका के दुर्ग, फाटक, सेना विभाग और संक्रम आदि का वर्णन सुनकर श्रीराम से सेना को कूच करने की आज्ञा देने की प्रार्थना करते हैं । तत्पश्चात सेना समुद्रतट पर पड़ाव डालती है ।

इधर लंका में रावण अपने मंत्रियों के साथ राम पर विजय पाने का उपक्रम करता है । विभीषण राम को अजेय बताकर सीता को लौटाने के लिए रावण से प्रार्थना करता है । रावण उसका अनुरोध ठुकरा देता है । विभीषण पुनः सीता को वापस करने की बात करता है किन्तु रावण और मेघनाद के द्वारा अपमानित किये जाने पर अपने मन्त्रियों के साथ राम की शरण में आ जाता है । राम उसे लंका के राज्य पर वहीं अभिषिक्त कर देते हैं । इसके बाद वे समुद्र से मार्ग प्राप्त करने के लिए विभीषण की सलाह से सागर तट पर धरना दे देते हैं ।

इधर शार्दूल के कहने से रावण शुक के द्वारा सुग्रीव के पास संदेश भेजता है जहाँ उसे पकड़कर उसकी दुर्दशा की जाती है । श्रीराम की कृपा से उसे मुक्त कर दिया जाता है । तत्पश्चात तीन दिन तक प्रार्थना करने पर भी जब समुद्र मार्ग नहीं देता तो राम शरसंधान कर उसे क्षुब्ध कर देते हैं । इसके बाद समुद्र की सलाह से नल के द्वारा सागर पर सेतु

का निर्माण कर वानर सेना पार उतरती है और व्यूह के रूप में लंका को चारों ओर से घेर लेती है । इधर शुक रावण को राम की सैन्य शक्ति की प्रबलता बताता है । रावण पुनः शुक और सारण को गुप्त रूप से समाचार ज्ञात करने भेजता है । वे वहां पकड़े जाते हैं । श्रीराम की कृपा से छूटने पर रावण के पास जाकर वानर सेना के यूथपों का पृथक- पृथक व विस्तृत वर्णन करते हैं । इसके बाद रावण मायारचित राम का कटा हुआ सिर दिखाकर सीता को मोहित करने का प्रयत्न करता है । किन्तु सरमा सीता को आश्वस्त करती है । माल्यवान रावण को राम के साथ संधि करने की सलाह देता है । इस पर रावण उसकी भर्त्सना करता है तथा नगर की रक्षा का प्रबन्ध कर अन्तःपुर में चला जाता है ।

विभीषण श्रीराम से रक्षा प्रबन्ध का वर्णन करते हैं । श्रीराम लंका के विभिन्न द्वारों पर सेनापतियों की नियुक्ति करते हैं । तदनंतर राम के साथ लंकापुरी का निरीक्षण करते हुए सुग्रीव रावण को देखते हैं और क्रोध के आवेश में उसके पास कूदकर जाते हैं तथा उसे भीषण मल्लयुद्ध में पराजित करते हैं । इसके बाद लंका पर वानरों की चढ़ाई का वर्णन है । द्वन्द युद्ध में वानरों द्वारा राक्षसों की पराजय होती है । तत्पश्चात रात्रि में वानरों और राक्षसों के घोर युद्ध, अंगद द्वारा इन्द्रजित की पराजय, माया से तिरोहित मेघनाद द्वारा श्रीराम एवं लक्ष्मण को नागपाश में बांधने आदि का विस्तृत वर्णन है ।

रावण की आज्ञा से राक्षसियों द्वारा सीता को पुष्पक विमान से रणभूमि में ले जाकर नागावेष्टित राम लक्ष्मण का दर्शन कराया जाता है । दुःखी सीता को त्रिजटा सांत्वना देती है । गरुड़ आकर राम-लक्ष्मण को नागपाश से मुक्त कर देते हैं । इसके बाद रावण के युद्धभूमि में आने एवं पराजित होने पर कुंभकर्ण को जगाये जाने, कुंभकर्ण के भीषण युद्ध एवं राम के द्वारा उसके वध का वर्णन किया गया है । विभिन्न राक्षसों के युद्ध

के पश्चात इन्द्रजित द्वारा ब्रह्मास्त्र से राम एवं लक्ष्मण को मूर्च्छित किये जाने का विशद वर्णन किया गया है। इसके उपरान्त जाम्बवान के परामर्श से हनुमानजी द्वारा दिव्य औषधि पर्वत लाकर उन औषधियों से सभी स्वपक्षियों को स्वस्थ करने का प्रसंग आता है। इसके बाद पुनः घोर संग्राम होता है। इस संग्राम में मेघनाद द्वारा माया सीता का वध करने का प्रसंग आता है। इसके बाद वह निकुम्भिला के मन्दिर में जाकर यज्ञ में प्रवृत्त हो जाता है। श्रीराम लक्ष्मण को इन्द्रजित का वध करने के लिए भेजते हैं और लक्ष्मण यज्ञ विध्वंस कर युद्ध में उसे मार डालते हैं।

इधर पुत्रशोक से व्यग्र रावण सीता का वध करना चाहता है किन्तु सुपार्श्व उसे रोक देता है। राम एवं रावण का भीषण युद्ध होता है, लक्ष्मण रावण की शक्ति से मूर्च्छित हो जाते हैं। हनुमानजी द्वारा लाई गई औषधि के, सुषेण द्वारा किये गये प्रयोग से लक्ष्मण सचेत हो जाते हैं। तत्पश्चात इन्द्र द्वारा भेजे गये रथ पर बैठकर श्रीराम रावण से महासंग्राम करते हैं। महर्षि अगस्त्य श्रीराम को विजय हेतु आदित्यहृदय के पाठ का परामर्श देते हैं और श्रीराम युद्ध में रावण का वध कर देते हैं।

इसके बाद रावण की स्त्रियों के विलाप एवं रावण के दाह-संस्कार का वर्णन किया गया है। फिर विभीषण के राज्याभिषेक, श्रीराम की आज्ञा से विभीषण का सीताजी को श्रीराम के सम्मुख लाने का, सीता के चरित्र पर श्रीराम द्वारा संदेह व्यक्त करने तथा उन्हें स्वीकार करने से इन्कार करने का वर्णन है। तत्पश्चात उन्हें उपालम्भ देते हुए सीता अग्नि में प्रविष्ट हो जाती है। उसी समय देवता आकर श्रीराम एवं सीता की भगवत्ता का प्रतिपादन करते हैं तथा मूर्तिमान अग्निदेव सीता को श्रीराम जी को समर्पित कर देते हैं।

इसके उपरान्त दिव्यलोक से आये हुए दशरथजी को प्रणाम करते हैं। श्रीराम के अनुरोध पर इन्द्र मृत वानरों को जीवित कर देते हैं। उन्हीं की आज्ञा से विभीषण वानरों का विशिष्ट सत्कार करते हैं तथा समस्त वानरों को लेकर एवं विभीषण को भी साथ लेकर श्रीराम अयोध्या के लिए प्रस्थान कर देते हैं। मार्ग में वे महर्षि भरद्वाज के आश्रम पर उतरते हैं। हनुमानजी श्रीराम के आगमन की पूर्व सूचना निषादराज गुह एवं भरतजी को देते हैं तथा उन्हें श्रीराम के वनवास का समस्त वृतान्त सुनाते हैं।

उधर अयोध्या में श्रीराम के स्वागतार्थ तैयारी करके समस्त पौरजन उनकी अगवानी के लिए नन्दिग्राम में आ जाते हैं। यहाँ राम एवं भरत के मिलाप का मार्मिक वर्णन है। श्रीराम पुष्पक विमान को कुबेर के पास भेज देते हैं। भरत श्रीराम को राज्य सौंप देते हैं। तत्पश्चात राम की नगर यात्रा, राज्याभिषेक, वानरों के सत्कार एवं विदाई तथा राम राज्य वर्णन व इस ग्रन्थ के महात्म्य के साथ ही युद्धकाण्ड पूर्ण हो जाता है।

उत्तरकाण्ड

उत्तरकाण्ड के प्रारम्भ में राम के दरबार में महर्षि अगस्त्य के द्वारा पुलस्त्य के गुण तथा विश्रवा मुनि की उत्पत्ति का वर्णन है। इन्हीं से कुबेर की उत्पत्ति हुई। तदनंतर महर्षि अगस्त्य राक्षस वंश का वर्णन करते हैं। इसी संदर्भ में सुकेश के पुत्र माल्यवान आदि की कथा है। इसके बाद रावण का जन्म, उसकी घोर तपस्या, उसके दिग्विजय आदि का अनेक सर्गों में वर्णन है। तदनंतर रावण के पुत्र मेघनाद द्वारा इन्द्र पर विजय एवं सहस्रार्जुन एवं बालि के हाथों रावण के पराभूत होने की कथा है।

इसके बाद इस काण्ड में हनुमानजी की उत्पत्ति, उनका सूर्य, राहु, एवं ऐरावत पर आक्रमण आदि विशिष्ट चरित्रों का वर्णन है । इन प्रसंगों के बाद सीता चरित्र की चर्चा प्रारम्भ हुई है । गर्भिणी सीता वन विहार करना चाहती है । तभी उनके प्रति राम को अशोभनीय वार्ताओं की सूचना प्राप्त होती है । इस अपवाद के कारण राम प्रजारंजन हेतु सीता का परित्याग कर उन्हें वन में छुड़वा देते हैं । वहाँ से वे महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में पहुंच जाती हैं ।

इधर राम लक्ष्मण को राजा नृग के शाप की कथा सुनाकर उन्हें कर्तव्य के प्रति सचेत करते हैं । इसके बाद राजा निमि, वशिष्ठ, उर्वशी और पुरूरवा, ययाति एवं उनके पुत्र आदि की कथायें आती हैं । इसके बाद शत्रुघ्न के द्वारा लवणासुर वध करके वापस आते हुए महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में कुछ दिन निवास करने का प्रसंग आता है ।

तदनंतर शम्बूक की कथा का प्रसंग है जिसका नारदजी के कहने पर श्रीराम वध कर देते हैं । इसके बाद अश्वमेध यज्ञ के प्रस्ताव में इन्द्र और वृत्तासुर की कथा वर्णित है । राम के अश्वमेध यज्ञ में महर्षि वाल्मीकि का आगमन होता है जो अपने शिष्यों कुश और लव को रामायण गान करने का आदेश देते हैं । यहीं वे सीता की शुद्धता का भी समर्थन करते हैं किन्तु सीता शपथ ग्रहण कर रसातल में चली जाती हैं ।

आगे चलकर चारों भ्राताओं के कुमारों का चरित्र वर्णित है । राम की माताओं का स्वर्गगमन, कुश एवं लव का राज्याभिषेक, श्रीराम के परमधाम की तैयारी, उनके साथ समस्त अयोध्यावासियों का संतानक लोक की प्राप्ति तथा राम का विष्णु रूप में प्रवेश तथा काण्ड के अन्त में रामायण काव्य का उपसंहार तथा उसकी महिमा का वर्णन है ।

वस्तुतः वाल्मीकीय रामायण में युद्धकाण्ड के अन्तिम सर्ग से प्रतीत होता है कि वहीं पर ग्रन्थ की समाप्ति कर दी गई है । क्योंकि

वहां पर राम के राज्याभिषेक के पश्चात रामायण महात्म्य तथा उसके श्रवण के फल का वर्णन कर दिया गया है, जो सामान्यतः प्राचीन रचनाकारों द्वारा ग्रन्थ की समाप्ति पर किया जाता रहा है । अतः यह शंका होना स्वाभाविक है कि क्या महर्षि वाल्मीकि ने अपने इस आदि काव्य की समाप्ति युद्धकाण्ड की रचना के पश्चात ही कर दी थी, क्या उत्तरकाण्ड परवर्ती रचना है?

वास्तव में इस विषय में मात्र इतना ही कहा जा सकता है कि उत्तरकाण्ड में रामकथा से सम्बन्धित उन अंशों का वर्णन है जो युद्धकाण्ड तक वाल्मीकीय रामायण में अछूते रहे हैं जैसे - रावण का वंश वर्णन, उसकी दिग्विजय यात्रायें, हनुमानजी का जन्म तथा विचित्र लीलाएं, राम के राज्याभिषेक के बाद की उनकी चरित्रगाथाएं आदि । इसी प्रकार सीता परित्याग की घटना, रामकथा के प्रथम गायक लव-कुश का जन्म, कौशल्यादि माताओं का स्वर्गगमन, श्रीराम का अयोध्यावासियों सहित स्वधामगमन तथा सीता का रसातल में प्रवेश आदि घटनायें भी वर्णित हैं । अतः इस प्रकार श्रीराम का सम्पूर्ण चरित्र उत्तरकाण्ड को लेकर ही पूर्ण होता है ।

अन्य राम कथाएं

संस्कृत में प्राप्त रामचरितपरक ग्रन्थों में सुमेरु शिखर की भाँति सुशोभित वाल्मीकीय रामायण की महिमा का वर्णन करना सहज ही संभव नहीं है । इसी ग्रन्थ के आधार पर रामकाव्य लिखने की सुदीर्घ परम्परा को विविधतापूर्ण विस्तार मिला है । आनन्द रामायण के मनोहर काण्ड में स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है कि रामायण से ही विभिन्न रामायणों की उत्पत्ति हुई है[1] । इन विविध रामायणों को फादर कामिल बुल्के ने साम्प्रदायिक रामायणों की संज्ञा दी है[2] ।

धार्मिक साहित्य के अन्तर्गत जो संस्कृत निबद्ध रामचरित मिलते हैं उनमें योगवाशिष्ठ, अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण, भुशुण्डि रामायण व अद्भुत रामायण सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त हैं । इनके अतिरिक्त भी रामायणों की एक सुदीर्घ परम्परा प्राप्त होती है ।

योगवाशिष्ठ

योगवाशिष्ठ को महारामायण भी कहते हैं । इसका महा-रामायण अभिधान सर्वथा उपयुक्त भी है क्योंकि इसमें वाल्मीकीय रामायण की अपेक्षा लगभग चार हजार श्लोक अधिक पाये जाते हैं । छः प्रकरणों से युक्त इस ग्रन्थ में 27687 श्लोक हैं । यह ग्रन्थ वास्तव में एक साम्प्रदायिक रामायण नहीं है क्योंकि इसमें श्रीराम के जीवन से सम्बन्धित कोई क्रमबद्ध कथा नहीं प्राप्त होती है । इसे वेदान्त का उपदेशक ग्रन्थ कहा जा सकता है क्योंकि इसमें महर्षि वशिष्ठ द्वारा श्रीराम को मोक्ष प्राप्ति हेतु अद्वैत

- -

1. रामायणादेव नाना सन्ति रामायणानि

   -आनन्द रामायण मनोहर काण्ड -8/62

2. फादर कामिल बुल्के - रामकथा, अनुच्छेद 174

वेदान्त का विस्तृत उपदेश किया गया है । इस संवाद को महर्षि वाल्मीकि अरिष्टनेमि को सुनाते हैं ।

इस ग्रन्थ की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता है इसकी शैलीगत रोचकता । इसमें अनेकानेक दृष्टान्तों के माध्यम से जगत की अनित्यता एवं ब्रह्म की विशवस्यता का निरूपण किया गया है । आचार्य आद्यशंकराचार्य के वेदान्त प्रकरण ग्रन्थों यथा विवेकचूडामणि, शतश्लोकी, दक्षिणामूर्तिस्तोत्र आदि पर इस ग्रन्थ का पूर्ण प्रभाव है । सनत्सुजातीय भाष्य में तो उन्होंने इसके श्लोकों का उद्धरण भी दिया है । इसी आधार पर "डा. भीखन लाल आत्रेय" ने इस ग्रन्थ का काल शंकराचार्य से पूर्व सप्तमशती ई. माना है[1] ।

अध्यात्म रामायण

साम्प्रदायिक रामायणों में अध्यात्म रामायण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं विख्यात है । महर्षि वाल्मीकिकृत रामायण के पश्चात यही वह रामायण है जिसका परवर्ती रामकथाओं पर व्यापक रूप से प्रभाव पड़ा है । इसे ब्रह्माण्ड पुराण का खिल माना जाता है । वास्तव में इसके समय एवं लेखक के विषय में यथार्थ ज्ञान उपलब्ध नहीं है ।

इसकी बहुत सी कथायें वाल्मीकीय रामायण से सर्वथा भिन्न हैं । इसकी सम्पूर्ण कथा शिव-पार्वती संवाद के रूप में वर्णित हैं । जन्म के समय राम का कौशल्या को विष्णु रूप दिखाना, अहल्योद्धारा के अनन्तर केवट का वृतान्त, यौवराज्याभिषेक से पूर्व राम-नारद संवाद तथा मन्थरा में सरस्वती का प्रवेश, मायामयी सीता के हरण का वृतान्त, रावण की नाभि में अमृत का होना, भगवत् प्राप्ति के उद्देश्य से रावण द्वारा सीता का हरण आदि इसकी विशिष्ट कथाएं हैं ।

---

1. डा. भीखन लाल आत्रेय, योगवाशिष्ठ और उसके सिद्धान्त, पृ. 8-32 प्रकाशन- इण्डियन बुक शॉप, वाराणसी 1937.

इस रामायण का मुख्य उद्देश्य रामायण को वेदान्त दर्शन के आधार पर प्रतिपादित करना है। वस्तुतः वाल्मीकीय रामायण में राम के माधुर्य प्रधान स्वरूप का वर्णन है तथा अध्यात्म रामायण में ऐश्वर्य प्रधान स्वरूप का वर्णन है।

आनन्द रामायण

यह एक विशालकाय रामायण है। नौ काण्डों में विभक्त इस रामायण में 12252 श्लोक पाये जाते हैं। सर्वथा नवीन नामों वाले इन काण्डों में अनेकशः विचित्र एवं सर्वथा नवीन कथाएं वर्णित हैं। इस रामायण का प्रथम काण्ड है "सारकाण्ड"। इस काण्ड में तेरह सर्ग हैं। इनमें वाल्मीकीय रामायण के राम जन्म से लेकर उत्तरकाण्ड के प्रथम चालीस सर्गों की कथा कतिपय स्थलों पर कुछ भिन्नता के साथ वर्णित है।

द्वितीय सर्ग में श्रीराम की बाललीलाओं का वर्णन एवं अहल्या उद्धार के पश्चात केवट का वृत्तान्त अध्यात्म रामायण से साम्य रखता है। प्रथम सर्ग में दशरथ एवं कौशल्या के विवाह वृत्तान्त के साथ ही रावण द्वारा कौशल्या हरण की एक विचित्र कथा प्राप्त होती है। सीता स्वयंवर में रावण की उपस्थिति, अग्निजा सीता की जन्मकथा, वृन्दा का शाप, सप्तम सर्ग में सीताहरण के पश्चात उमा का सीता रूप धारण कर राम की परीक्षा करना, नवम सर्ग में मैरावण का राम एवं लक्ष्मण को पाताल ले जाना तथा हनुमान द्वारा उन्हें मुक्त कराना आदि कथाएं इस काण्ड की विशिष्ट कथाएं हैं।

आनन्द रामायण का द्वितीय काण्ड है "यात्रा काण्ड"। इस काण्ड में चारों दिशाओं में श्रीराम की तीर्थयात्रा का विशेष वर्णन है। इसमें वाल्मीकीय रामायण की उत्पत्ति कथा भी प्राप्त होती है। तृतीय काण्ड "यागकाण्ड" के नौ सर्गों में श्रीराम के अश्वमेध यज्ञ का वर्णन है।

चतुर्थ काण्ड "विलास काण्ड" में भी नौ सर्ग हैं जिनमें वाल्मीकीय रामायण से पूर्णतः भिन्न कथाएं प्राप्त होती हैं। इनमें सीता का नखशिख वर्णन, श्रीराम-सीता की दिनचर्या, एकपत्नी व्रत के कारण राम को कृष्णावतार में बहुत पत्नियों का वरदान, कामपीड़ित देव पत्नियों को श्रीराम द्वारा कृष्णावतार में गोपिकाएं बनने का आश्वासन आदि विषय वर्णित हैं। इस रामायण का पंचम काण्ड है "जन्मकाण्ड"। इसमें श्रीराम द्वारा सीता त्याग तथा चारों भाइयों के कुमारों के जन्म की कथा वर्णित है।

रामायण के षष्ठ काण्ड "विवाह काण्ड" में रामादि के आठों पुत्रों के विवाह का वर्णन है। इसके सप्तम काण्ड "राज्य काण्ड" में रामराज्य का विस्तृत वर्णन है साथ ही राम को देखकर विभिन्न स्त्रियों के मोहित होने तथा राम द्वारा कृष्णावतार में उनकी इच्छापूर्ति के आश्वासन का उल्लेख है। अष्टम काण्ड "मनोहर काण्ड" में रामोपासना-विधि, राम नाम महात्म्य, राम कवच आदि उपासनोपयोगी वस्तुएं निर्दिष्ट हैं। अन्तिम काण्ड"पूर्ण काण्ड" में सोमवंशीय राजाओं द्वारा युद्ध तथा तदनन्तर सन्धि, कुश का अभिषेक तथा रामादिकों का वैकुण्ठारोहण का वर्णन कर ग्रन्थ का पर्यवसान होता है।

भुशुण्डि रामायण

रामभक्ति के रसिक सम्प्रदाय में भुशुण्डि रामायण का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। डा॰ भगवती प्रसाद सिंह ने अपनी पुस्तक "रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय" में भुशुण्डि रामायण का कथानक इस प्रकार लिखा है- "रावण द्वारा भेजे गये राक्षस बाल्यावस्था में ही राम को समाप्त करने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु वे स्वयं मारे जाते हैं। उनके डर से दशरथ राम को गुप्त स्थान

पर भेज देते हैं । सरयू पार गोप प्रदेश में गोपेन्द्र सुखित और उनकी स्त्री मांगल्या राम का पालन पोषण करते हैं । मिथिला पहुंचकर एक पक्षी द्वारा वे सीता के पास अपना चित्र भेजते हैं । चित्रदर्शन से सीता उन्हें प्राप्त करने के लिए उत्कंठित होती हैं । दशरथ के अश्वमेध यज्ञ में विजित राजाओं की सहस्रों कन्याओं को वे स्वीकार करते हैं । चित्रकूट आख्यान में गोप गोपिकाओं के साथ रास क्रीड़ा का आयोजन होता है । इसी प्रकार की अनेक श्रृंगारी लीलाओं के वर्णन इसमें आये हैं । सीता के अतिरिक्त राम की एक अन्य पत्नी "सहजा सखी" का उल्लेख इसमें प्राप्त होता है । सीता ज्ञानपरक भक्ति तथा सहजा प्रेमा भक्ति की प्रतीक मानी गई है[1] ।

फादर कामिल बुल्के श्री रामदास गौड़ कृत "हिन्दुत्व" में उल्लिखित "महारामायण" नामक एक अन्य रामायण के विषय में उसके "भुशुण्डि रामायण" से अभिन्न होने की संभावना व्यक्त करते हुए इसके वर्ण्य विषय के सम्बन्ध में लिखते हैं - अध्याय 48 में श्रीराम के चरणों की 48 रेखाओं का वर्णन है साथ ही उनके समस्त सृष्टि के उत्पत्ति का स्थान होने का वर्णन है । अध्याय 49 में रामोपासकों के संस्कारों का वर्णन है, इत्यादि[2]।

अद्भुत रामायण [3]

इस रामायण में अनेक अद्भुत वृत्तान्तों का वर्णन प्राप्त होता है । इसीलिए इसे अद्भुत रामायण कहा जाता है । इसके दो से आठ सर्गों में विष्णु एवं लक्ष्मी के राम एवं सीता के रूप में अवतार ग्रहण करने की कथा वर्णित है । इसके अनुसार नारद एवं पर्वत के श्राप के कारण विष्णु को

---

1. डा. भगवती प्रसाद सिंह ; रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय , पृ. 97.
2. फादर कामिल बुल्के ; रामकथा, अनुच्छेद 181
3. श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई-4 से प्रकाशित

श्रीराम का अवतार लेना पड़ा तथा स्वर्ग में अपमानित नारदजी के श्राप के कारण लक्ष्मी सीता के रूप में मंदोदरी की पुत्री बनकर अवतरित हुईं ।

इस रामायण में परशुराम की पराजय से लेकर रावण वध तत्पश्चात अयोध्या गमन तक की वाल्मीकीय रामकथा का संक्षिप्त वर्णन किया गया है । इस कथा में समुद्र पर सेतुबंध के प्रसंग में कहा गया है कि लक्ष्मण ने समुद्र सुखाया तथा राम ने उसे अपने आँसुओं से पुनः भर दिया । अद्भुत रामायण के अन्त में सीता द्वारा काली का रूप धारण कर विश्रवा एवं कैकसी के पुत्र पुष्कर में राज्य करने वाले सहस्र-स्कन्ध रावण के वध की एक विचित्र कथा प्राप्त होती है ।

इन प्रमुख रामायणों के अतिरिक्त कुछ अन्य गौण किन्तु महत्वपूर्ण रामायणों का उल्लेख भी प्रसंगतः समीचीन होगा, यथा - "तत्व संग्रह रामायण" - इसकी रचना ब्रह्मानन्द नामक कवि द्वारा 17वीं ई. में की गई[1] ।

इस रामायण की सम्पूर्ण कथा शिव-पार्वती संवाद के रूप में वर्णित है । इसकी भूमिका में श्रीराम को विष्णु के अतिरिक्त शिव, ब्रह्मा, हरिहर, त्रिमूर्ति तथा परब्रह्म का अवतार भी माना गया है । इसमें श्रीराम की अद्वैत रूप से उपासना पर विशेष आग्रह है । इस रामायण के कुछ उल्लेखनीय प्रसंग हैं - सीता स्वयंवर में शिव की उपस्थिति, कैकेयी का अनुताप, हस्तरेखा दिखाने के लिए सीता द्वारा लक्ष्मण-रेखा पार कर रावण के समीप जाना, अशोकवन में रावण-सीता संवाद के समय हनुमान द्वारा रावण पर प्रहार करना, माया सीता का वृतान्त जिसके अनुसार मृत्यु सीता का रूप धारण करती है तथा सीता द्वारा शतकनन रावण का वध[1] ।

---

1. सम्पूर्ण विवरण रामकथा के अनुच्छेद 178 पर आधारित ।

मन्त्र रामायण[1]

यह ऋग्वेद के रामपरक मन्त्रों के संग्रह की टीका है । इसके संकलनकर्ता हैं, महाभारत के विश्रुत टीकाकार "पण्डित नीलकंठ सूरि"।" इसमें ग्रन्थकार ने यह स्पष्ट किया है कि सम्पूर्ण रामायण का निर्देश ऋग्वेद में प्राप्त होता है ।

इनके अतिरिक्त रामायणों का एक ऐसा वर्ग भी मिलता है जिनमें रामकथा की प्रधान घटनाओं की तिथियों का उल्लेख है । इन्हें काल-निर्णय रामायण कहा जाता है । इस प्रकार की रामायणों के उदाहरण हैं "अग्निवेश रामायण"-वेंकटेश्वर प्रेस, "समयादर्श रामायण" - लक्ष्मी नारायण प्रेस तथा "समय निरूपण रामायण" आदि ।

- -

1. श्री वेंकटेश्वर प्रेस, खेतवाड़ी, बम्बई-4 से प्रकाशित

पुराणों में रामकथा

पुराणों एवं आदिकाव्य में पहले-पहल रामकथा का सुव्यवस्थित रूप दिखाई देता है । यही कारण है कि प्रायः समस्त परवर्ती रामाख्यान के कवियों ने वाल्मीकीय रामायण एवं पुराणों का ही आधार ग्रहण किया है ।

यद्यपि बहुत से पुराण खण्डित अथवा लुप्त हो चुके हैं तथापित महर्षि व्यास रचित प्रायः समस्त प्राप्य पुराणों में श्रीराम की लीला एवं महिमा का चित्रण कहीं संक्षिप्त तथा कहीं विशद रूप में उपलब्ध होता है । इन पुराणों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि रामकाव्य का सम्मोहक रूप पुराणकार को अपनी ओर आकृष्ट किये बिना नहीं रह सका है । पुराणकार ने बृहद्धर्म पुराण में इस बात को स्वीकार भी किया है[1] ।

पुराणों से यह स्पष्ट है कि राम के चरित्रवर्णन में लेखक की दृष्टि उनके अलौकिक रूप पर ही अधिक रही है । किन्तु इसे भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि उनके पार्थिव रूप की व्यंजना भी पुराणों में बड़े व्यापक रूप से हुई है ।

यह स्पष्ट है कि पुराणकार ने क्रमबद्ध रूप से राम की कोई कथा नहीं लिखी है किन्तु वे इतना मानकर अवश्य चले हैं कि धरती जब-जब पापियों के बोझ से व्याकुल होती है तब-तब परमेश्वर को धरती पर स्वयं अवतीर्ण होना पड़ता है । इसी क्रम में श्रीराम का भी अवतार हुआ । वे मनुष्य रूप में अवतीर्ण होकर भी परमतत्त्व थे ।

- -

1. रामायणं पाठितं मे प्रसन्नोऽस्मि कृतस्त्वया ।
   करिष्यामि पुराणानि महाभारतमेव च ।। — बृहद्धर्म पुराण 1/30/55

यद्यपि फादर कामिल बुल्के की यह मान्यता है कि - "प्राचीन राम साहित्य में कहीं भी रामभक्ति का निरूपण नहीं मिलता । हरिवंश तथा प्राचीन पुराणों में कहीं भी रामभक्ति का उल्लेख नहीं हुआ है ।[1]" तथापि यह दृष्टिगत होता है कि पुराणों में विष्णु को परमेश्वर मानकर उनकी भक्ति का विस्तृत वर्णन है । जब विष्णु भक्ति का निरूपण है तो विष्णु के अवतार श्री राम की भक्ति स्वतः सिद्ध हो जाती है । हरिवंश पुराण के 41वें अध्याय में श्री राम को श्री हरि का अवतार माना गया है । इसमें सीता को लक्ष्मी कहा गया है ।[2]

महापुराणों में रामकथा

1. हरिवंश पुराण

पौराणिक साहित्य में हरिवंश पुराण सर्वाधिक प्राचीन माना जाता है । इसमें एक संक्षिप्त सी रामकथा प्राप्त होती है । इसमें रामकथा

- -

1. फादर कामिल बुल्के - रामकथा; अध्याय 10, अनुच्छेद 147
2. राज्ञोदशरथस्याथ पुत्रः पद्मायतेक्षणः ।।
   कृत्वाऽऽत्मानं महाबाहुश्चतुर्धा प्रभुरीश्वरः ।
   लोके राम इति ख्यातस्तेजसा भास्करोपमः ।।
   रूपिणी यस्य पार्श्वस्था सीतेति प्रथिता जनैः ।
   पूर्वोचिता तस्य लक्ष्मीर्भर्तारमनुगच्छति ।।

   - हरिवंश पुराण , हरिवंश-
   पर्व 41/121, 122, 129

लगभग वाल्मीकीय रामायण की भाँति ही है किन्तु यहाँ दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ तथा अयोनिजा सीता का वृत्तान्त नहीं मिलता । इसमें श्री राम को विष्णु का अवतार माना गया है ।

मार्कण्डेय पुराण

मार्कण्डेय पुराण में अब रामकथा नहीं प्राप्त होती किन्तु नारद पुराण की सूची से ज्ञात होता है कि इसके अन्त में एक विस्तृत रामकथा थी जो नष्ट हो गई ।

ब्रह्माण्ड पुराण

ब्रह्माण्ड पुराण में रामकथा का विशद वर्णन नहीं है किन्तु खण्ड 3 अध्याय 73 में भगवान् राम के त्रेता में अवतार लेने की कथा आती है । इसके अतिरिक्त इस पुराण में सीता के अलौकिक जन्म की कथा का भी उल्लेख अध्याय 15 तथा 64 में मिलता है ।

विष्णु पुराण

विष्णु पुराण के चौथे अंश में रघुवंश का वर्णन तथा राम चरित्र का उल्लेख है । इसमें ताटका वध, अयोनिजा सीता तथा रामादि भाइयों के पुत्रों का स्पष्ट उल्लेख है ।

श्रीमद्भागवत पुराण

यह पुराण समस्त पुराणों में धार्मिक दृष्टि से सर्वाधिक श्रद्धास्पद है । इस पुराण के स्कन्ध-5 के अध्याय-19 में तथा स्कन्ध-9 के अध्याय-10, 11 एवं 13 में राम कथा विस्तार से वर्णित है । इसके द्वितीय स्कन्ध के सातवें अध्याय में रामावतार को अवतार क्रम में बीसवाँ अवतार माना गया है । इसी क्रम में ब्रह्मा ने श्री राम के चरित्र को तीन श्लोकों में वर्णित किया

है ।[1] इन्हीं तीन श्लोकों में रामकथा का सार है ।[1] इसमें समुद्र के द्वारा राम को स्वयं ही मार्ग प्रदान करने की कथा है । श्री राम के ईश्वरत्व को यह पुराण स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है ।[2]

वायु पुराण

वायु पुराण में राम कथा विष्णु पुराण के समान ही है । यहाँ अध्याय 88, 191, 200 में राम चरित्र तथा अध्याय 89, 22 में अयोनिजा सीता का वृतान्त है ।

कूर्म पुराण

इसमें सूर्यवंश के वर्णन के अन्तर्गत राम चरित्र का वर्णन आया है ।

- -

1. अस्मत्प्रसादसुमुखः कलया कलेश इक्ष्वाकुवंश अवतीर्य गुरोर्निदेशे ।
तिष्ठन् वनं सदयितानुज आविवेश यस्मिन् विरुध्य दशकन्धर आर्तिमार्च्छत् ।।
यस्मा अदादुदधिरूढभयांगवेपो मार्गं सपद्यरिपुरं हरवद् दिधक्षोः ।
दूरेसुहृन्मथितरोषसुशोणदृष्ट्या तातप्यमानमकरोरगनक्रचक्रः ।।
वक्षःस्थलस्पर्शरुग्णमहेन्द्रवाहदन्तैर्विडम्बितककुब्जुष ऊढहासम् ।
सद्योऽसुभिः सह विनेष्यति दारहर्तुर्विस्फूर्जितैर्धनुष उच्चरतोऽधिसैन्ये ।।

—श्रीमद्भागवत पुराण 2/7/23,24,25

2. नेदं यशो रघुपतेः सुरयाच्ञयाऽऽत्तलीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः ।
रक्षोवधो जलधिबन्धनमस्त्रपूगैः किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः ।।
यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम् ।
तं नाकपालवसुपालकिरीटजुष्टपादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये ।।

—श्रीमद्भागवत पुराण 9/11/20, 21

इसके पूर्व विभाग अध्याय -21 में रावण युद्ध के पश्चात् श्री राम द्वारा शिवलिंग की स्थापना का उल्लेख है । इसी में उत्तर विभाग, अध्याय-34 के पतिव्रतोपाख्यान के अन्तर्गत माया सीमा के हरण की कथा आती है ।

वराह पुराण

इस पुराण में क्रमबद्ध राम कथा नहीं प्राप्त होती किन्तु इसके अध्याय 12 में दुर्जय कृत रामस्तवन उद्धृत है । तथा अध्याय-45 में वशिष्ठ के परामर्श से दशरथ के द्वारा रामद्वादशी का व्रत किये जाने पर उन्हें रामादि चार पुत्रों की प्राप्ति का वर्णन है ।

अग्नि पुराण

इस पुराण के आरम्भ में अध्याय-2 से 12 तक वाल्मीकीय रामायण का सार है । अध्याय-240 से 260 तक राम द्वारा लक्ष्मण को राजनीति का उपदेश किये जाने का वर्णन है । इसकी कथा में नवीनता यह है कि राम के वनवास का कारण मन्थरा पर अत्याचार करना बताया गया है ।

लिंग पुराण

इसके 66वें अध्याय में रामकथा की चर्चा मात्र है । अनुच्छेद 361 के अन्तर्गत अम्बरीष उपाख्यान में राम तथा उनके भाइयों के अवतारत्व का उल्लेख मिलता है ।

वामन पुराण

वामन पुराण में भी राम कथा का उल्लेख मात्र है । यहाँ 37, 812 में वेदवती तीर्थ के प्रसंगान्तर्गत रावण द्वारा अपमानित वेदवती का रावण के संहार हेतु सीता के रूप में उत्पत्ति का उल्लेख है ।

नारदीय पुराण

इस पुराण के पूर्व खण्ड में बालकाण्ड से युद्धकाण्ड तक तथा उत्तर खण्ड में बालकाण्ड से उत्तरकाण्ड पर्यन्त वाल्मीकीय रामायण की कथा का ही सार संक्षेप है। इसके अध्याय 79 में द्रविड़ देश में ब्राह्मणों द्वारा विभीषण के बांधे जाने की कथा आती है। अध्याय-75 में राम लक्ष्मण क्रमशः नारायण एवं संकर्षण के अवतार माने गये हैं।

ब्रह्म पुराण

यह एक ऐसा पुराण है जिसका अधिकांश श्री राम के ही चरित्र से परिपूर्ण है। इसके 213वें अध्याय का राम चरित्र हरिवंश पुराण के 41वें सर्ग से यथावत् उद्धृत है। इसमें नवीन कथांश यह है कि यहां अध्याय70-176 में सीता की रक्षा के लिए अंगद हनुमान आदि द्वारा प्राण त्यागने का उल्लेख है।

इस पुराण में रामतीर्थ के अन्तर्गत कुछ कथाएं आती हैं जिनमें कैकेयी द्वारा देव-दानव युद्ध में तीन वरों की प्राप्ति, श्रवण कुमार के वध के प्रायश्चित्तस्वरूप दशरथ द्वारा अश्वमेध यज्ञ करना तथा उस यज्ञ में आकाशवाणी द्वारा उन्हें पुत्रोत्पत्ति का आश्वासन मुख्य हैं। अध्याय-154 में सीता त्याग का उल्लेख है। तत्पश्चात् वियोगी राम द्वारा गौतमी तट पर तपस्या का उल्लेख है। अध्याय-157 में रावण वध के उपरान्त अयोध्या प्रत्यागमन के समय राम द्वारा गौतमी तट पर निवास तथा शिवलिंग पूजन का वर्णन किया गया है।

गरुड पुराण

इसमें अग्नि पुराण के समान ही रामकथा का सार वर्णित है। इस पुराण की रामकथा की विशेषता यह है कि इसमें राम शूर्पणखा को विरूप करते हैं।

स्कन्द पुराण

स्कन्द पुराण के ब्रह्माण्ड खण्ड, सेतु खण्ड, धर्मारण्य खण्ड तथा वैष्णव खण्ड सम्पूर्ण रामचरित्रमय हैं । इसमें वर्णित रामकथा विषयक सामग्री में ब्रह्माण्ड खण्ड के सेतु महात्म्य में सेतुबंध का विशिष्ट वर्णन, अध्याय-47 में समुद्र बन्धन से पूर्व राम द्वारा शिवप्रतिष्ठा का उल्लेख, अध्याय-22 में सीता की अग्निपरीक्षा तथा अग्नि द्वारा सीता के सतीत्व की प्रशंसा, अध्याय-27 में रावण वध के बाद ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्तस्वरूप कोटितीर्थ में शिवलिंग की स्थापना का वर्णन, अध्याय-30 में विभीषण द्वारा सेतु को तोड़ने के लिए राम से की गई प्रार्थना, तथा अध्याय-44,47 में रावण वध के प्रायश्चित्त के लिए राम द्वारा रामेश्वर लिंग की स्थापना, हनुमान का शिवलिंग ले आने के लिए कैलाश भेजा जाना तथा मुहूर्त बीत जाने की आशंका से राम द्वारा सैकत लिंग की स्थापना मुख्य है ।

रेवा खण्ड के अध्याय-33 में ब्रह्महत्या दोष के निवारणार्थ हनुमान की तपस्या, नागरखण्ड के अध्याय-20 में लक्ष्मण का स्वामिद्रोह तथा तपस्या, दशरथ के चार पुत्रों तथा एक पुत्री का जन्म इस पुराण की रामकथा की विशेषतायें हैं ।

पद्मपुराण

पद्म पुराण में बहुत विस्तार से रामकथा का अनेक बार वर्णन हुआ है । इसमें प्राप्त रामकथा की उल्लेख्य विशेषताओं में अध्याय-55 में धोबी के कथन के फलस्वरूप सीतात्याग की कथा, अध्याय-67, 68 में राम-सीता के मिलन के द्वारा कथा को दिया गया सुखान्त मोड़, पातालखण्ड के 112वें अध्याय में दशरथ की चार पत्नियों कौशल्या, सुमित्रा, सुरूपा तथा सुवेषा का उल्लेख,सीता स्वयंवर में इन्द्र, रावण आदि के असफल हो जाने

पर राम के द्वारा धनुर्भंग का वर्णन, शिव के द्वारा दिये गये अजगव पर चढ़कर समुद्र पार करने का वर्णन तथा कुम्भकर्ण का वध रावण वध के पश्चात् होने का वर्णन मुख्य हैं। सृष्टि खण्ड के अध्याय-35 में शम्बूक वध की कथा तथा उत्तर खंड के अध्याय-269 में अवतारवाद अधिक व्यापक है। यहां श्री राम द्वारा अपनी माता को विष्णु का रूप दिखलाने का वर्णन है। इसमें राम ने ही शूर्पणखा को विरूप किया है।

ब्रह्म वैवर्त पुराण

ब्रह्म वैवर्त पुराण में भी अनेक बार रामकथा के वृत्तान्तों का विशद वर्णन है। कृष्ण जन्म खण्ड के 62वें अध्याय में पूरा रामचरित्र आ गया है। इसमें एक स्थान पर शूर्पणखा के पुष्कर में तपस्या करके अगले जन्म में कुब्जा होकर, कृष्ण को पति रूप में प्राप्त कर, कृतार्थ होने की कथा आती है।

उपपुराण

कुछ उपपुराणों में भी रामकथा का वर्णन उपलब्ध होता है।

नृसिंह पुराण

इस पुराण के 46 से 50 तक के विशाल अध्यायों में रामचरित्र का विस्तार से वर्णन आया है। इसमें वाल्मीकीय रामायण की ही सामग्री कुछ परिवर्तन सहित संक्षेप में वर्णित है। इसमें कुछ कथायें अत्यंत विलक्षण हैं जैसे- रामवनवास की वर्ष संख्या-14 के बदले 12 ही है, सीता स्वयंवर के पश्चात् अन्य क्षत्रिय राजाओं का राम पर आक्रमण वर्णित है। इसमें वर्णित सीताहरण के वृतान्त में रावण सीता का स्पर्श नहीं करता। इसके अध्याय 47 से 52 तक में राम को नारायण का पूर्णावतार तथा लक्ष्मण को शेषावतार बताया गया है। यहां सीता के त्याग की कथा नहीं प्राप्त होती।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण

इस पुराण में प्राप्त रामकथा की मात्र इतनी ही विशेषता है कि यहाँ राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न क्रमशः नारायण, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध के अवतार के रूप में वर्णित हैं ।

वह्नि पुराण

इस पुराण में एक अत्यन्त विस्तृत रामकथा प्राप्त होती है । इसमें पाषाणभूता अहल्या की कथा तथा हनुमान के "मूषिका" के रूप में लंका प्रवेश का वर्णन मिलता है । शेष कथा में कोई नवीनता नहीं है ।

शिव पुराण

शिवपुराण की रुद्र संहिता में रामकथा से संबंधित निम्न लिखित विशिष्ट सामग्री पायी जाती है-

सतीखण्ड अध्याय 24,26 में सती द्वारा राम की परीक्षा, शिव के वीर्य से हनुमान की उत्पत्ति तथा अध्याय-57में सागर पार करने के लिए राम द्वारा शिव से प्रार्थना ।

श्रीमद्देवीभागवत

देवीभागवत के चौथे तथा नवें स्कन्ध में तथा देवी पुराण के 84वें अध्याय में रामकथा है । नवरात्र महात्म्य की रामकथा के अनुसार श्री राम ने शूर्पणखा को विरूप किया था । शेष कथा रामायणीय कथा की भाँति ही है । किंचित नवीनता यह है कि सीताहरण के पश्चात् नारद की शिक्षा के अनुसार श्री राम रावण पर विजय प्राप्त करने के लिए नवरात्र उपवास करते हैं । इस पुराण के नवें स्कन्ध में छाया सीता का उल्लेख है ।

बृहद्धर्म पुराण

इस पुराण में भी रामचरित्र बहुत विस्तार से प्राप्त होता है ।

इसकी कथा का वैशिष्ट्य यह है कि इसके पूर्व खण्ड अध्याय-18-22 में हनुमान बिडाल का रूप धारण करके लंका में प्रवेश करते हैं ।

सौर पुराण

इस पुराण की कथा में श्री राम को शंकर जी का भक्त माना गया है । इसके अनुसार श्री राम ने शंकर जी की कृपा से ही अपना पद पुनः प्राप्त किया । जनक ने गौरी को संतुष्ट करके, पार्वती के अंश से उत्पन्न सीता को प्राप्त किया ऐसी कथा प्राप्त होती है ।

कालिका पुराण

कालिका पुराण के 62वें अध्याय में रामकथा का विस्तार से वर्णन है । इसके अध्याय-20, 72, 38 में जनक के द्वारा हल जोतते समय सीता को तथा दो अन्य पुत्रों को प्राप्त करने की कथा का उल्लेख है ।

कल्कि पुराण

इस पुराण में अति संक्षिप्त रामकथा प्राप्त होती है । इसकी विशेषता यह है कि इसके अंश 3, 26, 58 में राम एवं सीता का पूर्वानुराग वर्णित है तथा अध्याय-3, 17, 40 में सीता द्वारा अशोक वन में रुक्मिणी व्रत किये जाने का उल्लेख है । इसीके प्रभाव से सीता-राम का पुनर्मिलन होता है ।

इस प्रकार इस अध्ययन से ज्ञात होता है कि पुराणकार की रामचरित्र में अगाध श्रद्धा थी । उन्होंने लगभग सभी पुराणों में रामकथा की श्रद्धापूर्वक चर्चा की है । इस प्रकार पुराणकार ने कहीं विस्तार से तो कहीं संक्षेप में रामचरित्र का वर्णन किया है ।

डा॰ राजेन्द्र हाजरा के अनुसार मार्कण्डेय पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, वायु पुराण, मत्स्य पुराण, भागवत पुराण तथा कूर्म पुराण कालक्रम के अनुसार प्राचीनतम महापुराण हैं ।[1] इस प्रकार अन्य पुराण भी स्वतः ही प्राचीन सिद्ध हो जाते हैं क्योंकि कूर्मपुराण के पूर्वार्द्ध में ही पुराणों के लक्षण सहित ब्राह्म, पद्म, वैष्णव, शैव, भागवत, भविष्य, नारदीय, मार्कण्डेय, आग्नेय, ब्रह्मवैवर्त, लैंग, वराह, स्कान्द, वामन, कौर्म, मात्स्य, गारुड और ब्रह्माण्ड ये 18 पुराण वर्णित हैं । इससे इनका आर्षत्व सिद्ध हो जाता है ।

फादर बुल्के के अनुसार मार्कण्डेय, ब्रह्माण्ड तथा मत्स्य पुराण में राम चरित्र का वर्णन नहीं है ।[2] यह मान्यता भी समीचीन नहीं है क्योंकि मार्कण्डेय पुराण में भले ही अब रामकथा प्राप्त नहीं होती है किन्तु नारद पुराण की सूची से ज्ञात होता है कि इसके अन्त में विस्तृत रामकथा थी जो नष्ट हो गई । अध्यात्म रामायण तो "ब्रह्माण्ड पुराण" का ही खिल है । मात्स्य पुराण में भी रामावतार तो माना ही गया है ।

---

1. फादर कामिल बुल्के - रामकथा, अध्याय-10, अनुच्छेद-152 ।
2. फादर कामिल बुल्के - रामकथा, अध्याय-10, अनुच्छेद-152 ।

महाभारत में उपलब्ध रामकथा

महाभारत के रचयिता महर्षि वेदव्यास ने रामायण का अध्ययन करने के पश्चात् ही महाभारत तथा पुराणों की रचना की ऐसा संकेत बृहद्धर्म पुराण से प्राप्त होता है । यही कारण है कि न केवल पुराणों में अपितु महाभारत में भी संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित रामकथा प्राप्त होती है । यहां वाल्मीकीय रामायण का भी उल्लेख प्राप्त होता है ।[1] अतः इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि महाभारत के अपना वर्तमान स्वरूप प्राप्त करने से पूर्व रामायण की रचना हो चुकी थी ।

महाभारत में रामकथा का चार स्थलों पर उल्लेख प्राप्त होता है - 1. वनपर्व की रामकथा 2. द्रोण पर्व में प्राप्त रामकथा 3. शान्ति पर्व का रामचरित्र तथा 4. स्वर्गारोहण पर्व की रामकथा ।

वनपर्व की रामकथा

वनपर्व में यद्यपि तीन स्थानों पर रामकथात्मक सामग्री प्राप्त होती है किन्तु इनमें रामोपाख्यान सर्वप्रमुख है । रामोपाख्यान सम्पूर्ण महाभारत में प्राप्त सर्वाधिक विस्तृत रामकथा है । इसके अतिरिक्त भीम-हनुमान संवाद के 11 श्लोकों में वर्णित एक संक्षिप्त सी रामकथा के अन्तर्गत हनुमान, वनवास और सीताहरण से लेकर अयोध्या प्रत्यागमन तक की कथा भीम को सुनाते हैं । इसमें श्री राम के अवतारत्व एवं 11 हजार

---

1. भ्राता मम गुणश्लाघ्यो बुद्धिसत्वबलान्वितः ।
रामायणेऽतिविख्यातः शूरो वानर पुंगवः ।।
- महाभारत, वनपर्व, अध्याय-147, श्लोक-11

वर्ष पर्यन्त राज्य करने का उल्लेख भी है । यहां श्री राम को विष्णु का अवतार कहा गया है ।[1]

रामोपाख्यान

वनपर्व के रामोपाख्यान में सम्पूर्ण क्रमबद्ध किन्तु संक्षिप्त रामकथा प्राप्त होती है । रामोपाख्यान की रामकथा इस प्रकार है - वनवास काल में द्रौपदी के हरण तथा उसे पुनः प्राप्त करने के पश्चात् युधिष्ठिर जब अपने दुर्भाग्य पर शोक प्रकट करते हुए कहते हैं, "अस्ति नूनं मयाकश्चिदल्पभाग्यतरो नरः।"[2] तब महर्षि मार्कण्डेय उन्हें राम का उदाहरण देते हुए रामोपाख्यान सुनाते हैं ।

महाभारत के पुणे संस्करण के अनुसार रामोपाख्यान 704 श्लोकों में निबद्ध है । इसके अध्याय 274 के अन्तर्गत बालकाण्ड से संबंधित सामग्री प्राप्त होती है । रामोपाख्यान में राम एवं उनके भाइयों के जन्म का तो उल्लेख है किन्तु रामायण के समान पुत्रेष्टि यज्ञ तथा पायस आदि का उल्लेख नहीं प्राप्त होता ।

सीता विदेहराज जनक की पुत्री कही गई हैं । यद्यपि उनके अयोनिजत्व का उल्लेख नहीं है, किन्तु उनका त्वष्टा के द्वारा निर्माण किया गया यह कहकर उनके दिव्यत्व की पुष्टि की गई है ।[3] इसी अध्याय में

---

1. अथदाशरथिर्वीरो रामोनाम महाबलः ।
   विष्णुर्मनुष्यरूपेण चचार वसुधामिमाम् ।। - महाभारत वनपर्व 28 /147

2. महाभारत, वनपर्व, रामोपाख्यान, 273/12.

3. विदेहराजो जनकः सीता तस्यात्मजा विभो ।
   यां चकार स्वयं त्वष्टा रामस्य महिषीं प्रियाम् ।।
   - महाभारत वनपर्व रामोपाख्यान 274/9.

रावण के कुल का संकेत है तथा ब्रह्मा को उसका पितामह कहा गया है ।[1]

275वें अध्याय में रावण तथा उसके भाइयों की तपस्या एवं वरप्राप्ति, कुबेर द्वारा रावण को शाप देने की कथाओं का विस्तृत वर्णन अध्याय 276 में रावण के अत्याचारों से त्रस्त देवताओं द्वारा ब्रह्मा जी से प्रार्थना करने तथा उनके आदेशानुसार रीछ एवं वानर योनि में सन्तानोत्पत्ति का वर्णन है । यहीं दुन्दुभी गान्धर्वी का मन्थरा बनकर आने का भी वर्णन है ।[2]

रामोपाख्यान के 277वें अध्याय में वर्णित राज्याभिषेक की तैयारी से लेकर अध्याय-279 में वर्णित रावण द्वारा जटायु वध, राम द्वारा उसका अन्त्येष्टि संस्कार, कबंध का वध तथा उसके दिव्य रूप से वार्तालाप तक की सम्पूर्ण कथा रामायण के अनुसार ही है किन्तु अध्याय-280 में वर्णित राम और सुग्रीव की मित्रता का प्रसंग वाल्मीकीय रामायण से भिन्न है । यहां उनकी मित्रता हनुमान के माध्यम से नहीं होती अपितु लक्ष्मण के द्वारा होती है । बालि और सुग्रीव का युद्ध, राम द्वारा बालि का वध, लंका की अशोक वाटिका में राक्षसियों द्वारा त्रस्त सीता को त्रिजटा का आश्वासन, 282वें अध्याय में श्री राम का सुग्रीव पर कोप, सुग्रीव का सीता की खोज में वानरों को भेजना, हनुमानजी का लौटकर अपनी लंका यात्रा का निवेदन करना आदि

---

1. पितामहो रावणस्य साक्षाद् देवः प्रजापतिः ।
   स्वयम्भूः सर्वलोकानां प्रभुः स्रष्टा महातपाः ।।

   –महाभारत रामोपाख्यान 274/11

2. पितामहवचः श्रुत्वा गन्धर्वी दुन्दुभी ततः ।
   मन्थरा मानुषे लोके कुब्जा समभवत् तदा ।।

   – वही 276/10

कथाओं का वर्णन रामायणपरक ही है ।

283वें अध्याय में वानरसेना का संगठन, सेतु का निर्माण, विभीषण का अभिषेक, अंगद का दौत्य कर्म आदि वर्णन भी वैसे ही हैं । 284 से 290 तक के अध्यायों में कुछ भिन्न कथाओं का उल्लेख है । यहां लंका कांड के प्रकरण में इन्द्रजीत का मायामय युद्ध राम और लक्ष्मण की मूर्च्छा, लक्ष्मण द्वारा इन्द्रजीत वध, सीता को मारने के लिए उद्यत रावण को अविन्ध्य द्वारा रोका जाना, राम-रावण युद्ध, राम द्वारा रावण वध आदि कथाएं संक्षेप में वर्णित हैं ।

अध्याय-291 में राम का सीता की पवित्रता पर सन्देह, देवताओं द्वारा सीता की शुद्धि का समर्थन, श्रीराम का सदल-बल लंका से प्रस्थान, किष्किन्धा होते हुए अयोध्या पहुंचकर भरत से मिलना तथा श्री राम के राज्याभिषेक आदि कथाओं का भी संक्षिप्त वर्णन है ।

महाभारत का रामोपाख्यान वाल्मीकीय रामायण से बहुत कुछ घटनाओं की स्थिति के विषय में भिन्नता रखता है । ये भिन्नतायें हैं - रामायण में वर्णित पुत्रेष्टि यज्ञ के वर्णन का अभाव, वाल्मीकीय रामायण की भांति यहां विराध, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य, अयोमुखी और शबरी की कथाओं का अभाव है । इसी प्रकार इस उपाख्यान में राम-सुग्रीव की मैत्री के माध्यम हनुमान न होकर लक्ष्मण हैं । मित्रता से पूर्व राम की बल-परीक्षा का अभाव साथ ही बालि और सुग्रीव का एक ही द्वन्द्वयुद्ध वर्णित है.

इस उपाख्यान में लंकादहन का मात्र हल्का सासंकेत ही प्राप्त होता है ।[1] रावण की सभा में राम के मायामय शीर्ष की उपस्थिति तथा

---

1. ततोदग्ध्वापुरीं च ताम् - महाभारत- 3/282/71

रावण सुग्रीव का द्वन्द्व युद्ध भी नहीं वर्णित है । रामोपाख्यान में लक्ष्मण के शक्ति लगने तथा हनुमान द्वारा ओषधि पर्वत लाने का उल्लेख भी यहां प्राप्त नहीं होता ।

यहां सीता की अग्निपरीक्षा तो नहीं है किन्तु राम द्वारा सीता पर सन्देह तथा वायु, अग्नि, वरुण आदि देवों तथा ब्रह्मा द्वारा सीता की शुद्धि की पुष्टि की गई है । इन विसंगतियों के विषय में स्वामी करपात्रीजी का कथन है कि- " शतकोटि प्रविस्तर रामायण महाकाव्य वाल्मीकि द्वारा वर्णित हुआ है । चौबीस हजार श्लोकों वाला प्रसिद्ध रामायण ग्रन्थ उसी का सार है । मार्कण्डेय, व्यास आदि महर्षि भी समाधि सम्पन्न तथा सर्वज्ञ हैं अतः प्रसिद्ध रामायण में अनुक्त अंशों का वर्णन असंगत और अप्रामाणिक नहीं है । संक्षिप्त करने की दृष्टि से रामायणोक्त कई अंशों का वर्णन न करना भी संगत ही है । अतएव व्यास द्वारा वर्णित पद्मपुराण में रामायणोक्त कथाओं से विलक्षण बहुत सी कथाओं का वर्णन है । रामाश्वमेध नामक एक बहुत बड़ा भाग वहां वर्णित है । कल्पभेद से भी राम की अवतार कथाओं में भेद पुराण सम्मत है ।" [1]

द्रोणपर्व की रामकथा

द्रोण पर्व की रामकथा "शोडषराजोपाख्यान" के अन्तर्गत प्राप्त होती है । पुत्र मरण के शोक से व्याकुल सृंजय को सान्त्वना देने के लिए नारद जी ने उन्हें "शोडषराजोपाख्यान" सुनाया था । इन राजाओं में एक राजा राम भी थे । यहां राम की महिमा के साथ ही वनवास से लेकर अयोध्या प्रत्यागमन तक की सारी कथा का संक्षिप्त वर्णन है । इस रामकथा में राम की महिमा, रामराज्य की समृद्धि एवं उत्कर्ष

- -

1. स्वामी करपात्रीजी : रामायण मीमांसा - पृ. 84-85

राम के 11000 वर्ष के शासनकाल तथा उनकी मृत्यु का वर्णन है । इस पर्व की रामकथा में न तो रामायणीय कथा की बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड से संबंधित सामग्री है न ही सीता की अग्नि परीक्षा का वर्णन । यहां राम को एक महान प्रतापी सम्राट के रूप में तो वर्णित किया गया है किन्तु उनके अवतारत्व का कोई संकेत नहीं है ।

शान्तिपर्व की रामकथा

इस पर्व में भी द्रोण पर्व के समान ही प्रसंग है किन्तु यहां "षोडषराजोपाख्यान" युधिष्ठिर को श्रीकृष्ण सुनाते हैं । शान्ति पर्व में रामकथा विषयक सामग्री अत्यल्प है । यहां राम-राज्य तथा राम की चारित्रिक महानता का ही विशेष रूप से वर्णन है किन्तु प्रसंगवश उनके चौदह वर्ष के वनवास का भी उल्लेख है । यहां भी राम के अवतारत्व का वर्णन नहीं है । यहां राम के अश्वमेध यज्ञ, उनके 10,000 वर्ष तक शासन करने के उल्लेख के साथ ही शम्बूक वध का उल्लेख भी मिलता है ।[1]

स्वर्गारोहण पर्व की रामकथा

इस पर्व में रामावतार का संकेत मात्र प्राप्त होता है । किन्तु यह आख्यान महाभारत के पुणे संस्करण में प्रक्षिप्त माना गया है ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि महाभारत के रचयित भी रामकथा से बहुत अधिक प्रभावित थे ।

---

1. श्रूयते शम्बूके हते ब्राह्मणदारकः ।
   जीवितो धर्ममासाद्य रामात्सत्यपराक्रमात् ।।

   —महाभारत-शान्तिपर्व 149/12

रामकथा का बौद्ध एवं जैन साहित्य में विकास

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में रामकथा के माध्यम से महर्षि वाल्मीकि ने राम, सीता, लक्ष्मण तथा भरत जैसे जिन महान आदर्श पात्रों का परिचय समाज को दिया है, उससे समाज का प्रत्येक अंग प्रभावित हुआ है। एक परिवार में एवं परिवार से निर्मित होने वाले समाज में जिन शाश्वत सम्बन्धों की आवश्यकता है, वे सभी रामकथा में उपलब्ध हैं इसलिए जहाँ वैष्णव समाज ने रामकथा को अपने जीवन के मार्गदर्शक बिन्दु के रूप में ग्रहण किया उसी प्रकार अन्य निरीश्वरवादी बौद्ध एवं जैन धर्मावलम्बियों ने भी अपने सिद्धान्तों के मार्गदर्शक एवं सहयोगी के रूप में रामकथा को ग्रहण किया है। यद्यपि देश, काल एवं परिस्थिति के अनुसार उनके अध्ययन तथा अन्वेषण में कुछ भ्रान्तियाँ एवं भिन्नताएँ प्राप्त होती हैं तथापि रामकथा के आदर्शों का प्रभाव इन धर्मों पर भी स्पष्ट परिलक्षित होता है।

बौद्ध साहित्य में रामकथा

बौद्ध धार्मिक साहित्य में भगवान बुद्ध के अनेकानेक पूर्व जन्म की कथाओं का वर्णन करने वाली जातक कथाओं का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इन्हीं जातक कथाओं के अन्तर्गत ही रामकथापरक जातक भी पाये जाते हैं। बौद्ध साहित्य में इस विषय पर तीन जातक प्राप्त होते हैं - 1. दशरथ जातकम् 2. अनामकंम जातकम् तथा 3. दशरथ कथानम्। इन जातकों में सर्वाधिक प्रसिद्ध जातक हैं, "दशरथ जातकम्"। इन तीनों जातकों की सामग्री में पर्याप्त भिन्नता है अतः तीनों का क्रमशः उल्लेख समीचीन होगा[1]।

---

1. रामकथा के अनुच्छेद 51 से 53 तक की सामग्री पर आधारित।

दशरथ जातकम्

दशरथ जातक के अनुसार बुद्धदेव राजा दशरथ वाराणसी के राजा थे। उनकी ज्येष्ठा महारानी के तीन सन्तानें थीं। दो पुत्र रामपण्डित एवं लक्ष्मण तथा एक पुत्री सीतादेवी। इस रानी की मृत्यु के पश्चात राजा ने एक अन्य महिषी को ज्येष्ठा पद दिया, उसके भी एक पुत्र भरतकुमार उत्पन्न हुआ। इस अवसर पर राजा से प्राप्त एक वर के आधार पर रानी ने अपने पुत्र के लिए राज्य माँगा। राजा के इन्कार करने पर वह दुराग्रह करने लगी। तब षड्यन्त्र के भय से राजा ने अपने पुत्रों को किसी अन्य राज्य अथवा वन में जाकर रहने के लिए कहा। ज्योतिषियों से अपने मृत्यु की अवधि जानकर राजा ने उन्हें बारह वर्ष पश्चात आकर छत्र उठाने की आज्ञा दी। दोनों भाई तथा सीतादेवी पिता की आज्ञा लेकर वन को चल दिये। तीनों के साथ अन्य बहुत से लोग भी चल दिये। उन सबको लौटाकर वे तीनों हिमालय पर आश्रम बनाकर रहने लगे।

राजा दशरथ नौ वर्षों में ही पुत्रशोक के कारण मृत्यु को प्राप्त हो गये। अमात्य एवं भरत के विरोध के कारण रानी भरत को राजा बनाने में असफल रही। तब भरत चतुरंगिणी सेना लेकर राम को लेने चल दिये। भरत ने उन्हें पिता की मृत्यु का समाचार दिया किन्तु धैर्यशाली रामपण्डित न रोते हैं, न शोक करते हैं। भरत के बहुत अनुरोध करने पर भी रामपण्डित ने यह कहकर वन में रहने का निश्चय व्यक्त किया कि मेरे पिता ने मुझे बारह वर्ष पर्यन्त वन में रहने का आदेश दिया था। इधर भरत के द्वारा भी राज्य अस्वीकार कर देने पर राम उन्हें अपनी पादुकाएं देकर कहते हैं कि मेरे आने तक ये राज्य करेंगी। पादुकाएं लेकर

भरत, लक्ष्मण एवं सीता वाराणसी लौट जाते हैं ।

बारह वर्ष व्यतीत होने पर रामपण्डित लौटकर अपनी बहन सीता से विवाह करते हैं एवं सोलह हजार वर्ष तक राज्य कर स्वर्ग चले जाते हैं । यह जातक कथा पाली "जातकट्ठवण्णना" के अन्तर्गत पाई जाती है ।

अनामकं जातकम्

रामकथा से प्रभावित एक अन्य जातक अनामकं जातकम् भी उल्लेखनीय है । यद्यपि इस जातक में राम आदि के नामों का उल्लेख नहीं है तथापि रामायणीय कथा से घटना साम्य पाया जाता है ।

इस जातक का वृतान्त संक्षेप इस प्रकार है- एक समय बोधिसत्व महान राजा हुआ। वह सदैव दान, प्रियवचन, न्याय और समदर्शिता से सभी जीवों की रक्षा करता था । उसका मामा भी राजा था, वह लोभी और दुष्ट था । उसने बोधिसत्व का राज्य छीन लेने के लिए सेना तैयार की । यह देख बोधिसत्व अपने स्वार्थ के लिए असंख्य मनुष्यों का जीवन नष्ट करना उचित न समझकर राज्य छोड़कर वन में चला गया और अपनी रानी के साथ वन में रहने लगा ।

मामा ने राज्य पर अधिकार कर लिया । इधर एक दुष्ट नाग ने छल से उसकी रानी का अपहरण कर लिया, उस समय बोधिसत्व वन में फल लेने गया था । एक पक्षी ने नाग का विरोध किया, नाग ने उस पक्षी को मारकर उसका दाहिना पंख तोड़ दिया और स्वयं समुद्र में स्थित अपने द्वीप में चला गया ।

वापस लौटने पर रानी को न पाकर राजा उसकी खोज में

इधर-उधर भटकने लगा । एक नदी के स्रोत पर पहुंचकर उसने एक उदास वानर को देखा । राजा के द्वारा उदासी का कारण पूछे जाने पर उसने बताया कि वह एक राजा था तथा उसके चाचा ने छल से उसका राज्य छीन लिया । राजा ने भी उसे अपना वृतान्त सुनाया । दोनों ने परस्पर सहायता का वचन देकर मैत्री कर ली । दूसरे दिन वानर ने अपने चाचा से युद्ध किया । राजा के धनुष पर बाण सन्धान करते ही वानर का चाचा डरकर भाग गया । राजा बनकर वानर ने अपने साथियों को रानी का अन्वेषण करने के लिए भेजा । खोज में गये कपियों ने उस पक्षी को देखा । पक्षी ने बताया कि नाग ने रानी को चुराया है । वानर सेना को समुद्र पार करने में असमर्थ देखकर इन्द्र छोटे वानर का रूप धारण कर आया और बोला कि प्रत्येक वानर को पर्वत का एक टुकड़ा लाने की आज्ञा दो, इस प्रकार समुद्र पर एक मार्ग बन जायेगा और आप द्वीप में पहुंच जायेंगे । वानरों ने ऐसा ही किया और नागद्वीप को घेर लिया ।

नाग ने घना विषैला कुहरा उत्पन्न कर दिया । सभी पृथ्वी पर गिर पड़े । छोटे वानर ने सबकी नाकों पर दैव औषधि लगाकर उन्हें स्वस्थ कर दिया । नाग ने आंधी और बादलों से सूर्य को छिपा लिया, बिजली चमकने लगी तब छोटे वानर ने बताया कि बिजली ही नाग है । राजा ने एक बाण से नाग को मार डाला । छोटे बन्दर ने रानी को मुक्त कराया एवं राजा अपने मामा की मृत्यु का समाचार सुनकर अपने देश को चला गया ।

अपने राज्य में लौटकर राजा ने रानी से कहा कि पति से अलग दूसरे के घर निवास करने पर लोग स्त्री के आचरण पर सन्देह करते हैं । इस पर रानी ने कहा कि नीच की गुफा में रहकर भी वह उसमें कमलपत्र की भांति निर्लेप रही । अपना सतीत्व प्रमाणित करने के

लिये वह पृथ्वी को फटने के लिए कहती है और पृथ्वी फट जाती है । इस प्रकार रानी का सतीत्व प्रमाणित होता है ।

यद्यपि इस जातक में दशरथ, कैकेयी आदि रानियों, भरतादि भाइयों, अयोध्या, यहां तक कि राम के नाम का भी स्पष्ट उल्लेख नहीं है किन्तु घटनाओं पर रामकथा का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है । राम का वनगमन बोधिसत्व के वनगमन में परिणित हो गया है । बौद्ध कथा होने से मृगवध का उल्लेख न होने पर भी रानी के अपहरण के समय राजा के कुटी पर न होने का उल्लेख एवं नाग द्वारा परिव्राजक के रूप में रानी का अपहरण सीता के अपहरण की स्मृति दिलाता है । इसी प्रकार सीता की रक्षा हेतु जटायु एवं रावण का युद्ध नाग एवं पक्षी के युद्ध में बदल गया है । इस प्रकार सम्पूर्ण कथा रामकथात्मक है ।

दशरथ कथानम्[1]

एक अन्य रामकथात्मक बौद्ध वृतान्त है, दशरथ कथानम् । इसकी संक्षिप्त कथावस्तु इस प्रकार है —जम्बू द्वीप में दशरथ नामक राजा राज्य करते थे । उनकी एक महिषी के राम नामक तथा दूसरी के लक्ष्मण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । तीसरी रानी से भरत और चौथी रानी से शत्रुघ्न उत्पन्न हुए । राम में नारायणीय शक्ति थी ।

राजा का तीसरी रानी पर विशेष प्रेम था । इसीलिए राजा ने उसकी इच्छा पूर्ण करने के लिए उसे सम्पूर्ण धन एवं कोश देना चाहा । इस पर रानी ने यह कहकर इन्कार कर दिया कि इस समय उसे कोई आवश्यकता नहीं है । कुछ दिनों बाद राजा बीमार पड़े और उन्होंने राम का अभिषेक कराया । यह देखकर तीसरी रानी ने ईर्ष्यावश उसको दिये गये दो वरों की राजा से मांग की । इनमें से एक वरदान के

---

1. हिन्दी अनुवाद – नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष 54, पृ. 286-89

द्वारा राम को गद्दी से उतारे जाने और दूसरे के द्वारा अपने पुत्र के अभिषेक की माँग की। यह सुनकर राजा बहुत दुःखी हुये किन्तु वे राजधर्म के अनुसार अपने दिये गये वचन को भंग नहीं करना चाहते थे।

इस समय लक्ष्मण ने राम से अपनी शक्ति और साहस दिखाने की प्रार्थना की किन्तु इस कृत्य को राम ने पितृभक्त पुत्र के लिए अनुचित बताया। दशरथ ने इन दोनों पुत्रों को वनवास की आज्ञा देकर उन्हें बारह वर्षों के पश्चात लौटने के लिए कहा। भरत उस समय विदेश में थे। वे दशरथ की मृत्यु के बाद राज्य में लौटे तो सब वृतान्त सुनकर उन्हें माता के कृत्यों से घृणा हो गई। वे सेना को साथ लेकर राम को लौटा लाने के लिए वन में गये। वहाँ जाकर उन्होंने राम से लौटने तथा राज्यभार ग्रहण करने की प्रार्थना की। राम ने पिता की आज्ञा का उल्लंघन करने से इन्कार कर दिया। तब भरत ने राम की खड़ाऊं माँगी और अयोध्या लौट गये। खड़ाऊं को सिंहासन पर रखकर उन्हीं की आज्ञा से शासन की देखभाल करने लगे। अवधि पूरी होने पर राम अपने देश को लौट आये तथा भरत के बहुत आग्रह करने पर सिंहासन स्वीकार कर लिया।

इन कथाओं के अतिरिक्त बौद्ध साहित्य के लंकावतार सूत्र के प्रथम अध्याय में लंकापति रावण तथा भगवान बुद्ध का धर्म के विषय में वार्तालाप प्राप्त होता है किन्तु यहाँ रामकथा का कोई निर्देश नहीं है।

वस्तुतः बौद्धधर्म निरीश्वरवादी है। इसमें ईश्वर मान्य नहीं है किन्तु लोकप्रिय होने के कारण बौद्धधर्म के अनुयायी रामकथा की ओर आकृष्ट हुए। भागवत धर्म से विरोध होने के कारण उन्होंने रामायणीय कथा को ही विकृत करके तथा किसी न किसी रूप में अपने धर्म में ढालकर

तथा अत्यन्त विकृत रूप देकर अपने क्षेत्र में प्रचारित किया । कहीं-कहीं तो विकृति इतनी बढ़ गई है कि सीता को राम की बहन कहकर भाई एवं बहन के विवाह तक का समर्थन कर दिया गया है ।

जैन साहित्य में रामकथा

जैन धार्मिक ग्रन्थों में एक विस्तृत रामकथा साहित्य प्राप्त होता है । जैनियों ने रामकथा के पात्रों राम, लक्ष्मण तथा रावण को जैन धर्मावलम्बी मानते हुए उन्हें त्रिषष्टि महापुरुषों में स्थान दिया है । इन त्रिषष्टि महापुरुषों की जीवनियों को जैन साहित्य में पुराणों का सा सम्मान प्राप्त है । ये त्रिषष्टि महापुरुष हैं - चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव, नौ वासुदेव तथा नौ प्रतिवासुदेव । इनमें राम, लक्ष्मण तथा रावण क्रमशः आठवें बलदेव, वासुदेव तथा प्रतिवासुदेव माने जाते हैं । इन महापुरुषों का विस्तृत वर्णन "त्रिषष्टि लक्षण महा-पुराण", जिनसेनकृत आदि पुराण, गुणभद्रकृत उत्तर पुराण तथा पउमचरियं में पाया जाता है । जैन साहित्य में रामकथा का व्यवस्थित रूप विमल सूरि की रामकथा से ही प्रारम्भ होता है । विमल सूरि की परम्परा की चर्चा करते हुए फादर कामिल बुल्के कहते हैं, "विमल सूरि ने पउमचरियं लिखकर पहले पहल लोकप्रिय रामकथा को जैन धर्म के साँचे में ढालने का प्रयत्न किया है[1] ।

पउमचरियं या पद्मचरितम्

पउमचरियं शुद्ध जैन महाराष्ट्रीय भाषा में लिखा गया है । इसका संस्कृत रूपान्तर रविषेणाचार्य ने पद्मचरितम् के नाम से किया है । रविषेण ने इसमें मौलिकता का किंचित भी समावेश नहीं किया है । इस ग्रन्थ में राम और सीता से सम्बन्धित अनेक कल्पनायें हैं जो वाल्मीकीय रामायण से

1. फादर कामिल बुल्के : रामकथा ; अनुच्छेद 58

सर्वथा भिन्न हैं ।

इसकी कथा इस प्रकार है - अपराजिता तथा सुमित्रा के साथ दशरथ का विवाह हो जाने के पश्चात नारद ने जाकर दशरथ को सावधान किया कि विभीषण उनको मारना चाहता है क्योंकि उनका पुत्र जनक की पुत्री सीता के कारण रावण को मारेगा । यह सुनकर राजा राज्य छोड़, पृथ्वी पर भ्रमण करने लगे । इसी बीच में कैकेयी के स्वयंवर में पहुंचे । वहां कैकेयी ने दशरथ का वरण किया । अन्य राजाओं से इस कारण युद्ध हुआ । इस संग्राम में कैकेयी ने दशरथ के रथ का संचालन किया। इस अवसर पर राजा ने उसे वर प्रदान किया और कैकेयी ने अवसर आने पर इच्छित वर मांगने की बात कही ।

इसके बाद अपराजिता से पद्म या राम का, सुमित्रा से लक्ष्मण तथा कैकेयी से भरत तथा शत्रुघ्न का जन्म हुआ । रविषेण के अनुसार शत्रुघ्न का जन्म दशरथ की चौथी रानी सुप्रभा से हुआ था ।

राजा जनक की विदेहा रानी से सीता का जन्म हुआ । राम ने म्लेच्छों के विरुद्ध जनक की सहायता की जिसके फलस्वरूप राम एवं सीता का वाग्दान हुआ । सीता स्वयंवर के समय राम ने धनुष चढ़ाया और सीता के साथ उनका विवाह हो गया ।

कुछ समयोपरान्त जब दशरथ को वैराग्य उत्पन्न हुआ उस समय कैकेयी ने पूर्व प्राप्त वर के आधार पर भरत के लिए राज्य मांग लिया । यह सुनकर राम, सीता और लक्ष्मण दक्षिण दिशा की ओर वन को चले गये । तत्पश्चात पश्चातापिनी कैकेयी के कहने पर भरत ने वन में जाकर राम से राज्य स्वीकार करने का अनुरोध किया । राम के अस्वीकार करने पर भरत अयोध्या लौट आये और राज्यभार ग्रहण कर लिया । किसी मुनि के सामने उन्होंने प्रतिज्ञा की कि राम के प्रत्यागमन पर

मैं दीक्षा ग्रहण कर लूँगा ।

पउमचरियं के वनभ्रमण §पर्व 32 -42§ में चित्रकूट का उल्लेख तो है किन्तु वाल्मीकीय रामायण के उल्लेखों से सर्वथा भिन्न है । इसके अनुसार वज्रकर्ण ने आठ तथा सिंहोदर ने तीन सौ कन्याएं लक्ष्मण को प्रदान की थी । इनके अतिरिक्त वनमाला, रतिमाला तथा जितपद्मा नामक कन्याओं को भी लक्ष्मण ने प्राप्त किया ।

विमल सूरि के अनुसार §पर्व 43-52§ चन्द्रनखा के पुत्र शम्बूक ने सूर्यहास खड्ग की प्राप्ति के लिये तप किया । संयोगवश लक्ष्मण वहाँ पहुँचे तथा उसी खड्ग से शम्बूक का सिर काट दिया' । चन्द्रनखा पुत्र को मृत देखकर विलाप करती इतस्ततः घूमने लगी । भटकते-भटकते उसने राम लक्ष्मण को देखा तथा उनकी पत्नी बनने का प्रस्ताव किया । उनके द्वारा अस्वीकार करने पर अपने पति के पास तथा रावण के पास पुत्रवध का समाचार भेजा । इसी बीच खर-दूषण की सेना को लक्ष्मण अकेले ही रोक लेते हैं । तभी रावण वहाँ पहुँचता है तथा अवलोकिनी विद्या से लक्ष्मण का राम को बुलाने के लिये दिया हुआ संकेत जान लेता है और उसके द्वारा राम को लक्ष्मण के पास भेजकर, सीता का अपहरण कर लेता है ।

सीता-हरण के पश्चात् सुग्रीव तथा राम की मित्रता का वर्णन है । साहसगति ने सुग्रीव का रूप धारण कर उसकी पत्नी तथा राज्य छीन लिया था । राम ने साहसगति को मारकर सुग्रीव को उसका राज्य लौटा दिया । सुग्रीव ने राम के लिए तेरह कन्याएं समर्पित कीं । सुग्रीव की आज्ञा से विद्याधर सीता की खोज करने जाते हैं । सुग्रीव को रत्नजटी से मालूम हुआ कि सीता का हरण रावण ने किया है । उसी समय सुग्रीव को स्मरण होता है कि अनन्तवीर्य ने

रावण से कहा था जो कोटि शिला उठा लेगा वही तेरा वध करेगा । लक्ष्मण कोटिशिला उठा लेते हैं । विद्याधर फिर भी भयभीत रहते हैं और हनुमान् को लंका भेजकर विभीषण की सहायता से रावण को समझाने का प्रयत्न करते हैं ।

हनुमान् अपनी लंका यात्रा में महेन्द्र पर्व को परास्त करते हैं तथा लंका पहुंचकर वज्रमुख का वध करते हैं । इसके बाद लंका सुन्दरी को परास्त कर लंका में प्रवेश करके सीता से मिलते हैं । लंका के महलों, उद्यानों आदि का विध्वंस कर इन्द्रजित द्वारा बांधे जाकर रावण के पास उपस्थित किये जाते हैं । वहां से रावण को धमकाकर, बन्धन तोड़, रावण का महल ध्वस्त कर, सीता का सन्देश लेकर राम के पास आ जाते हैं ।

युद्ध पर्व §54-66§ में वाल्मीकीय रामायण से पर्याप्त भिन्नता है । सेतुबन्ध के प्रसंग में नितान्त नवीन कथा है । यहां समुद्र नामक एक राजा वानरों की सेना को रोक लेता है तथा नल द्वारा पराजित होकर अपनी चार कन्यायें लक्ष्मण को अर्पित कर देता है । एक स्थान पर रावण बहुरूपा विद्या सिद्ध कर सीता को धमकी देता है कि वह राम को मारकर सीता को अपनी रानी बना लेगा । सीता मूर्च्छित होकर गिर पड़ती है । राम के प्रति सीता का प्रगाढ़ प्रेम देखकर रावण कहता है कि वह राम-लक्ष्मण को युद्ध में पराजित कर सीता को लौटा देगा । इस कथा में नारायण लक्ष्मण ही प्रतिनारायण रावण का वध करते हैं । यहां सीता के अग्निप्रवेश की कथा नहीं है । रावण वध के पश्चात लक्ष्मण रावण के महल में ही रहने लगते हैं ।

तत्पश्चात उत्तर चरित §पर्व 78-118§ के अन्तर्गत नारद लंका में राम के पास जाकर पुत्रवियोग में दुःखी माताओं की व्यथा

सुनाते हैं । यह सुनकर राम-लक्ष्मण साकेत लौट आते हैं । उनके लौटने पर भरत दीक्षा ले लेते हैं तथा इसके बाद लक्ष्मण का राज्याभिषेक हो जाता है ।

सीता-त्याग की कथा लगभग रामायण के समान ही है । इसके अनुसार सीता के दो पुत्र लव और अंकुश हुये । नारद के भड़काने पर वे लक्ष्मण से युद्ध के लिए आते हैं । युद्ध के पश्चात् राम, सुग्रीव तथा हनुमान् आदि के अनुरोध पर सीता को बुला लेते हैं किन्तु उनके सतीत्व का प्रमाण भी चाहते हैं । सीता अग्निपरीक्षा में सफल होकर स्वर्ग में इन्द्र बन जाती हैं ।

उत्तर पुराण

जैन कवि गुणभद्र द्वारा रचित उत्तर पुराण दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में बहुत सम्मानित स्थान रखता है । इस ग्रन्थ में राम, लक्ष्मण एवं रावण का चरित्र 67वें 68वें पर्व में 1117 श्लोकों में वर्णित है । यह कथा विमल सूरि तथा वाल्मीकि दोनों ही से भिन्न है । आशाधर कृत "त्रिषष्टिस्मृति शास्त्रम्" में गुणभद्र कृत उत्तर पुराण का सार इस प्रकार है - वाराणसी के राजा दशरथ के चार पुत्र थे । इनमें राम सुबाला के गर्भ से तथा लक्ष्मण कैकेयी से उत्पन्न हुये । कालान्तर में राजा ने अपनी राजधानी साकेत में स्थानान्तरित कर दी । वहां किसी अन्य रानी से शत्रुघ्न का जन्म हुआ ।

रावण विनमि वंश के विद्याधर पुलस्त्य का पुत्र था । उसने एक बार अमिततेग की पुत्री मणिमती को तपस्या करते देखा तथा उसके सौन्दर्य पर लुब्ध होकर उसकी तपस्या भंग कर दी । तपस्या में विघ्न आने पर मणिमती ने उसे श्राप दिया कि वह रावण की पुत्री बनकर उसका विनाश करेगी । कालान्तर में रावण की रानी मन्दोदरी के गर्भ से मणिमती सीता के रूप में पुनर्जन्म लेती है । ज्योतिषियों के द्वारा यह बताये जाने पर कि कन्या पिता का नाश करेगी, रावण उसे त्याग देता

है । मारीच उस कन्या को एक मन्जूषा में रखकर मिथिला में गाड़ आता है । वहां हल की नोक से उलझ जाने के कारण मन्जूषा दिखाई पड़ती है और राजा जनक के पास लाई जाती है । उसमें कन्या को देखकर राजा जनक उसका पुत्रीवत पालन करते हैं ।

बहुत दिनों बाद राजा जनक यज्ञ की रक्षा के लिये राम-लक्ष्मण को बुलाते हैं तथा वहीं सीता-राम का विवाह हो जाता है । राम-लक्ष्मण कुछ अन्य कुमारियों से भी विवाह करते हैं । दशरथ की आज्ञा से राम-लक्ष्मण वाराणसी में रहने लगते हैं । इधर नारद से सीता के अप्रतिम सौन्दर्य का वर्णन सुनकर रावण, उनका अपहरण करने का निश्चय करता है । सीता की मनोभावना ज्ञात करने के लिए वह शूर्पणखा को भेजता है । वह बताती है कि सीता के चित्त को विचलित नहीं किया जा सकता । तब रावण एक षड़यन्त्र के द्वारा कनक मृग का वेश धारण करने वाले मारीच के पीछे राम को भेजकर, स्वयं राम का रूप धारण कर सीता का अपहरण कर ले जाता है । रावण सीता का स्पर्श नहीं करता है क्योंकि पतिव्रता के स्पर्श से उसकी आकाशगामिनी विद्या नष्ट हो जाती ।

इधर स्वप्न के द्वारा सीता हरण का वृतान्त जानकर, दशरथ, राम का समाचार ज्ञात करने के लिए उनके पास दूत भेजते हैं । उसी समय. सुग्रीव और हनुमान् राम के पास बालि के विरुद्ध सहायता मांगने आते हैं । मित्रता के बाद हनुमान् लंका जाते हैं तथा सीता को सान्त्वना देकर लौट आते हैं । इसके बाद लक्ष्मण बालि का वध करते हैं तथा सुग्रीव के अभिषेक के पश्चात् श्रीराम एवं वानर सेना विमान द्वारा लंका जाती है । वहां लक्ष्मण चक्र से रावण का शिरच्छेद करते हैं । यहां सीता की अग्नि-परीक्षा का उल्लेख नहीं है ।

इसमें राम एवं लक्ष्मण के 52 वर्ष पश्चात् अयोध्या लौटने तथा उनके सम्मिलित अभिषेक का वर्णन है । राम एवं लक्ष्मण भरत तथा शत्रुघ्न को लंका का राज्य देकर वाराणसी लौट आते हैं । इस कथा में सीता के आठ पुत्रों का उल्लेख है तथा उनके त्याग की चर्चा नहीं है ।

जैन साहित्य में रामकथा का व्यवस्थित रूप विमल सूरि की रामकथा से ही प्रारम्भ होता है । उन्हीं का अनुकरण करते हुए अनेक रामकथापरक रचनाएं पल्लवित हुईं । इनमें प्राकृत की शीलाचार्य कृत "चउन्नमहापुरिस चरियं" के अन्तर्गत रामलक्खणचरियं, भद्रेश्वर कृत कहावली के अन्तर्गत "रामायणम्", भुवन तुंग सूरि कृत "सियाचरियं" तथा "रामलक्खणचरियं" प्रमुख हैं तथा संस्कृत की रविषेण कृत पद्मचरितम्, हेमचन्द्र कृत "त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितम्" के अन्तर्गत "जैन रामायण", हेमचन्द्र कृत "सीतारावणकथानकम्", सोमसेन कृत "रामचरितम्", हरिषेण कृत "रामायणकथानकम्" तथा "सीताकथानकम् " मुख्य हैं । इन रचनाओं के अतिरिक्त भी एक अति समृद्ध रामकथा साहित्य,जैन धार्मिक साहित्य में उपलब्ध है जिसका विस्तार भय से यहां उल्लेख नहीं किया जा रहा है ।

परवर्ती संस्कृत वाङ्मय में रामकथा का विकास

संस्कृत भाषा में रामकाव्य का प्रथम अवतरण महर्षि वाल्मीकि के द्वारा हुआ है । वाल्मीकीय रामायण में स्वयं महर्षि ने अपनी रचना को "परंकवीनामाधारम्"[1] कहा है । इसी बात को बृहद्धर्म पुराण में कुछ विस्तार के साथ कहा गया है । यहाँ कहा गया है कि वाल्मीकि कृत रामायण सभी काव्यों तथा इतिहास पुराणों का आधार है[2] ।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का जीवन जन सामान्य के लिए अत्यन्त आकर्षण की वस्तु रहा है क्योंकि इसमें जनसाधारण के मनोभावों तथा विभिन्न दशाओं के चित्रण के साथ ही भक्ति, ज्ञान और कर्म की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है । साथ ही आदर्श समाज व्यवस्था के लिए भी राम का चरित्र अत्यन्त प्रभावशाली पृष्ठभूमि की भूमिका का निर्वाह कर रहा है । यही कारण है कि रामकाव्य की सरिता वाणी के वरद पुत्रों का आश्रय लेकर विभिन्न रूपों में प्रवाहित होती रही है ।

प्रसन्नराघवम् नाटक की प्रस्तावना में नट सूत्रधार से पूछता है कि सब कवि क्यों रामचन्द्र का ही पुनः-पुनः वर्णन करते हैं, उसके उत्तर में सूत्रधार की यह उक्ति कितनी सटीक है-

स्वसूक्तीनां पात्रं रघुतिलकमेकं कलयतां
कवीनां को दोषः स तु गुणगणानामवगुणः ।
यदेतैर्निःशेषैरपरगुणलुब्धैरिव जगत्य-
सावेकश्चक्रे सततसुखसंवासवसतिः ।।

- -

1. वाल्मीकीय रामायण 1/4/27
2. रामायणमहाकाव्यमादौ वाल्मीकिनाकृतम् 2।
तन्मूलं सर्व काव्यानाम् इतिहासपुराणयोः ।।
-बृहद्धर्म पुराण ; पूर्वार्द्ध 25/28

एकमात्र रघुकुलतिलक श्रीराम को ही अपनी सूक्तियों का पात्र बनाते हुए कवियों का यह दोष नहीं है अपितु यह तो श्रीराम के गुणगणों का ही अवगुण है, जिन पर मुग्ध होकर सभी कवियों ने एकमात्र उन्हीं को अपनी रचनाओं का आश्रय बनाया है ।

यही कारण है कि रामकथा को समाज में अधिकाधिक प्रभावी एवं मनोहारी रूप में प्रस्तुत करने के लिए कवियों ने साहित्य की दोनों विधाओं, दृश्य एवं श्रव्य वाङ्मय को आधार बनाया और उसे पल्लवित किया । अतः उचित होगा कि इन दोनों विधाओं के रामकथा साहित्य पर क्रमशः प्रकाश डाला जाय ।

दृश्य वाङ्मय में रामकथा

दृश्य काव्य के लिए धनंजय ने रूपक शब्द का व्यवहार किया है । रूपकों के दस भेद हैं, इनमें नाटक सर्वप्रमुख है । रामकथा का उपनिबन्धन नाटकों में ही हुआ है क्योंकि नाटक के लक्षणानुसार रामकथा के नायक श्रीराम उत्कृष्ट गुणों से युक्त, धीरोदात्त, प्रतापशाली, कीर्तिमान, अत्यन्त उत्साही, वेदत्रय के रक्षक, तथा प्रसिद्ध रघुवंशीय दिव्य पुरुष हैं । साथ ही रामकथा इतिहास प्रसिद्ध भी है ।

रामकथा को लेकर नाटकों के अभिनय की परम्परा अति प्राचीनकाल में भी थी । हरिवंश पुराण के एक श्लोक में इसका स्पष्ट संकेत मिलता है[1]। यद्यपि इन पौराणिक नाटकों का आज लोप हो चुका है किन्तु इससे यह परम्परा लुप्त नहीं हुई वरन आगे चलकर ततोऽधिक पल्लवित हुई । रामकथा सम्बन्धी सर्वाधिक प्राचीन प्राप्य नाटक "भास" कृत "प्रतिमा नाटकम्" है ।

---

1. हरिवंशपुराण, विष्णुपर्व, अध्याय-96, श्लोक-6

संस्कृत नाटकों की यह विशेषता रही है कि इतिवृत्त में जो कुछ भी रस अथवा नायक के लिए अनुचित होता है उसे या तो छोड़ दिया जाता है अथवा उसकी अन्य रूप में कल्पना कर ली जाती है। यही स्थिति रामकथापरक नाटकों में बालि वध, सीता की अग्निपरीक्षा आदि प्रसंगों में प्राप्त होती है। यद्यपि कवियों ने रसभंग दोष आदि से बचने के लिए तथा काव्य को अधिकाधिक समाजग्राही बनाने के लिए अपनी रचनाओं में कहीं-कहीं किंचित परिवर्तन किए हैं किन्तु प्रमुख रामकथा को यथावत अक्षुण्ण रखा गया है।

रामकथा सम्बन्धी प्रमुख प्राप्य नाटक

प्रतिमानाटकम् तथा अभिषेक नाटकम्

ये नाटक रामकथा सम्बन्धी प्राप्य नाटकों में सर्वाधिक प्राचीन नाटक हैं। महामहोपाध्याय टी. गणपति शास्त्री महोदय ने इन दोनों नाटकों को 1912 ई. में अनन्तशयन ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्रकाशित कर इन्हें भास की असंदिग्ध रचना माना है। भास का समय निर्विवाद रूप से निश्चित नहीं किया जा सका है तथापि प्रो. एम. पी. काला ने इनकी भाषा में आर्ष और अपाणिनीय प्रयोगों के आधार पर इन्हें प्राचीनतम कवि स्वीकार किया है[1]।

प्रतिमानाटकम्

इस नाटक में राम के राज्याभिषेक की तैयारी, उनके बनवास, सीताहरण आदि घटनाओं से लेकर रावण वध एवं राम के राज्याभिषेक तक की कथाओं का सात अंकों में बड़ा ही सुन्दर अंकन किया गया है।

---

1. प्रो. एम. पी. काला ; विशाल संस्कृत साहित्य का इतिहास
-विशाल प्रकाशन चन्दौसी

इस नाटक के "प्रथम अंक" में राम को वनवास दिये जाने की कथा है। घटना रामायण से कुछ भिन्न है। यहाँ सीता और राम परिहास में ही वल्कल वस्त्र धारण करते हैं। इन्हीं वस्त्रों को पहनकर वे वनवास के लिए प्रस्तुत होते हैं। इसमें राम वनवास के समय शत्रुघ्न अयोध्या में ही उपस्थित रहते हैं।

"द्वितीय अंक" में शोक संतप्त दशरथ की मृत्यु का वर्णन है। मृत्यु-पूर्व उन्हें अपने पूर्वजों के दर्शन भी होते हैं। "तृतीय अंक" का वृत्तान्त सर्वथा नवीन है। इसमें भरत के अयोध्या प्रत्यागमन की कथा वर्णित है। इससे ज्ञात होता है कि अयोध्या के बाहर इक्ष्वाकु वंश का एक ऐसा देवकुल था जहाँ मृत राजाओं की प्रतिमाएं प्रतिष्ठित थीं। भरत ननिहाल से लौटते हुए, इस देवकुल में दशरथ की प्रतिमा देखकर उनकी मृत्यु का स्वयं ही अनुमान कर लेते हैं। इसी आधार पर नाटक का नाम भी "प्रतिमानाटकम्" है।

चतुर्थ अंक में भरत की चित्रकूट यात्रा का वर्णन है जो वाल्मीकीय रामायण के समान ही है। किन्तु पंचम अंक की सीताहरण की घटना में नवीनता है। इसके अनुसार दशरथ के वार्षिक श्राद्ध के अवसर पर सीता-राम एक दिन पूर्व विचार विमर्श कर रहे हैं तभी रावण सन्यासी का कपट वेश धारण कर उनके पास आता है। वह स्वयं को वेदज्ञाता एवं श्राद्धकर्म का विशेषज्ञ बताता है। राम के जिज्ञासा प्रकट करने पर कहता है कि हिमालय मे प्राप्त होने वाले कांचनपार्श्व मृग से पितृ विशेष रूप से प्रसन्न होते हैं। उसी समय मारीच स्वर्ण मृग के रूप में उधर से आ निकलता है। राम उसका शिकार करने चले जाते हैं। लक्ष्मण उस समय एक महर्षि के स्वागतार्थ कहीं गये हैं। इसी समय रावण सीता का हरण कर लेता है।

छठे अंक में सुमन्त्र से सीताहरण का वृत्तान्त सुनकर, भरत कैकेयी की भर्त्सना करते हैं। इस अंक में कैकेयी के दोष निवारणार्थ सर्वथा नवीन वृत्तान्त की कल्पना की गई है। इसके अनुसार-पुत्रवियोग से दशरथ का मरण अनिवार्य जानकर श्राप की रक्षा के लिए तथा राम को अनिष्ट से बचाने के लिए कैकेयी वशिष्ठ, वामदेव आदि के परामर्श से राम के वनवास की माँग करती है। इसके अनुसार वनवास की अवधि वह 14 दिन की चाहती है किन्तु उसके मुख से 14 वर्ष निकल जाता है।

"सप्तम अंक" में रावण वध की कथा है। नवीन वृत्तान्त यह है कि यहाँ राम का अभिषेक जनस्थान में ही हो जाता है। इस प्रकार इस नाटक में रामकथा के अनेक प्रसंगों का मौलिक परिवर्तन एवं परिवर्धन हुआ है।

अभिषेक नाटकम्

इसमें बालिवध से लेकर राम के राज्याभिषेक तक की रामायणीय कथा का चित्रण है। इसमें रामायण से भिन्न विशिष्ट कथानक हैं - समुद्र पर सेतुबन्ध का अभाव, समुद्र का विभक्त हो जाना तथा सेना का समुद्रतल से पार उतरना। सीता की अग्निपरीक्षा के समय साक्षात् अग्निदेव प्रकट होकर सीता को लक्ष्मी का अवतार बताते हैं। इस नाटक में राम का अभिषेक लंका में ही वर्णित है।

उत्तररामचरितम्

सात अंकों में निबद्ध इस नाटक के रचयिता महाकवि भवभूति हैं। इसका रचनाकाल अष्टम शती ई. का पूर्वार्द्ध माना जाता है[1]। इस नाटक में रामायणीय कथा का उत्तरार्द्ध प्रदर्शित है किन्तु सर्वथा नवीन

---

1. डा. बलदेव उपाध्याय - संस्कृत साहित्य का इतिहास ; दशम संस्करण पृष्ठ 543

रूप में । इस नाटक का मुख्य वैशिष्ट्य यह है कि इसमें सीता-राम का पुनर्मिलन प्रदर्शित कर नाटक को सुखान्त बना दिया गया है ।

इस नाटक के प्रथम अंक में चित्रदर्शन के द्वारा बाल्यावस्था से लेकर रावण वध पर्यन्त सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णित है । इसी अंक में राम द्वारा लोकाराधन के लिये गर्भवती सीता का परित्याग भी वर्णित है । "द्वितीय अंक में सीता के दो पुत्रों का संकेत प्राप्त होता है । यहीं पर शम्बूक वध के लिये राम के पुनः दण्डकारण्य में आने का उल्लेख है । "तृतीय अंक" में वनदेवी से सीता विषयक वार्तालाप करते हुए राम के मूर्च्छित हो जाने पर वाल्मीकि के आशीर्वाद से अदृश्य हुई सीता द्वारा राम का स्पर्श कर उनकी मूर्च्छा दूर की जाती है । इसीलिये इस अंक का नाम छायांक भी है ।

"चतुर्थ अंक" में विष्कम्भक के द्वारा जनक तथा कौशल्या आदि रानियों के वाल्मीकि आश्रम में पधारने की सूचना मिलती है । यहां जनक,कौशल्या एवं अरुन्धती के बीच सीता परित्याग से उत्पन्न स्थिति का मार्मिक विवेचन है । "पंचम अंक" में लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु तथा लव के बीच भीषण संग्राम का वर्णन है । राम के आने पर ही युद्ध शान्त होता है ।

"सप्तम अंक" में गर्भांक नामक एक अंक की कल्पना की गई है । यहां एक नाटक का मंचन होता है । इस नाटक में पूर्ववर्णित छहों अंकों की घटनाओं का समावेश है । गंगा तट पर अभिनीत इस नाटक को सभी देखते हैं । लोकपाल तथा सप्तर्षि आदि सीता के सतीत्व की पुष्टि करते हैं, तदुपरान्त सीता राम के मिलन के साथ नाटक का सुखद समापन होता है ।

महावीरचरितम्

भवभूति रचित इस नाटक के छह अंकों में महर्षि विश्वामित्र

द्वारा यज्ञ की रक्षा हेतु श्रीराम एवं लक्ष्मण को ले जाने से लेकर राम के राज्याभिषेक तक की घटनाओं का समावेश है । इसका कथानक अनेक अंशों में रामायणीय कथा से भिन्न है । "प्रथम अंक" में विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा के निमित्त गये हुए राम-लक्ष्मण की सीता तथा उर्मिला से भेंट महर्षि के आश्रम में ही होती है । यहीं पर रावण का दूत सीता का वरण करने के लिये रावण का सन्देश सुनाता है ।

"द्वितीय अंक" में शिवधनुष भंग के पश्चात् सीता-राम का विवाह हो जाने पर, रावण का मन्त्री परशुराम को राम के प्रति भड़काता है । यहां राम तथा परशुराम का कलह मिथिला में ही वर्णित है । "चतुर्थ अंक" में रावण शूर्पणखा को मन्थरा के रूप में राम के समीप भेजता है । मिथिला पहुंचकर वह कैकेयी का जाली पत्र दिखाकर दो वरदान के बदले राम को चौदह वर्ष का वनवास दिला देती है । श्रीराम भरत को पादुकाएं देकर मिथिला से ही सीता और लक्ष्मण के साथ वन को चले जाते हैं ।

इस नाटक में बालिवध की घटना का भी सर्वथा परिवर्तित रूप वर्णित है । यहां माल्यवान् द्वारा प्रेरित बालि श्रीराम को मार्ग में ही रोकता है और युद्ध में मारा जाता है ।

इस प्रकार इस नाटक में घटनाओं का ऐक्य प्रदर्शन करने का सुन्दर प्रयत्न किया गया है । इसके अनुसार समस्त रामविरुद्ध कार्य रावण की प्रेरणा से किये गये प्रदर्शित हैं । इस प्रकार नाटक की लगभग समस्त कथावस्तु में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है ।

उदात्तराघवम्

अनंगहर्ष "मायुराज" द्वारा रचित इस नाटक के छः अंकों में

श्रीराम के वनवास से लेकर अयोध्या प्रत्यागमन तक की घटनाओं का बड़ा ही विचित्र वर्णन है । नाटक का सम्भावित रचनाकाल अष्टम शती ई॰ माना जाता है । इसमें रामायण से भिन्न घटनाएं इस प्रकार हैं -

इसमें सीताहरण की घटना का पूर्णतः परिवर्तित रूप प्राप्त होता है । इसके अनुसार लक्ष्मण स्वर्ण मृग मारने चले जाते हैं, तभी रावण आश्रम के कुलपति का वेश धारणकर राम और सीता के समक्ष जाता है । वह तरुण लक्ष्मण को भेजने के लिए राम की भर्त्सना करता है । उसी समय एक अन्य छद्मवेषी राक्षस आकर सूचना देता है कि मृग राक्षस में बदलकर लक्ष्मण को ले जा रहा है । इस पर राम सीता को रावण की सुरक्षा में छोड़कर, लक्ष्मण की रक्षा के लिये चले जाते हैं । इसी बीच रावण सीता का हरण कर ले जाता है । इस नाटक में कई राक्षस रामपक्ष के पात्रों का रूप धारण कर लेते हैं ।

नाटक के चतुर्थ अंक में एक राक्षस हनुमान् का रूप धारण कर सुग्रीव को रावण द्वारा सीता के वध की मिथ्या सूचना देता है । इस पर सुग्रीव अंगद को राज्य सौंपकर चिता में जलने ही वाले थे कि वास्तविक हनुमान वहां आकर उन्हें बचा लेते हैं । इसी प्रकार अन्तिम अंक में एक राक्षस वशिष्ठ का शिष्य बनकर, भरत को लक्ष्मण के मारे जाने का भ्रामक सन्देश देता है । इसके बाद एक असुर नारद का रूप धारणकर भरत के पास आता है और कहता है कि राम मारे गये । और अन्त में एक राक्षसी सीता का रूप धारणकर उन दोनों के कथन का समर्थन करती है । यह सुनकर भरत सरयू में डूबकर मरने को उद्यत हो जाते हैं कि हनुमान् आकर उन्हें बचा लेते हैं । हनुमान् से यह ज्ञात होता है कि एक असुर ने राम को सुमन्त्र का रूप धारणकर भरत के मरणासन्न होने की सूचना दी है ।

इस प्रकार की अनेक विचित्र घटनाओं का वर्णन इस नाटक में प्राप्त होता है[1]।

अनर्घराघवम्

अनर्घराघवम् कवि मुरारि की एकमात्र प्राप्त रचना है । सूक्ति ग्रन्थों में उद्धृत इनके पद्यों में, प्रशंसात्मक रूप में भवभूति के नामों का उल्लेख तथा रत्नाकर कवि द्वारा अपने काव्य हरविजय में मुरारि के श्लिष्ट उल्लेख के आधार पर पण्डित बलदेव उपाध्याय ने इनका समय अष्टम शतक का उत्तरार्द्ध माना है[2] ।

सात अंकों के इस नाटक का यह वैशिष्ट्य है कि नाटक वीर एवं अद्भुत रस प्रधान है । इसमें विश्वामित्र के अयोध्या आगमन से लेकर राम के राज्याभिषेक तक का वृत्तान्त वर्णित है । इस नाटक के विशिष्ट कथानक हैं- तृतीय अंक में रावण के दूत शौष्कल द्वारा मिथिला जाकर रावण की ओर से सीता की माँग करना, चतुर्थ अंक में शूर्पणखा द्वारा मन्थरा का कपट वेश धारण कर , एक जालीपत्र द्वारा राम को निर्वासित कराना, परशुराम का मिथिला में ही आगमन तथा पंचम अंक में बालि और श्रीराम का युद्ध ।

बालरामायण

कविवर राजशेखर रचित यह नाटक रामकथा सम्बन्धी नाटकों में

- -

1. नाटक का सम्पूर्ण परिचय फादर कामिल बुल्के की रामकथा पुस्तक के अनुच्छेद 230 के अन्तर्गत दिये गए संक्षेप पर आधारित है ।
2. डा. बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास - दशम संस्करण पृष्ठ 557

सर्वाधिक विशालवपु नाटक है । डा॰ बलदेव उपाध्याय ने राजशेखर का समय नवम शती का अन्त तथा दशम शताब्दि का प्रारम्भ, लगभग 880 ई॰ से 920 ई॰ के मध्य निर्धारित किया है[1]।

इस विशालकाय नाटक में कवि ने पूर्व रामचरित को ही प्रखर पाण्डित्य के साथ प्रस्तुत किया है । इस नाटक के दश विस्तृत अंकों में सीता-स्वयंवर से लेकर रामाभिषेक तक की कथा का वर्णन है । नाटक के प्रथम अंक "प्रतिज्ञा पौलस्त्य" में रावण, सीता-स्वयंवर में जनकपुर आकर सीता से विवाह की प्रतिज्ञा करता है । द्वितीय अंक "राम-रावणीय" में परशुराम तथा रावण के परस्पर विवाद का वर्णन है । यहाँ रावण अपने सेवक मायामय को परशुराम के पास उनका परशु माँगने के लिए भेजता है, इस पर परशुराम क्रुद्ध हो उठते हैं । तृतीय अंक "विलक्ष-लंकेश्वर" में राजशेखर ने नितान्त नवीन उद्भावना की है । इस अंक में सीता की अप्राप्ति से खिन्न रावण के मनोरंजन हेतु एक गर्भ नाटिका खेली जाती है । इसमें शिवधनुर्भंग के पश्चात् सीता-राम के विवाह का नाटक मंचित होता है । नाटक के चतुर्थ अंक का नाम है "भार्गव भंग" । इस अंक की नवीन कथा है - इन्द्र के परामर्श से दशरथ मातलि के साथ जनकपुरी जाकर, राम एवं परशुराम का महान विवाद तथा राम के हाथों परशुराम की पराजय का दृश्य देखते हैं । पंचम अंक "उन्मत्त दशानन" में कवि ने श्रृंगाराभास का विचित्र वर्णन किया है । इसमें सीता के वियोग में रावण का उन्माद कवि ने बड़ी प्रौढ़ता के साथ वर्णित किया है । षष्ठ अंक "निर्दोष दशरथ" की कथा भी नितान्त नवीन है । इस अंक में राम के बनवास का कारण शूर्पणखा तथा रावण का अनुचर मायामय हैं । ये दोनों क्रमशः कैकेयी तथा दशरथ का रूप बनाकर राम के निर्वासन का षड्यन्त्र रचते हैं ।

---

1. डा॰ बलदेव उपाध्याय; संस्कृत साहित्य का इतिहास ; संस्करण 10, पृ॰ 568

नाटक के सप्तम अंक का नाम है "असम पराक्रम" । इसमें समुद्र और राम के वार्तालाप का वर्णन है । यहीं रावण के दुर्व्यवहार से पीड़ित विभीषण राम की शरण में आते हैं । समुद्र बांधकर राम लंका में प्रवेश करते हैं । अष्टम अंक "वीर-विलास" में लंका में राम एवं रावण के विकट युद्ध का वर्णन है । नवम अंक में रावण वध की कथा है तथा दशम अंक "सानन्द रघुनन्दन" में सीता की अग्निपरीक्षा के पश्चात् श्रीराम सपरिकर पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर अयोध्या लौटते हैं । यहां त्रिजटा भी सीता के साथ अयोध्या जाती है ।

हनुमन्नाटक

यह नाटक चौदह अंकों का विशाल नाटक है । यही कारण है कि इसे महानाटक भी कहा जाता है । एस. के. डे. ने इसका रचनाकाल दसवीं श. ई. माना है । यद्यपि इसमें प्रक्षेपों का जुड़ना 14वीं शती तक चलता रहा[1] । इस नाटक के सर्वथा दो भिन्न पाठ प्राप्त होते हैं- 1. दामोदर मिश्र का तथा 2. बंगाल के मधुसूदन का । इस नाटक के मूल लेखक के विषय में जानकारी उपलब्ध नहीं है । लोकप्रसिद्ध के अनुसार, यह श्री हनुमान्जी के द्वारा वर्णित रामकथा है ।

दामोदर मिश्र के संकलन के अनुसार 14 अंकों में इसके उल्लेख्य विषय हैं - प्रथम अंक"सीतास्वयंवर", में सीता के स्वयंवर में रावण के दूत की उपस्थिति तथा परशुराम का आगमन मिथिला में ही वर्णित है । द्वितीय अंक "सीता-राम विलास" में विवाहोपरान्त राम-सीता का श्रृंगार वर्णन है । तृतीय अंक"मारीचागमन" में राम के वनवास के समय भरत का अयोध्या में विद्यमान होना वर्णित है । अहल्योद्धार का वृत्तान्त,

---

1. दि प्रॉब्लम ऑफ दि महानाटक, ई. हि. क्वा., भाग- 7, पृ. 537 लेखक- एस. के. डे ।

अगस्त्याश्रम से पंचवटी के मार्ग ही में वर्णित है । इस अंक में नवीन वर्णन यह भी है कि मायामृग को मारने के लिए राम, लक्ष्मण को भी साथ ले जाते हैं तथा सीता की रक्षा के लिए धनुष से रेखा खींच देते हैं ।

चतुर्थ अंक है सीताहरण । इसमें राम-लक्ष्मण के चले जाने पर रावण का छल से सीताहरण वर्णित है । पंचम अंक "बालि वध" में, बालि स्वयं राम को युद्ध के लिए ललकारता है । षष्ठ अंक "हनुमद्‌विजय" में उल्लेखनीय घटना यह है कि सीता हनुमान् को तीन अभिज्ञान देती हैं- एक चूडामणि 2. काक वृत्तान्त तथा 3.-राम द्वारा सीता को तिलक प्रदान । सप्तम अंक "सेतुबन्ध" में राम द्वारा शरसन्धान का वर्णन नहीं है ।

अष्टम अंक है "अंगदाधिक्षेपण" । इसकी नवीन कथा यह है कि अंगद अपने पिता के वध के कारण राम से वैर भाव रखकर, रावण को युद्ध में प्रवृत्त करने के उद्देश्य से रावण का अपमान करता है । नवम अंक "मन्त्रिवाक्य" में रावण की सभा का वर्णन है । दशम अंक "रावण प्रपंच" की उल्लेख्य कथा यह है कि पहले तो रावण सीता को राम का मायामय शीर्ष दिखाता है, तदनन्तर राम का रूप धारण कर स्वयं अपने मायानिर्मित शीर्ष लेकर सीता को छलने का प्रयत्न करता है । एकादश अंक "कुम्भकर्ण वध" में अंगद द्वारा राक्षसी प्रभंजनी के वध का वर्णन है । द्वादश अंक "इन्द्रजित वध" में कोई नवीनता नहीं है । त्रयोदश अंक "लक्ष्मण शक्ति भेद" में हनुमान् को हटाने के लिए ब्रह्माजी द्वारा नारद को भेजे जाने का उल्लेख है । इसी बीच मौका पाकर रावण लक्ष्मण को शक्ति से आहत कर देता है ।

नाटक का अन्तिम अंक है "श्रीराम विजय" । इसकी नवीन कथा यह है कि रावण राम से संधिप्रस्ताव करता है तथा परशुराम के परशु के लिए सीता को लौटाने का प्रस्ताव करता है । राम इसे अस्वीकार कर देते हैं । एक अन्य वृत्तान्त में रावण वध के उपरान्त अंगद पिता के वध का प्रतिकार करने के लिए समस्त सेना को ललकारता है । किन्तु

एक आकाशवाणी के द्वारा यह जानकर कि कृष्णावतार में बालि व्याध के रूप में कृष्ण का वध करेगा वह शान्त हो जाता है ।

आश्चर्य चूडामणि

इस नाटक की प्रस्तावना से यह पता चलता है कि दक्षिण देश का यही सर्वप्रथम नाटक था । इस नाटक के रचयिता कविवर शक्तिभद्र केरल के राजा कुलशेखर वर्मा के पूर्ववर्ती हैं । ये श्री आदि शंकराचार्य के शिष्य भी थे, इसी आधार पर इनका समय शंकराचार्य एवं कुलशेखर के बीच अर्थात नवीं शती ई. माना जाता है[1] ।

सात अंकों में विभक्त इस नाटक में, राम के वनवास से लेकर रावण वध तक की प्रमुख घटनाओं का अत्यन्त रोचकतापूर्ण वर्णन है । इस नाटक में रामायण की अनेक कथाओं को पूर्णतः नवीन रूप में प्रस्तुत किया गया है । यथा - प्रथम अंक में शूर्पणखा सुन्दरी का रूप धारण कर लक्ष्मण से प्रणय निवेदन करती है । लक्ष्मण पुनः मिलने का बहाना बनाकर उसे टाल देते हैं । द्वितीय अंक में वह राम से प्रणय याचना करती है । राम किसी तरह उसे पुनः लक्ष्मण के पास भेजते हैं । थोड़ी देर में शूर्पणखा विकराल वेश में,लक्ष्मण को पकड़कर आकाश में उड़ती हुई दिखाई देती है । लक्ष्मण शूर्पणखा के नाक-कान काट लेते हैं और वह धराशायी हो जाती है ।

तृतीय अंक में मुख्यतः सीताहरण की घटना का वर्णन है । यहां उल्लेख है कि ऋषियों ने दो आभूषण - अंगूठी और चूडामणि, राम और सीता के लिए भेजे हैं । इन दिव्य आभूषणों के स्पर्श से कपटवेश का उद्घाटन हो जाता है । सीताहरण की घटना तो रामायण के समान ही है, नवीनता यह है कि मारीच की मायावी आवाज सुनकर लक्ष्मण जब राम की सहायतार्थ चले जाते हैं, तभी अवसर पाकर रावण स्वयं राम तथा अपने सारथी को लक्ष्मण का वेश धारण कराकर सीता के समक्ष आता है । वह भरत पर

1. डा. बलदेव उपाध्याय; संस्कृत साहित्य का इतिहास- पृ. 566, 1978

भावी विपत्ति का बहाना बनाकर अयोध्या चलने का आग्रह करता है। सीता विश्वास करके उसके रथ पर आरूढ़ हो जाती है। उधर शूर्पणखा सीता का वेश धारण कर राम को वंचित करती है। अन्त में आभूषणों के स्पर्श से भेद खुलता है। नाटक के चतुर्थ अंक में रावण और जटायु के युद्ध का वर्णन है।

पंचम अंक में रावण अशोक वाटिका में सीता के पास, उन्हें पटरानी बनाने का प्रलोभन लेकर जाता है। सीता के द्वारा भर्त्सना किये जाने पर वह उन्हें मारने को उद्यत हो जाता है, किन्तु मन्दोदरी रावण को रोक देती है। षष्ठ अंक में हनुमान् सीता को राम का सन्देश सुनाते हैं तथा सप्तम अंक में राम विजय की घोषणा की जाती है। युद्धवेश का त्यागकर राम विभीषण को लंका का राजा बनाते हैं। इसी अंक में जनता के समक्ष सीता के चरित्र की शुद्धता को प्रमाणित करने के लिये, लक्ष्मण अग्निपरीक्षा का राम को परामर्श देते हैं। सीता के अलंकृत वेश को देखकर राम जब उनपर सन्देह करते हैं तब सीता स्वयं ही अग्निशुद्धि की प्रार्थना करती है। वास्तव में उनका अलंकृत वेश अनुसूया के वरदान का परिणाम था। देवर्षि नारद सीता के साक्षी बनकर राम को देवताओं का सन्देश देते हैं कि वे सीता को ग्रहण करें। राम सबके सामने सीता से क्षमा-याचना करते हैं। इसके बाद सानन्द अयोध्या को प्रस्थान करते हैं।

प्रसन्नराघवम्

इस नाटक के रचयिता कवि जयदेव हैं। यद्यपि इस नाटककार के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती किन्तु विश्वनाथ कविराज के द्वारा प्रसन्नराघवम् का एक पद्य उद्धृत किए जाने के कारण आचार्य बलदेव उपाध्याय ने इनका समय त्रयोदश शतक में माना है।

इस सप्तांक नाटक में कवि ने सीता-स्वयंवर से लेकर रावण वध तक की सम्पूर्ण कथा अत्यन्त लालित्यपूर्ण शैली में निबद्ध की है । इसके प्रथम चार अंकों में बालकाण्ड की कथा आती है । इस नाटक के उल्लेखनीय प्रसंग हैं - प्रथम अंक में सीता स्वयंवर में रावण , बाणासुर की उपस्थिति, यहीं पर रावण अपनी गर्वोक्तियों में सीताहरण का संकल्प व्यक्त करता है ।

द्वितीय अंक में धनुर्भंग से पहले सीता चण्डिकायतन में जाती है, वहीं मार्ग में वाटिका में पुष्प चयन करने आये राम-लक्ष्मण को सीता के प्रथम दर्शन का अवसर मिलता है । तृतीय अंक में स्वयंवर मण्डप में पधारे राम-लक्ष्मण के सौंदर्य को देखकर जनक मुग्ध हो जाते हैं तथा अपनी कठोर प्रतिज्ञा से चिन्तित हो जाते हैं । इसी बीच श्रीराम महर्षि विश्वामित्र की आज्ञा से धनुर्भंग कर देते हैं । चतुर्थ अंक में परशुराम का श्रीराम के साथ विवाद वर्णित है । यहां पहले तो ताण्ड्यायन रावण को ही धनुष तोड़ने वाला बताता है किन्तु बाद में सत्यता प्रकट हो जाती है । यहां पर लक्ष्मण के साथ भी परशुराम का वाक्कलह भी वर्णित है ।

पंचम अंक में यमुना, गंगा, सरयू आदि नदियों का संवाद वर्णित है । इन्हीं के माध्यम से राम वनवास, दशरथ मृत्यु आदि घटनाओं की सूचना प्राप्त होती है । यहां हंस नामक एक पात्र सीताहरण की घटना सुनाता है । षष्ठांक में श्रीराम का विरह वर्णन है । इसी अंक में हनुमान् के लंका जाने की कथा है, जहां अशोकवाटिका में सीता द्वारा अशोक से अग्नि की याचना किये जाने पर हनुमान् रामनामांकित अंगूठी गिरा देते हैं ।

अन्तिम अंक में माल्यवान् का मन्त्री विभीषण आदि के विषय में सूचना देता है । तदनन्तर विद्याधर एवं विद्याधरी के संवाद के द्वारा युद्ध का वर्णन किया गया है । रावण की मृत्यु के पश्चात् पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर रामादि अयोध्या लौट आते हैं ।

इस प्रकार के अनेक नाटकों की रचनाएँ आगे भी होती रहीं, जिनका विस्तारभय से यहाँ उल्लेख नहीं किया जा रहा है । इनमें से कुछ प्रकाशित हैं तो कुछ अप्रकाशित ही रहीं तथा कुछ तो सर्वथा नष्ट ही हो गईं किन्तु विभिन्न काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में प्राप्त उल्लेखों के आधार पर विद्वानों ने उनके कथानकों का अनुमान लगा लिया है । इस प्रकार की रचनाओं का आज भी प्रणयन हो रहा है । इस सम्बन्ध में डा. बलभद्र गोस्वामी द्वारा रचित 'सेतुबन्धम्' नाटक उल्लेखनीय है । इस नाटक में रामकथा को वर्तमान संदर्भ में वर्णित किया गया है ।

संस्कृत श्रव्यवाङ्मय में रामकथा

रामकथा का प्रारम्भ संस्कृत श्रव्य वाङ्मय से ही हुआ है । श्रव्य वाङ्मय के भी प्रधानतः दो रूप हैं - 1. पद्यकाव्य 2. गद्यकाव्य ।

संस्कृत पद्य काव्य साहित्य में रामकथा

संस्कृत पद्यकाव्यों में रामकथापरक अनेक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं । ये ग्रन्थ पद्यकाव्य की अनेक विधाओं में रचित हैं । प्राचीन ग्रन्थ तो महाकाव्य के रूप में ही प्राप्त होते हैं जो यदि पूर्णरूपेण नहीं, तो अधिकांशतः वाल्मीकीय रामायण में वर्णित कथाओं से साम्य रखते हैं । महाकाव्यों के अतिरिक्त श्लेष काव्य, स्तोत्र काव्य, गीति काव्य एवं खण्ड काव्य आदि

विधाओं में भी रामकथात्मक साहित्य का व्यापक विस्तार पाया जाता है ।

महाकाव्य "रघुवंश"

रामकथा के मूल महाकाव्य वाल्मीकीय रामायण के पश्चात्, महाकवि कालिदास रचित "रघुवंश महाकाव्य" ही रामकथात्मक प्रथम महाकाव्य है । इसमें सूर्यवंशीय राजाओं के यशोगान के अन्तर्गत श्रीराम-चरित्र का वर्णन है । 19 सर्गों में निबद्ध इस महाकाव्य के दसवें सर्ग से लेकर 15वें सर्ग तक रामचरित का विस्तृत वर्णन है । इसमें कालिदास ने राम के चरित्र की विशिष्टता को बड़ी ही सुन्दरता के साथ प्रदर्शित किया है । कथा वाल्मीकीय रामायण के समान ही है । सीताचरित्र को कवि ने विशेष महत्त्व दिया है । महाकाव्य का चतुर्दश सर्ग सीता-चरित्र से ही सुशोभित है । राम द्वारा परित्यक्ता, निर्भरगर्भ खिन्ना सीता का प्रणय सन्देश, आत्मगौरव, स्नेह एवं पतिव्रता के चरित्र का उत्कर्ष है[1]। रघुवंश की रामकथा वाल्मीकीय रामायण के समान ही है ।

भट्टिकाव्य "रावणवध"

भट्टिस्वामी रचित "रावणवध" नामक यह काव्य उन्हीं के नाम पर भट्टिकाव्य कहलाता है । 20 सर्गों एवं 3624 पद्यों में निबद्ध इस महाकाव्य में वाल्मीकीय रामायण के आधार पर ही श्रीरामचन्द्र की जीवन घटनाओं का वर्णन है । किन्तु इसकी कुछ मौलिक विशेषताएं भी हैं । यहां दशरथ के शैव होने का उल्लेख है । पुत्रेष्टि यज्ञ में कोई देवता

---

1. वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम् ।
मां लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य ।।
कल्याणबुद्धेरथवा तवायं न कामचारो मयि शंकनीयः ।
ममैव जन्मान्तरपातकानां विपाकविस्फूर्जथुरप्रसह्यः ।।
-रघुवंश 14/61, 62

प्रकट नहीं होते अपितु दशरथ की रानियाँ स्वयं ही चरू का अवशिष्ट खाती हैं । इसी प्रकार विवाह के अवसर पर, मात्र सीता-राम का ही विवाह वर्णित है, अन्य भाइयों के विवाह का उल्लेख नहीं है ।

राक्षसों के वध के प्रसंग में राम और लक्ष्मण दोनों मिलकर खर, दूषण और उनके साथी राक्षसों का वध करते हैं । इसके कथानक की एक अन्य विशिष्टता है, लक्ष्मण का सीता को श्राप देना तथा ।।वें सर्ग में राक्षसियों का सम्भोगश्रृंगार वर्णन ।

जानकीहरण

कवि कुमारदास प्रणीत "जानकीहरण महाकाव्य" अपने मूल रूप में तो अप्राप्य है, किन्तु उनके इस महाकाव्य के पद्यों के अनेकशः उद्धरण सूक्तिग्रन्थों, कोशग्रन्थों, व्याकरण तथा अलंकार ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं । इन्हीं के आधार पर विद्वानों ने जानकीहरण के 20 सर्गों का संकलन किया है[2]। बहिरंग तथा अन्तरंग साक्ष्यों के आधार पर वासुदेवशरण अग्रवाल ने इनका समय सप्तम शती का उत्तरार्द्ध माना है[2]। तथा डा॰ बलदेव उपाध्याय ने षष्ठ शती का पूर्वार्द्ध स्वीकृत किया है[3]।

इस महाकाव्य के प्रथम सर्ग में महाराज दशरथ तथा उनकी रानियों का वर्णन है । द्वितीय सर्ग में बृहस्पति के द्वारा रावण का चरित्र वर्णन है । तृतीय सर्ग में दशरथ की जलक्रीडा, चतुर्थ तथा पंचम सर्ग में

---

1. मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित-1966 ।
2. "जानकीहरण की भूमिका" पृष्ठ-21, 22, मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद ।
3. डा॰ बलदेव उपाध्याय - संस्कृत शास्त्रों का इतिहास - वाराणसी 1969, पृष्ठ 295 ।

दशरथ के चारों पुत्रों की उत्पत्ति से लेकर ताडका एवं सुबाहु वध तक की कथाएं । सप्तम सर्ग में राम-सीता का प्रेम एवं विवाह, अष्टम सर्ग में राम-सीता का श्रृंगार वर्णन तथा दशम सर्ग में निर्वासन से पूर्व श्रीराम के राज्याभिषेक, परिवर्तित वृत्तान्त हैं । अन्य कथाएं रामायण के समान हैं ।

सेतुबन्धम्

प्राकृत कवि प्रवरसेन रचित "सेतुबन्ध" नामक महाकाव्य प्राकृत का श्रेष्ठतम महाकाव्य है । इस महाकाव्य का दूसरा नाम रावण वध या दशमुख वध भी है । इसके 15 आश्वासों में सेतुबन्ध से लेकर रावणवध पर्यन्त रामायणीय कथा का वर्णन है । इसमें परिवर्तित कथाएं हैं, मछलियों द्वारा सेतु नष्ट करने का उल्लेख तथा कामिनी केलि नामक दशम आश्वास में राक्षसियों का संभोग वर्णन ।

रामचरित

इस महाकाव्य के रचयिता महाकवि अभिनन्द हैं । इस विशाल वपु महाकाव्य के 36 सर्गों में किष्किन्धा काण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक की रामायणीय कथा का सरस वर्णन है । यह काव्य वास्तव में अधूरा है । इसकी पूर्ति के लिए अन्त में चार-चार सर्गों के दो परिशिष्ट दिये गये हैं । इनमें से एक तो अभिनन्द रचित ही है किन्तु दूसरा किन्हीं भीम कवि का है ।

श्लेषकाव्य

संस्कृत श्लेषकाव्यों में भी रामकथात्मक काव्यों की एक सुदीर्घ परम्परा है । इस परम्परा में "सन्ध्याकरनन्दी" कृत "रामचरित" सर्वाधिक प्राचीन काव्य है । इसमें पालवंशीय राजा रामपाल तथा श्रीरामचन्द्र का श्लिष्ट वर्णन किया गया है ।

श्लेष काव्यों का ही एक स्वरूप है, "द्विसन्धान काव्य" । इनमें दो सर्वथा असम्बद्ध कथाएं साथ-साथ चलती हैं । धनञ्जय कृत "राघव पाण्डवीय" इन काव्यों में सर्वाधिक प्राचीन है । इसके उल्लेखनीय वर्णन हैं – पुत्रेष्टि यज्ञ का अभाव, बालि वध के पश्चात सुग्रीव द्वारा अपनी कन्या कल्याणी को श्रीराम के लिए समर्पित करना तथा बारहवें सर्ग में लक्ष्मण का कोटिशिला ऊपर उठाना ।

इसी क्रम में 12वीं शती के उत्तरार्द्ध की एक अन्य द्विसंधान रचना "राघव पाण्डवीय" प्राप्त होती है । 13 सर्ग की इस रचना में रामायण तथा महाभारत की कथा साथ-साथ वर्णित है । इस कृति के रचनाकार हैं कविराज माधवभट्ट । इसी प्रकार चिदम्बर कृत "राघव-यादवपाण्डवीय" में रामायण, भागवत तथा महाभारत की कथा का एक साथ वर्णन है । इसी प्रकार हरदत्त सूरि कृत "राघव नैषधीय" में राम तथा राजा नल की कथाओं का श्लिष्ट वर्णन है ।

स्तोत्र काव्य

राम विषयक स्तोत्रों की रचना में रामभद्र दीक्षित का नाम विशेष उल्लेखनीय है । उन्होंने रामविषयक अनेक स्तोत्रों की रचना की है । उनके उल्लेखनीय स्तोत्र हैं –"रामचापस्तव","रामबाणस्तव" तथा "विश्वगर्भस्तव" आदि । इनमें श्रीरामभक्ति से ओतप्रोत हृदयहारी वर्णन हैं । कवि कूरनारायण रचित "जानकी चरण चामर" स्तोत्र में 111 शिखरिणी छन्दों में श्रीसीताजी के चरणों की वन्दना है ।

नीति काव्य

रामकथापरक एक ही नीतिकाव्य प्राप्त होता है । रामकवि रचित यह नीतिपूर्ण कृति है – "सन्नीति रामायण" । 15वीं शती की इस रचना के प्रत्येक श्लोक का प्रथम चरण नीतिवाक्य है तथा द्वितीय चरण रामकथात्मक है । इसके 7 काण्डों में इस प्रकार समस्त

रामायणीय कथा का समावेश है ।

गीतिकाव्य

जयदेव कृत गीतगोविन्द के समान ही अनेक राम-सीता विषयक गीतिकाव्य रचे गये । इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध है "राम गीत गोविन्द" । यह रचना तो पूर्णतः गीतगोविन्द का ही अनुकरण है । इसके छः सर्गों एवं 24 गीतों में श्रीरामजन्म से लेकर रावण वध के पश्चात् अयोध्या में उनके अभिषेक तक की सम्पूर्ण कथा वर्णित है । इसमें गीतगोविन्द की राधा के सौन्दर्य वर्णन के समान सीता के सौन्दर्य का वर्णन नहीं है तथा श्रृंगारिक स्थल भी अत्यन्त मर्यादित हैं ।

इसके कथानक की विशेषताएं हैं - जन्म के पश्चात् श्रीराम का माता को चतुर्भुज रूप दिखाना, परशुराम का मिथिला में ही आगमन, राम विवाह में देवताओं की उपस्थिति, विवाह में जनक द्वारा श्रीराम के चरणों का प्रक्षालन तथा जयन्त द्वारा सीता के चरणों पर चोंच से प्रहार करना ।

इस काव्य के अतिरिक्त कुछ अन्य गीतिकाव्य भी इस परम्परा में प्राप्त होते हैं, यथा - कवि हरिशंकर रचित "गीतमाधव", कवि प्रभाकर रचित "गीतराघव" विश्वनाथसिंह रचित "संगीत रघुनन्दन" नामक रचनाएं उल्लेखनीय हैं । संगीतरघुनन्दन के प्रथम तथा द्वितीय सर्ग में श्रीराम की रासलीलाओं का चित्रण है । इसी प्रकार श्रीकृष्णभट्ट या लाल कवि रचित राघवगीतम् या रामगीतम् के 12 सर्गों में रामकथा वर्णित है । इसमें चित्रकूट प्रसंग में श्रीराम-सीता तथा सीता की सखियों का रास वर्णन है ।

गीति खण्डकाव्य (दूत काव्य)

महाकवि कालिदास की रचना "मेघदूत" इस परम्परा का

प्रथम काव्य है । रामकथा सम्बन्धी गीति खण्डकाव्यों अथवा दूतकाव्यों की रचना इसी का अनुकरण है । इस परम्परा के कतिपय प्राप्य ग्रन्थ हैं-

हंसदूत

यह काव्य हंस सन्देश के नाम से भी प्रसिद्ध है । इसके द्वारा राम काव्य परम्परा में नवीन विधा का सूत्रपात हुआ है । इस काव्य में हनुमान् के लौट आने पर विरहकातर श्रीराम ने एक राजहंस को दूत बनाकर उसे लंका का मार्ग समझाकर सीता के लिए सन्देश भेजा है । "वेदान्त-देशिक" रचित इस काव्य में दो आश्वास हैं । प्रथम में 60 तथा द्वितीय में 50 मन्दाक्रान्ता छन्द हैं ।

कपिदूत

इस काव्य में दौत्यकर्म के लिये हनुमानजी को भेजने का वर्णन है ।

वातदूत

यह रचना 19वीं शती की है । श्रीकृष्णनाथ भट्टाचार्य कृत इस काव्य में सीता अशोकवन से वायु को दूत बनाकर भेजती हैं ।

भ्रमरदूत

इसका रचनाकाल 17वीं शती है । नैयायिक रुद्रवाचस्पति कृत इस रचना में हंसदूत के समान ही भ्रमर को दूत बनाकर भेजे जाने का उल्लेख है ।

हनुमद्दूत

यह 20वीं शती की रचना है । आधुनिक कवि नित्यानन्द

शास्त्री रचित यह काव्य वास्तव में मेघदूत के चतुर्थ चरण की समस्यापूर्तिपरक रचना है । इसमें राम द्वारा सीता के पास सन्देश भेजे जाने का वर्णन है ।

दूतांजनेयम्

यह इस परम्परा की सर्वाधिक अर्वाचीन रचना है । अत्याधुनिककवि डा. बलभद्र शास्त्री रचित इस कृति में हनुमानजी को दूत बनाकर भेजे जाने का वर्णन है ।

प्रकीर्ण काव्य

इन रचनाओं के अतिरिक्त अनेक रामकथापरक प्रकीर्ण काव्य भी पाये जाते हैं जैसे कृष्णमोहन कृत "रामलीलामृत" चित्रकाव्य, वेंकटेश कृत "चित्रबन्ध रामायण" सूर्यदेवकृत "रामकृष्ण विलोम काव्य" विश्वनाथ रचित "राघवविलास", मुद्गल भट्ट प्रणीत "रामार्यशतक" तथा कृष्णेन्द्र कृत "आर्या रामायण" आदि रचनाएं इस क्रम की उल्लेखनीय रचनाएं हैं ।

संस्कृत गद्य साहित्य में रामकथा

संस्कृत के गद्य साहित्य में रामकथा अपने बृहत् रूप में वर्णित नहीं हो सकी है । संस्कृत साहित्य में गद्य रचना प्रधानतः दो ही रूपों मे हुई है, 1. औपन्यासिक शैली में आख्यायिकाओं की रचना तथा 2. काव्यात्मक सुकोमल शैली में चम्पू साहित्य की रचना । आख्यायिकाएं प्रधानतः काल्पनिक कथानकों पर आधारित रही हैं । अतः इस विधा में रामचरित्र का वर्णन नहीं हो सका है । तथापि कथासाहित्य की प्राचीनतम रचना गुणाढ्यकृत "बृहत्कथा" में रामकथा होने की सम्भावना की जा सकती है

बृहत्कथा के दो रूपान्तर तथा दो संक्षिप्त रूप पाए जाते हैं। इसके रूपान्तर हैं, जैन साहित्य का "वसुदेवहिण्डि" तथा सोमदेव सूरि कृत "कथासरित्सागर"। इन दोनों ही रचनाओं में रामकथा को भी समाविष्ट किया गया है। बृहत्कथा के संक्षिप्त रूप, क्षेमेन्द्र कृत बृहत्कथा-मंजरी में भी अतिसंक्षिप्त रामकथा प्राप्त होती है किन्तु बुधस्वामी के बृहत्कथा-श्लोक संग्रह में रामकथा का संकेत भी नहीं है। इस प्रकार बृहत्कथा से सम्बन्धित तीन कृतियों में रामकथा के सम्मिलित होने से यह अनुमान किया जा सकता है कि बृहत्कथा में रामकथा भी थी।

संघदास कृत "वसुदेवहिण्डि" की रामकथा यद्यपि वाल्मीकीय रामायण से साम्य रखती है तथापि जैन मत से प्रभावित होने के कारण इसमें कुछ परिवर्तन भी लक्षित होते हैं, यथा- भरत तथा शत्रुघ्न को कैकेयी का पुत्र बताया गया है, सीता मन्दोदरी तथा रावण की पुत्री कही गई है, सीता स्वयंवर में धनुष की चर्चा भी नहीं है, सीता स्वयं ही राम का वरण करती हैं, राम की वनवास निर्वासन अवधि बारह वर्ष कही गई है तथा अन्य जैन रामकथाओं के अनुसार इसमें भी रावण का वध लक्ष्मण ही करते हैं। संघदास की मौलिक कल्पना यह है कि सुग्रीव का निमन्त्रण प्राप्त कर भरत की सेना भी लंका युद्ध में भाग लेती है।

कथासरित्सागर की रामकथा भी अधिकांश वाल्मीकीय रामायण से साम्य रखती है। मुख्य परिवर्तन यह है कि इसमें सीता-राम का मिलन प्रदर्शित कर कथा को सुखान्त रूप दे दिया गया है।

कथासाहित्य में भले ही रामकथात्मक रचनाओं का अभाव है किन्तु चम्पू साहित्य में रामायण पर आधारित अनेक चम्पू प्राप्त होते हैं। इनमें महाराज भोजराज कृत रामायण चम्पू सर्वाधिक प्रसिद्ध है।

रामायण पर आधारित इस चम्पू में मूलतः किष्किन्धाकाण्ड तक की ही कथा है किन्तु परवर्ती लक्ष्मणसूरि, राजचूडामणि दीक्षित तथा घनश्याम कवि आदि अनेक कवियों ने युद्धकाण्ड लिखकर इसे पूर्ण किया । इस चम्पू का आधार वाल्मीकीय रामायण का दाक्षिणात्य पाठ है ।

इसके अतिरिक्त दिवाकर कवि कृत"अमोघराघव चम्पू" तथा वेंकटाध्वरिन् कृत "उत्तररामचरित-चम्पू" भी उल्लेखनीय है ।

फादर कामिल बुल्के ने 17वीं शताब्दी की एक रचना वासुदेव कृत"रामकथा" का उल्लेख किया है, जिसमें वाल्मीकीय रामायण के छः काण्डों की संक्षिप्त कथा गद्य रूप में वर्णित है। उन्होंने अनन्तभट्ट कृत "रामकल्पद्रुम" नामक एक अन्य रामकथात्मक गद्य रचना का भी उल्लेख किया है[1] ।

---

1. फादर कामिल बुल्के , रामकथा, अनुच्छेद-256

संस्कृत नाट्यसाहित्य में रामकथा का पल्लवन

इस प्रकार इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वैदिक साहित्य में बीजरूप में उपलब्ध रामकथा, महर्षि वाल्मीकि के उर्वर हृदय में भगवती भारती के कृपासुधारस से सिंचित होकर अपने पूर्ण आकार में विकसित हो गई थी । यही रामकथा जिसने परवर्ती कवियों के लिये उपजीव्य बनकर अनेक काव्य विधाओं में आकार ग्रहण किया, दृश्य काव्य में विशेष पल्लवित हुई । दृश्य वाङ्मय में रामकथा 12वीं शताब्दी तक पहुंचते-पहुंचते इस रूप में आ गई थी कि कविगण उस रामकथा को नव्य चमत्कारों के साथ सहृदय जनों के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिये उत्सुक हो गये थे, ताकि समाज रामकथा के प्रति अपनी अभिरुचि को सदैव जागृत रखे व उनकी रचनाओं के प्रति समाज में आकर्षण बना रहे ।

नाटकों की रामकथा में नवीन घटनाओं के समावेश की प्रक्रिया महाकवि भास से ही प्रारम्भ हो जाती है । आठवीं शताब्दी में भवभूति जैसे प्रसिद्ध नाटककार ने रामचरित पर आधारित जिन दो नाटकों "महावीर चरित" तथा "उत्तररामचरित" की रचना की उनमें भी स्वप्रतिभा के द्वारा रामकथा में वाल्मीकीय रामायण की अपेक्षा कुछ न कुछ नवीनता लाने का प्रयास किया गया है । महावीरचरित में, कैकेयी का जाली पत्र लेकर शूर्पणखा का मन्थरा के रूप में पहुंचने का उल्लेख है । इसी के आधार पर श्रीराम को वनवास होता है । इसी प्रकार बालि के साथ राम के द्वन्द्व युद्ध जैसी अनेक नवीन घटनाओं का समावेश किया गया है ।

उत्तररामचरित में भी कुश-लव के जन्म की कथा तथा शम्बूक वध की कथा रामायण से कुछ भिन्न ही प्रदर्शित हैं । इसमें गर्भांक के रूप में नवीन कथा सूत्र की कल्पना की गई है । इसके आधार पर सीता की निर्दोषता समाज के सामने प्रकट की गई है । यहां सीता-राम के मिलन

की भी नवीन कथा है ।

इसी शताब्दी के अनंगहर्ष "मायुराज" के नाटक "उदात्तराघव" में भी अनेक राक्षसों के द्वारा रामपक्ष के पात्रों का रूप धारण करने का वर्णन है । यह प्रक्रिया परवर्ती नाटककारों में निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होती गई । इसी परम्परा में नाटककारों ने अपने नाटकों में रामकथा के अन्तर्गत नये-नये कथानकों एवं चरित्रों का सृजन किया, जिसका उद्देश्य सामाजिकों में उनकी रचनाओं के प्रति उत्सुकता बनाए रखना ही प्रतीत होता है ।

नवीं शताब्दी की रचना मुरारी कृत "अनर्घराघव" में भी महावीरचरित के समान शूर्पणखा का मन्थरा वेश में, कैकेयी के एक जाली पत्र के बल पर राम के निर्वासन की कथा का वर्णन है एवं बालि का द्वन्द्वयुद्ध भी दिखाया गया है । 10वीं शताब्दी के रचनाकार राजशेखर ने 10 अंकों के विस्तृत नाटक की रचना की थी । इस नाटक में भी राक्षसों द्वारा मायावी रूप धारण करने का उल्लेख है । रावण के आदेश पर शूर्पणखा तथा मायामय राक्षस अयोध्या जाते हैं, वे कैकेयी तथा दशरथ का रूप धारण कर राम को निर्वासित कर देते हैं । इसी नाटक में राम-परशुराम संवाद के प्रकरण में, इन्द्र द्वारा दशरथ को आकाशमार्ग से जनकपुर भेजे जाने का भी वर्णन है । इसी प्रकार कथानक में नवीनता लाने के लिए स्वयंवर के गर्भनाटक की कल्पना की गई है । राजशेखर ने अपने इस नाटक की समस्त रामकथा में कुछ न कुछ नवीनता लाने का प्रयास किया है ।

प्राचीन एवं वर्तमान के मध्य में स्थित राजशेखर की इस रचना में परवर्ती नाटककारों के लिए रामकथा में उद्भूत वे सभी तत्त्व प्रस्तुत किये गये हैं जिनका आधार लेकर परवर्ती नाटककार अपनी रचनाओं को प्रभावी बनाने में सफल होते रहे हैं

10वीं शताब्दी के मध्यकाल की रचना आश्चर्यचूडामणि भी एक ऐसा ही नाटक है। शक्तिभद्र का यह नाटक आश्चर्यप्रधान घटनाओं की एक विस्तृत परम्परा से युक्त है। राम वनवास से लेकर रावण विजय तक के नाटक में अनेक मायावी दृश्य हैं। मायावी शूर्पणखा और मारीच के अतिरिक्त स्वयं रावण भी सीताहरण के समय राम का मायामय वेश धारणकर तथा सारथी को माया से लक्ष्मण का रूप देकर सीता को वंचित करता है। शूर्पणखा कपट से सीता का रूप धारण कर राम को धोखा देती है, इस प्रकार सीताहरण में सहायिका होती है। इन सभी माया प्रसंगों का भेद, ऋषियों द्वारा राम को दी गई अंगूठी तथा चूडामणि के द्वारा उद्घाटित होता है।

दसवीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी के मध्य की एक अन्य रचना "हनुमन्नाटक" में भी अनेक नवीन कथांशों का पल्लवन हुआ है, यथा - राम के वन गमन के समय भरत का अयोध्या में उपस्थित रहना, बालि का स्वयं,राम को युद्ध के लिए ललकारना, अंगद द्वारा राम से अपने पिता के वध का प्रतिशोध लेने के लिए वैर रखना आदि इसके विशिष्ट वृत्तान्त हैं।

इसी प्रकार जयदेवकृत "प्रसन्नराघव" में भी अनेक नवीन कथाओं की अवतरणा है। राम-सीता का मिथिला के चण्डिकायतन में मिलाप,, विविध नदियों गंगा, यमुना, गोदावरी आदि का मानवीकरण एवं विद्याधर रत्नसेन द्वारा लंका की घटनाएं इन्द्रजाल द्वारा श्रीराम को दिखाना आदि कुछ ऐसी ही विशिष्ट कथाएं हैं।

13वीं शताब्दी की एक और रचना, "दूतांगद" एक छाया नाटक है। इसकी नवीन कथा है - अंगद के दूत बनकर रावण के पास आने पर, उनके सामने ही माया की सीता का आकर रावण की गोद में बैठना।

ऐसे ही 14वीं शताब्दी की एक रचना भास्कर भट्ट कृत "उन्मत्तराघव" में तो रामकथा का स्वरूप ही परिवर्तित कर दिया गया है । इसमें दुर्वासा के श्राप से सीता के मृग रूप में बदल जाने की कथा है, जिन्हें खोजते हुए राम अगस्त्य की सहायता से पुनः प्राप्त करते हैं ।

यही नहीं 15वीं शताब्दी की रचना, विरूपाक्ष कृत "उन्मत्त राघव" में तो राम को सीता के वियोग में इतना अधिक उन्मत्त प्रदर्शित किया गया है कि लक्ष्मण अकेले ही वानरों की सहायता से रावण को मारकर सीता को राम के सामने प्रस्तुत करते हैं ।

उत्तरकालीन नाटकों में भी कथानक को पल्लवित करने की प्रक्रिया निरन्तर गतिशील रही है । इस सन्दर्भ में 16वीं शती का रामभद्र दीक्षित कृत "जानकी परिणय" नाटक उल्लेखनीय है । इसमें भी रावण पक्ष के अनेक राक्षस रामपक्ष के पात्रों का रूप धारण कर, उनको भ्रमित करने का प्रयत्न करते हैं । जैसे- सीताहरण के लिए विराध का राम रूप धारण करना, राम को रोके रखने के लिए शूर्पणखा का सीता रूप धारण करना तथा शूर्पणखा द्वारा रामवध का मिथ्या समाचार देकर भरत-शत्रुघ्न को आत्मघात के लिए प्रेरित करना आदि ।

अद्भुतदर्पणम् का संक्षिप्त परिचय

इन्हीं कवियों में हमारे आलोच्य कवि महादेव भी हैं, जिन्होंने अद्भुतदर्पणम् नामक नाटक के माध्यम से सहृदयों के लिए रामकथा प्रस्तुत की है । यह नाटक वास्तव में रामकथा का एक अंश ही है, जो दक्षिण में समुद्र पर सेतु बांधकर वानर सेना के साथ श्रीराम के लंका की सीमा में प्रवेश करने की पूर्वपीठिका से आरम्भ होता है । नाटक में कवि का वास्तविक उद्देश्य चरित्रनायक रघुपुंगव श्रीराम की उदारता

अनुज लक्ष्मण का औद्धत्य तथा सीता के लोकोत्तर पतिव्रत गुण का वर्णन करना ही है। जैसा कि कवि ने नाटक के अन्त में प्रथम प्रशस्ति श्लोक में कहा है[1]। कथा में चमत्कार उत्पन्न करना भी कवि को अभीष्ट है, ऐसा उनके द्वितीय नान्दी श्लोक से स्पष्ट होता है। यहाँ वे प्रत्येक के हृदय में विभिन्न प्रकार के चमत्कारों को उत्पन्न करने वाली भगवती वाणी से प्रार्थना करते हैं[2]। सहृदय हृदय में चमत्कार की प्रतिबद्धता को लेकर ही कवि अपनी नान्दी के प्रथम श्लोक की प्रस्तुति करते हैं। इसमें वे उन पुरुषोत्तम भगवान विष्णु से श्रेय की याचना करते हैं, जो क्षीरसागर में इसलिए सदैव सजग स्थित हैं, मानो वे एक लक्ष्मी को प्राप्त करने के पश्चात् वैसी ही दूसरी तरुणी पुनः प्राप्त करना चाहते हैं। यह वर्णन समाज के हृदय में एक अद्भुत हास्य रस से ओतप्रोत दृश्य उपस्थित कर देता है। इस प्रकार कवि के प्रारम्भिक श्लोकों में ही मनोरंजन की प्रधानता प्रकट होती है। वास्तव में पूरा नाटक ही मनोरंजन की पृष्ठभूमि पर पल्लवित एवं पुष्पित प्रतीत होता है।

नाटक का प्रारम्भ सूत्रधार और विदूषक की वार्ता से होता

---

1. औदार्यं रघुपुंगवे तदनुजे चौद्धत्यमत्यद्भुतं
   सीतायाश्च यथा पतिव्रतगुणो लोकोत्तरो दृश्यते।
   अस्मिन्नद्भुतदर्पणे कविमहादेवस्य वाङ्निर्मिते-
   ऽप्येवं पश्यत दृश्यते यदि गुणो यः कोऽपि वक्त्राश्रयः॥

   -अद्भुतदर्पणम् - ग्रन्थकर्तुः प्रशस्तिः-1

2. अन्यादृशं चमत्कारमात्मानन्दैकसाक्षिणम्।
   दर्शयन्तीं प्रतिव्यक्ति देवीं वाचमुपास्महे॥

   -अद्भुतदर्पणम्-1/2

है एवं लक्ष्मण के प्रवेश के साथ ही, प्रस्तावना समाप्त हो जाती है। प्रारम्भ से ही लक्ष्मण इस बात से खिन्न हैं कि रावण जैसे अक्षम्य शत्रु के पास किसी भी प्रकार का सन्धि प्रस्ताव लेकर अंगद को भेजा गया है। अंगद के दौत्यकर्म को लेकर हीकवि ने कथा की पृष्ठभूमि का निर्माण किया है।

कवि ने नाटक में सर्वाधिक नवीन प्रयोग रावणपक्ष के मायावी राक्षसों को लेकर किया है। इनमें शम्बर प्रमुख है। शम्बर अपने स्वामी मेघनाद की कार्यसिद्धि के लिए, कभी सुग्रीव के सेवक दधिमुख, कभी विभीषण तो कभी अंगद का रूप धारणकर रामपक्ष को पर्याप्त भ्रमित कर देता है। वह अंगद के रावणपक्ष में प्रवेश तथा अंगद द्वारा सुग्रीव की हत्या की मिथ्या सूचना देकर श्रीराम को शिथिल कर देने में भी सफल हो जाता है।

कथा में दूसरा चमत्कार है, एक अद्भुतदर्पण नामक मणि। यह रावण के मुकुट से गिरने के बाद विभीषण के पास होते हुए श्रीराम के पास पहुंच जाती है। इस मणि के माध्यम से किसी भी मनोवांछित वस्तु अथवा दृश्य को देखा जा सकता है। राम और लक्ष्मण इसके माध्यम से, रावण, महोदर, सीता, सरमा तथा त्रिजटा आदि के वार्तालाप को सुनते हैं तथा इसी के माध्यम से सीता के पतिव्रतधर्म को भी जान लेते हैं।

तीसरा चमत्कारी पक्ष है, त्रिजटा और सरमा के द्वारा प्रस्तुत की गई माया नाटिका। इसमें त्रिजटा माया के द्वारा राम और लक्ष्मण के साथ रावण, मेघनाद आदि के युद्धों के दृश्य सीता को प्रत्यक्ष दिखाती है। इसे मणि के माध्यम से राम और लक्ष्मण भी देखते हैं। नाटक का चौथा विचित्र किन्तु मनोरंजक पक्ष है, रावण का नर्म सचिव महोदर। वह विशेष रूप से भोजनप्रेमी के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

उसकी उक्तियां हास्य उत्पादक हैं परन्तु रावण के साथ वह इस प्रकार बुद्धिमत्तापूर्ण वार्ता करता है कि राम का पक्ष न्यायोचित सि.. करते हुए भी रावण का कृपापात्र बना रहता है ।

नाटक का पंचम वैशिष्ट्य है, लंका और निकुम्भिला का संवाद । इसके माध्यम से कवि ने राजनीति को प्रकाशित किया है । इसमें यह सिद्धकरने का प्रयास किया गया है कि प्रजा तो राजा के समान ही होती है,साथ ही प्रजा को शासक के अनुकूल ही आचरण करना चाहिए ।

नाटक की अन्तिम विशेषता है, सीता की अग्निपरीक्षा का परिवर्तित रूप । यहां मय नामक राक्षस के द्वारा एक षड्यन्त्र के द्वारा राम का रूप धारण कर सीता को अग्निप्रवेश के लिए विवश किया जाता है । अग्निदेव सीता को दग्ध नहीं करते तथा श्रीराम को सौंप देते हैं ।

इस प्रकार अद्भुतदर्पणम् का सम्पूर्ण कथानक अपना एक विशिष्ट परिचय प्रस्तुत करते हुए चमत्कारों से ही पल्लवित हुआ है । इससे यह प्रतीत होता है कि रामकथा का मूल रूप वाल्मीकीय रामायण तथा कुछ भक्ति साहित्य में तो सुरक्षित रहा था किन्तु परवर्ती साहित्यकारों ने रामकथा का आधार लेकर, अपने नाटकों के माध्यम से चमत्कार एवं मनोविनोद की सामग्री प्रस्तुत करने का ही प्रयास किया है । नाटकों में रामकथा का मात्र चमत्कारों के रूप में ही वर्णन नहीं हुआ है अपितु कवियों ने यथावसर अपने कथानकों में विपुल श्रृंगार वर्णन भी किया है, जैसा कि बाल रामायण तथा हनुमन्नाटक आदि में प्रदर्शित हुआ है । इससे यह भी प्रतीत होता है कि रामकथा को प्रस्तुत करने के लिए कवियों में कुछ न कुछ नवीनता लाने की एक होड़ सी थी, अन्यथा वाल्मीकीय रामायण, अध्यात्म रामायण जैसे प्रतिष्ठित ग्रन्थों के रहते हुए इन नाटकों के लिए सामाजिकों में कोई उत्साह न होता ।

एक विशेषता इन नाटकों में यह भी पाई जाती है कि राम जैसे उदात्त -चरित्र नायक में सामाजिकों को जो दोष दिखाई देने का भय था, उसे भी दूर किया गया है। इसी आधार पर बालि का राम के साथ द्वन्द्वयुद्ध प्रदर्शन, वास्तविक राम द्वारा सीता की अग्निपरीक्षा न लेना आदि प्रसंग जोड़े गये हैं। इन नाटकों में काव्यसौष्ठव का भी चमत्कार रहा है।

द्वितीय अध्याय

व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

1. महाकवि महादेव का जीवन-परिचय एवं पाण्डित्य ।

2. अद्भुतदर्पणम् नाटक की संक्षिप्त कथावस्तु ।

3. अद्भुतदर्पणम् नाटक के विविध स्रोतों की समीक्षा, वाल्मीकीय रामायण से उसकी तुलना ।

4. नवीन काव्यांशों की समीक्षा ।

द्वितीय अध्याय : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

महाकवि महादेव का जीवन परिचय एवं पाण्डित्य

नवम शती ई. से पूर्व दक्षिण भारत में नाटकों की रचना सम्भवतः नहीं की जाती थी क्योंकि इस काल के दक्षिण प्रान्तीय मूर्धन्य कवि शक्तिभद्र कृत "आश्चर्यचूडामणि" नाटक की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि दक्षिण देश का वही सर्वप्रथम नाटक था । किन्तु मध्ययुग, 17वीं शती ई. तक आते-आते उत्तरभारत की भांति ही सुदूर दक्षिण भारत में भी कविगण अपनी प्रतिभा के द्वारा उत्कृष्ट नाटकों की रचना करने लगे थे । इन कवियों में महाकवि महादेव अग्रगण्य हैं । कवि की एकमात्र प्राप्य नाट्यरचना "अद्भुतदर्पणम्" उन्हें संस्कृत के श्रेष्ठ नाटककारों की श्रेणी में स्थान देने के लिये पर्याप्त है ।

संस्कृत के अधिकांश कवियों की भांति, महाकवि महादेव का देशकाल यद्यपि सर्वथा अनुमान का विषय नहीं है तथापि उनके जीवनवृत्त को स्पष्ट करने वाली पर्याप्त सामग्री भी उपलब्ध नहीं है । कवि का कुछ परिचय "अद्भुतदर्पणम्" नाटक की प्रस्तावना में ही मिलता है । यहां यह ज्ञात होता है कि इनके पिता का नाम प्राभाकर दीक्षित कृष्णसूरि था[1]।

- -

1. सूत्रधारः - यथा विदित एव हि तत्रभवानस्मत्कुलगुरोरभिनवसौभरेरवनितल-ब्रह्मणः प्राभाकरदीक्षित इति सुगृहीतनाम्ना पवित्रितजगत्त्रयस्य महर्षेरवतार इव द्वितीयः कुलभूषणमस्माकं कृष्णसूरिः ।

   विदूषकः - तदो तदो ।

   सूत्रधारः - अस्ति तस्य किल सूनुरायुष्मानस्माकं गर्भरूपो वत्समहादेवः ।

   -अद्भुतदर्पणम् अंक 1, पृष्ठ-4

काव्यमाला 55 के अन्तर्गत निर्णयसागर प्रेस से प्रकाशित "अद्भुतदर्पणम्" नाटक की प्रति के प्रथम पृष्ठ पर ही "श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री" ने कवि का संक्षिप्त जीवन परिचय दिया है । इसके अनुसार कौण्डिन्य वंशोत्पन्न महाकवि महादेव दाक्षिणात्य थे । कावेरी नदी के दक्षिण तट पर स्थित, वामभागस्थ भगवती पार्वती से सुशोभित, भगवान शिव की सन्निधि में वर्तमान, पालमारनेरी नामक ग्राम उनका स्थान था । नाटक के अन्त में लिखित उनके प्रशस्ति श्लोकों के आधार पर श्री शास्त्री ने उन्हें "बालकृष्णगुरु" का शिष्य माना है । बालकृष्णगुरु, "नीलकण्ठविजय चम्पू" के कर्त्ता, नीलकण्ठ दीक्षित के समकालीन थे । अतः श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री ने कवि महादेव को भी उनका समकालीन मानते हुए, उनका समय 1637 ई. निश्चित किया है[1] ।

---

1. कौण्डिन्यवंशसंभवो महाकविः महादेवो दाक्षिणात्यो दक्षिणेन कावेरीतीरमैरावताराधितस्य कामिनीवामभागस्य भगवतो महेशस्य संनिधौ वर्तमाने पालमारनेरीनामनि ग्राम आसीत् । "औदार्यं रघुपुंगवे तदनुजे चौद्धत्यमत्युद्भुतं सीतायाश्च यथा पतिव्रतगुणो लोकोत्तरो दृश्यते ।अस्मिन्नद्भुतदर्पणे कविमहादेवस्य वाङ्निर्मिते प्येवं पश्यत दृश्यते यदि गुणो यः कोऽपि वक्त्राश्रयः ।। दिक्चक्रं कियदण्डभित्तिभिरिदं नन्वावृतं सर्वतोऽप्यण्डं नाम कियत्त्रिविक्रमपदैराक्रान्तमेतत्त्रिभिः । तन्निर्यन्त्रणबालकृष्णभगवत्पादप्रसादोन्मिषत्प्राचण्ड्यः कविमण्डलेश्वरयशोगुम्फः क्व वा जृम्भताम् ।।"इत्यनेनैव विरचिताभ्यां पद्याभ्यामस्य बालकृष्णगुरोरन्तेवासित्वमवगम्यते । तस्य च बालकृष्ण गुरोः समकालीनो नीलकण्ठविजयचम्पूकर्त्ता नीलकण्ठदीक्षित इति श्रीरामभद्रकविविरचिते जानकीपरिणयनाटके "यस्य स्तौतिमतिं मनीषिसदसि श्रीनीलकण्ठाध्वरी कोण्डाज्योतिषिकश्च यस्य कुरुते सम्मानमार्यैः समम् । यत्रानुग्रहदृष्टिमर्पयति च श्रीबालकृष्णो गुरुः सोऽयं दीव्यति चोक्कनाथमखिनामक्रीतदासः कविः।।"

नाटक के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कवि महादेव वैष्णव कवि थे। नाटक की नान्दी में ही उन्होंने एक शिष्ट हास्य की अवतरणा के साथ, श्रीरङ्ग भगवान विष्णु से श्रेय की कामना की है[1]। नाटक के पंचम अंक तथा दशम अंक में भी उन्होंने श्रीराम को श्रीविष्णु का तथा सीता को लक्ष्मी का अवतार मानते हुए उनके प्रति श्रद्धा प्रकट की है[2]। इसी प्रकार उनके द्वारा लिखी गई कवि-प्रशस्ति से भी ज्ञात होता है कि वे विष्णु-भक्त थे[3]

- -

गत पृष्ठ का शेष - इत्यनेनावगतम्। तस्मादेषोऽपि नीलकण्ठदीक्षित समकालीन एवेति निश्चीयते। तेन तावन्नीलकण्ठविजयनाम चम्पू 1637 मिते ख्रिस्तसंवत्सरे निरमायीति तद्ग्रन्थादेव ज्ञातमेव। - सुब्रह्मण्य शास्त्री, अद्भुतदर्पणम् : काव्यमाला-55 निर्णयसागर प्रेस, बम्बई।

1. श्रेयः श्रियो रसज्ञो ददातु पुरुषोत्तमो भवताम्।
   जागर्ति यः पयोधौ तादृशतरुणीजिघृक्षयैव पुनः।। - अद्भुतदर्पणम् 1/1

2. देवोऽसाविति शैवचापदलने सामान्यतो योऽभव-
   त्सुत्रारेर्विजये पुनः परिमितो विष्णुः शिवो वेति यः।
   सोऽयं दाशरथी हठोपनमतस्ताद्दर्यस्य साक्षात्ततः
   साचिव्ये सति हन्त विष्णुरिति मे तर्कः प्रसादं गतः।।
   भ्रूगोरेषा कन्या प्रथममथ दुग्धाब्धितनया
   विदेहानां नेतुस्तदनु यजनक्षेत्रजनिता।
   अनन्या ते विष्णोस्त्रिजगदवनायावतरणे-
   ष्वनु त्वामप्येषा स्वयमवतरत्येव नियता। - वही 5/4, 10/15

3. वाल्मीकिवाक्यामृतपूरितेऽपि श्रीराघवस्य स्फुटमन्तरङ्गे।
   मद्भारती भक्तिकृतावकाशा मनागिवारोहतु मन्थरापि। - वही ग्रन्थकर्तुः प्रशस्तिः, श्लोक-5, पृष्ट-145

रामायण जैसे विशालवपु महाकाव्य के एक छोटे से अंश को विषयवस्तु बनाकर कवि ने जो रम्य एवं रोचक नाटक की रचना की है, वह उनकी प्रतिभा के उत्कर्ष को व्यक्त करता है । महाकवि महादेव से पूर्व रामकथात्मक विषय का पर्याप्त प्रयोग हो चुका था किन्तु कविवर महादेव ने अपनी समृद्ध कल्पनाशक्ति के द्वारा युद्ध वृत्तान्त को भी अत्यन्त रोचक एवं प्रभावपूर्ण बना दिया है ।

उनके स्वनिर्मित प्रशस्तिपद्य उनके पाण्डित्य के प्रकर्ष को स्पष्ट करते हैं । सत्य ही उनकी रचना में रस एवं भाव का सुन्दर परिपाक, विविध छन्दों का प्रयोग तथा अलंकारों का रमणीय प्रयोग दृष्टिगोचर होता है । रीति, क्रिया, वृत्ति एवं कल्पना में विदग्धता स्पष्ट परिलक्षित होती है[1]।

अद्भुतदर्पण नाटक के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि कविवर महादेव, न केवल नाट्यशास्त्र के अपितु राजनीति के भी प्रकाण्ड पण्डित थे । यह तो नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने नाट्यशास्त्र को सम्मुख रखकर नाटक का प्रणयन किया है किन्तु यह अवश्य है कि उनकी प्रतिभा से उद्भूत इस नाटक में नाटकीय तत्त्व स्वयमेव स्थान-स्थान पर आते चले गये हैं ।

- -

1. साराासारविवेचनं विदधते शब्दार्थशास्त्रेषु ये
ये च व्याकरणेषु शिक्षितधियश्छन्दोविचित्यामपि ।
ये लंकारनिबन्धनेषु बहुशो यत्नेन दत्ताशया
वीक्षन्तां कविमण्डलेश्वरमहादेवस्य ते वैखरीम् ।।
रसेषु भावेषु गुणेषु रीतिष्वलंक्रियावृत्तिषु कल्पनासु ।
वैदग्ध्यगन्धीनि वचःप्रसूनान्युत्तंसयन्ति स्वयमेव सन्तः ।।

-अद्भुतदर्पणम् ग्रन्थकर्तुः प्रशस्तिः 2, 4

पृष्ठ-144, 145

कवि महादेव राजनीति के सुधि विद्वान थे। उनके इस नाटक की पृष्ठभूमि ही राजनीति पर आधारित है। एक उत्तम स्वामी की परिभाषा करते हुए वे कहते हैं कि वह क्षुब्ध नहीं होता, मित्रों पर विश्वास करता है, निश्चय किये बिना कोई कार्य नहीं करता और न ही मन्त्रियों के बिना कोई निश्चय करता है। इस प्रकार बल से प्राप्त किये गए स्वामित्व को भी अपना अंग बना लेता है[1]। इसी प्रकार एक स्थान पर राजा के अनुचरों के कर्तव्यों का भी वे उल्लेख करते हैं। उनके अनुसार राजा के हितैषियों को कार्य से सम्बन्धित सूचना देने के लिये अवसर की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए, विशेषतः युद्धादि के समय तो बिल्कुल नहीं[2]।

कवि राजतन्त्र की विडम्बनाओं को भी बड़ी सूक्ष्मता से प्रकाशित करते हैं। राजकार्य के प्रधान, मन्त्री आदि राजा की शंका से किस प्रकार दुष्प्रभावित होते हैं इसका बड़ा ही तीक्ष्ण विश्लेषण कवि ने किया है[3]। राज्य प्राप्ति के लिए राजपुत्रों का पितृव्यों से होने वाले

---

1. क्षोदन्न क्षमते हिताय घटते मित्रेषु दत्ते मनः
   शंका स्थानविवर्जनैर्विवृणुते विश्वास्यतामात्मनः।
   नानिश्चित्य करोति नापि कुरुते मन्त्रैर्विना निश्चयं
   स्वातन्त्र्यैकफलं बलोर्जितमपि स्वाम्यं नयत्यंगताम्॥

   -अद्भुतदर्पणम् 2/5

2. अर्थान्कार्योपायिकानावेदयितुं हितैषिणा राज्ञः।
   नावसरः प्रतिपाल्यो विशेषतो विग्रहावतीर्णस्य॥

   - वही - 1/18

3. शङ्क्यः कार्यपरीप्सया परिजनो राजापि नन्वन्ततः
   स्यादेवं सति कष्टमेव न मिथः शंकेत कः शंकितः।
   शंका राजहृदि व्यनक्ति यदविश्वासोत्तरं भयं
   तत्प्राणान्तिकमेव हन्त धिगहो दुर्जीवितं मन्त्रिणाम्॥

   - वही -2/4

द्वेष का भी वर्णन कवि ने किया है[1]। राजतन्त्र का ही नहीं अपितु रणनीति का भी कवि को पर्याप्त ज्ञान है । राम के द्वारा लक्ष्मण को दी गई सान्त्व-नाओं में श्रीराम रणनीति की उत्तम शिक्षा देते हैं । वे निरायुध पर प्रहार करना निषिद्ध बताते हैं[2]।

युद्ध समाप्ति के पश्चात् किस प्रकार शान्ति व्यवस्था करनी चाहिए कवि ने इसका भी विद्वत्तापूर्वक वर्णन किया है । राम के द्वारा लंका में कराई गई शान्तिव्यवस्था इसका उत्कृष्ट उदाहरण है । उनके अनुसार युद्ध में विजयी राजा को,परास्त सेना पर प्रहार रोक देना चाहिए । सभी को स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण का अधिकार देते हुए, भयभीतों को सान्त्वना देनी चाहिए । एक दूसरे के युद्धबन्दियों को मुक्त कर दिया जाना चाहिए तथा विजयी राजा को पराजित राज्य के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए[3]।

---

1. पितृव्ये राजपुत्राणां ज्ञातिद्वेषो विशिष्यते ।
   आनन्तर्यस्य यत्साम्यमभ्यसूयापदं हि तत् ।।

   -अद्भुतदर्पणम् 1/24

2. निषिद्धमेतत्प्रागेव रणकर्म निरायुधे ।
   तद्गृहीतायुधः सोऽयं समेष्यत्येव संगरम् ।।

   - वही 6/29

3. लंकारोधात्कपीनां विरमतु पृतना राक्षसेषु प्रहारः ।
   सज्जोऽपि त्यज्यतां तेष्वपजितचकिताः प्रद्रुताः सान्त्वनीयाः ।
   स्कन्धावारे पुरे वा भवतु च परितः संचरो निर्निरोधो
   लंका यातु प्रसादं पुनरपि च यथा मन्युमुक्ताप्यवेला ।।
   स्पर्धारब्धोऽपि सद्यः कपिपिशिताशानां संगरः शान्तिमेतु
   प्रीतिश्चान्योन्यमेषामविरतमयतामुद्गमयोर्भयेषाम् ।
   यो यो रुद्धः स सद्यः कपिषु निशिचरेष्ववर्ज्यतां मुच्यतां वा
   लंकाकिष्किन्धयोर्यद्द्रुमतिरकरोदैकराज्यप्रसादम् ।।

   - वही 9/15, 16

इसी प्रकार वे पराजित राज्य के नागरिकों के कर्तव्यों का भी उल्लेख करते हैं। उनके अनुसार प्रजा को स्वयं को राजा के अनुरूप ढाल लेना चाहिए[1]। श्रीमहादेव के अनुसार धर्मपालक राजा के राज्य में ही प्रजा सुखपूर्वक निवास कर सकती है। धर्मपालक विभीषण के उदाहरण के द्वारा उन्होंने अपना मत व्यक्त किया है [2]।

युद्ध का वर्णन विशेष होने के कारण यहाँ कवि का राजनैतिक ज्ञान ही विशेष रूप से प्रकाशित हुआ है तथापि कवि को वेद, पुराण, दर्शन आदि का भी सम्यक् ज्ञान था यह भी इस नाटक के विभिन्न प्रसंगों से ज्ञात होता है। जैसा कि वेदसम्मत है- "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति[3]" इसी आधार पर कवि महादेव ने भगवान् विष्णु की अनेकरूपता का वर्णन किया है[4]। जिस प्रकार वेदान्त दर्शन में माया को परमात्मा की शक्ति

---

1. चिरपरिचितराजव्यत्यये पत्तनानां
   ननु भवति नवीने राज्ञि कोऽपिप्रकारः।
   तदपि तदनुजन्मा यन्मया च त्वया च
   प्रकृतिषु निःसीमा पालनात्पालनीयः॥- अद्भुतदर्पणम् 9/8

2. तद्धर्मभूषणविभीषणपालनेन सर्वोऽप्ययं शममुपेष्यति नो विषादः॥
   - वही 9/9

3. ऋग्वेद 1/164/46

4. एकश्चतुर्धा जातो यस्तस्यांशः पंचमोह्ययम्।
   सर्वनाशाय सीतेति सम्मोहयति रावणम्॥
   अद्भुतदर्पणम् 5/11

माना गया है, उसी प्रकार कवि भी माया को नारायण में ही निविष्ट मानते हैं[1]।

कवि यज्ञों के भी समर्थक हैं। वे यज्ञकर्ता विद्वानों के वंशज भी हैं, यही नहीं उनका नाटक भी यज्ञक्रिया के मध्यान्तर काल में ही अभिनीत हुआ था। कवि ने पौराणिक कथाओं का संकेत भी नाटक में प्रसंगवश कई स्थानों पर किया है। देव-दानव युद्ध, विष्णु का समुद्र-मन्थन के पश्चात् मोहिनी रूप धारण करना, उन्हीं का वराह रूप धारण कर हिरण्याक्ष दलन, नृसिंहावतार में हिरण्यकशिपु वध, वामन का अवतार लेकर बलि को पाताल में भेजने आदि की पुराणप्रसिद्ध कथाओं का संकेत कवि ने स्पष्टतः किया है। इससे उनके पौराणिक ज्ञान का निदर्शन होता है[2]।

इन सबके अतिरिक्त कवि का काव्यशास्त्रीय एवं छन्दशास्त्रीय ज्ञान भी अथाह है। रसालंकार आदि के उत्कृष्ट प्रयोग से उनके काव्य-शास्त्रीय ज्ञान का पता चलता है। अद्भुतदर्पणम् में उन्होंने लगभग 15 छन्दों का प्रयोग किया है, इससे ज्ञात होता है कि उन्होंने छन्दशास्त्र का भी गम्भीर अध्ययन किया था।

---

1. मायामायेति वृथा महतीयं दुष्प्रसिद्धिरस्मासु।
   नारायणे निविष्टं ननु मायातत्त्वसर्वस्वम्॥

   -अद्भुतदर्पणम् 5/8

2. वराहाकारः सन्यदकृत हिरण्याक्षदलनं
   नृसिंहः संहारं यददित हिरण्यस्य कशिपोः।
   बलिं पातालान्तस्तमसि रुरुधे वामनतया
   स किं वा नो कुर्याददितिसुतपक्षैकपतितः॥

   -वही 5/9

यद्यपि संस्कृत नाटककारों में श्री महादेव को उनका समुचित स्थान प्राप्त नहीं हो सका है तथापि उनको यह श्रेय तो प्राप्त ही है कि वे वीररसप्रधान इस नाटक में भी अपने कल्पना प्राचुर्य एवं विद्वत्ता के द्वारा श्रृंगार रस के समान ही रोचकता उत्पन्न करने में पूर्ण सफल रहे हैं।

कविवर महादेव की एक अन्य रचना "शुक सन्देश" का उल्लेख भी प्राप्त होता है[1]। इससे अधिक उनकी साहित्यिक साधना के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती। तथापि अद्भुतदर्पणम् को देखकर यह तो कहा ही जा सकता है कि यह एक उत्तम नाटक है तथा श्रीमहादेव एक सफल नाटककार।

---

1. डा. बलदेव उपाध्याय : संस्कृत साहित्य का इतिहास, दशम संस्करण पृष्ठ 625

अद्भुतदर्पणम् नाटक की संक्षिप्त कथावस्तु

अद्भुतदर्पणम् नाटक की कथावस्तु का मुख्य आधार महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण महाकाव्य है । दश अंकों में निबद्ध प्रस्तुत नाटक लंकाकाण्ड की घटनाओं पर आधारित है । किन्तु कवि की समृद्ध कल्पना ने इसे सर्वथा नवीन रूप में ढाल दिया है । संक्षेप में नाटक का कथानक इस प्रकार है -

प्रथम अंक

नाटक के प्रथम अंक का प्रारम्भ दो श्लोकों के नान्दी-पाठ से होता है । प्रथम श्लोक में कवि ने शिष्ट हास्य की अवतारणा करते हुए श्री रसज्ञ भगवान विष्णु से, सामाजिकों को श्रेय प्रदान करने की प्रार्थना की है । तथा द्वितीय अंक में देवी वाणी की स्तुति है । नान्दी-पाठ के पश्चात् सूत्रधार का प्रवेश होता है । वह नान्दी-पाठ को रंगपूजा का औपचारिक मंगलविधान मानते हुए कौण्डिन्य वंश के, पवित्र यश वाले ब्राह्मणों के दर्शन को ही वास्तविक मंगल का निमित्त मानता है ।

तदनन्तर विदूषक का प्रवेश होता है । प्रस्तावना में विदूषक तथा सूत्रधार के वार्तालाप के द्वारा नाटक के प्रयोग की सूचना प्राप्त होती है । इसी सन्दर्भ में यह भी ज्ञात होता है कि नाटक का आयोजन किसी यज्ञ के निमित्त, अनेक देशान्तरों से निमन्त्रित विद्वान् ब्राह्मणों के सत्कार हेतु किया जा रहा है । सूत्रधार बताता है कि नाटक का प्रयोग यज्ञ-कार्य के विश्रामकाल में किया जायेगा । यहीं पर सूत्रधार कवि-परिचय भी देता है । कवि महादेव, ब्राह्मणश्रेष्ठ प्राभाकर दीक्षित कृष्णसूरि के पुत्र हैं । तत्पश्चात् सूत्रधार के द्वारा नाटक के पूर्व वृत्तान्त की संक्षिप्त सूचना दी जाती है ।

गुप्तचर हनुमान् के द्वारा शत्रुपक्ष का मर्म जान लेने पर, सेतु

का निर्माण कर समस्त वानरसेना ने सागर पार कर लिया है । वह त्रिकूट पर्वत की अधित्यका पर स्थित,लंका के गोपुर के समीप श्रीराम के द्वारा निवेशित कर दी गई है । युद्ध को ही एकमात्र मान्यता देने वाले कुमार लक्ष्मण का प्रवेश ही सर्वप्रथम होगा, इसकी सूचना भी यहाँ प्राप्त हो जाती है । इसी स्थान पर प्रस्तावना समाप्त हो जाती है ।

मूल कथा में सर्वप्रथम लक्ष्मण का प्रवेश होता है । लक्ष्मण युद्धाभिलाषी हैं तथा राम के द्वारा दौत्यकर्म के लिए अंगद का रावण के पास भेजा जाना उन्हें खिन्न कर देता है । श्रीराम के इस कृत्य को वे मानी पुरुष के योग्य नहीं समझते । संध्यावन्दन के पश्चात् वे राम के पास जाते हैं । श्रीराम जाम्बवान् के साथ साल वृक्ष के नीचे बैठे हैं । राम की स्थिति लक्ष्मण को, स्वयं के कृत्य से लज्जित व्यक्ति की भाँति प्रतीत होती है । श्रीराम भी अपने विषय में फैले, अमर्षशून्यता के अपवाद से खिन्न हैं ।

तभी नेपथ्य से स्वर आता है कि अग्नि-संक्रान्ति का आदेश दिया गया है । जाम्बवान् श्रीराम को बताते हैं कि पिछले दिन मेघनाद ने कुटुम्ब सहित विभीषण के घर में आग लगाने का आदेश दिया था, ऐसा कहते हुए विभीषण का अमात्य सम्पाती सा प्रतीत हो रहा है । इस वृत्तान्त को सुनकर श्रीराम अत्यन्त शोकाकुल हो उठते हैं । इसी समय विभीषण के दो मन्त्रियों, अनल तथा सम्पाती का प्रवेश होता है । अनल के पूछने पर सम्पाती उसे बताता है कि उसने त्रिजटा के मुख से मेघनाद का आदेश सुनकर, शीघ्र ही विभीषण के परिवार को गुप्त पथ से मैनाक पर्वत पर पहुँचा दिया है । इस प्रकार की वार्ता करते हुए वे दोनों राम के समीप आते हैं । इस वृत्तान्त को सुनकर सभी अत्यन्त हर्ष व्यक्त करते हैं ।

यहीं पर लक्ष्मण का प्रवेश होता है । वे रामादि के असमय हर्ष को देखकर उपहास करते हैं । लक्ष्मण के यह कहने पर कि आर्या की मुक्ति के अतिरिक्त सन्धि प्रस्ताव को सम्भवतः राक्षसेन्द्र ने स्वीकार कर लिया है। राम इन व्यंग्यात्मक वचनों को सुनकर तथा सीता के स्मरण-मात्र से दुःखी हो जाते हैं । जाम्बवान् लक्ष्मण को हर्ष का कारण बताते हैं । इधर राम खिन्न हृदय से स्वयं की भर्त्सना करते हैं । लक्ष्मण तथा जाम्बवान् उन्हें सान्त्वना देने का प्रयत्न करते हैं । उसी समय विभीषण का मन्त्री अनल, कोई सन्देश देना चाहता है । लक्ष्मण प्रसंगान्तर उपस्थित होने से प्रसन्न हो जाते हैं ।

अनल राम को विभीषण का सन्देश देता है कि विभीषण के द्वारा लंका में किया जाने वाला अध्यवसाय ज्ञात कर लिया गया है । उनके अनुसार निशाचरों ने मायावी युद्ध का निश्चय किया है, जिसके लिए मय, विद्युज्जिह्व आदि प्रमुख मायावी बुला लिए गये हैं । राम माया की इस विभीषिका से विचलित नहीं होते । इसी समय वानर के वेश में शम्बर नामक राक्षस आ जाता है । उसके स्वगतकथन से ज्ञात होता है कि उसने सीता के विरह से व्याकुल रावण के विनोदार्थ वानर का वेश धारण किया है । वानरों की समस्त चेष्टाओं को सीख लेने पर भी उनके किल-किला शब्द को नहीं सीख सका है । वह विभीषण के अनुचरों के जाने की प्रतीक्षा करता है ।

इसके पश्चात् अनुचर सन्देश में आगे कहता है कि माया युद्ध की सम्भावना होने से संग्राम में उतरने से पूर्व समस्त सैनिकों को संकेत चिन्ह दे देना चाहिए । जाम्बवान् विभीषण को ही "स्वपरविवेचक" संकेत देने के लिए कहते हैं । इस वार्ता को सुनकर शम्बर विचार करता है कि विभीषण माया में राक्षसों से अधिक है अतः कोई क्लिष्ट संकेत ही देगा, किन्तु महाराज रावण के श्वसुर मय दानव ने उन्हें अद्भुतदर्पण नामक एक मणि दी है जिसमें तीन योजन पर्यन्त घटना परिलक्षित हो जाती है। लेकिन

मानसिक विचारों के प्रति वह भी शंकित है ।

विभीषण के अनुचरों के प्रस्थान करने के पश्चात् शम्बर रामादि के पास पहुंचता है । वहां वह लक्ष्मण को अंगद के शत्रुपक्ष में प्रवेश की मिथ्या सूचना देता है । जाम्बवान् को उसकी बात पर विश्वास नहीं होता । वे राम से विमर्श करके,शम्बर को पकड़कर विभीषण के पास संकेत के लिए ले जाते हैं । यहीं पर प्रथम अंक समाप्त हो जाता है ।

द्वितीय अंक

द्वितीय अंक के प्रारम्भ में हर्षयुक्त शम्बर प्रवेश करता है । उसके द्वारा ज्ञात होता है कि जाम्बवान् के द्वारा राम के पत्र को पढ़ने के लिए उसका हाथ छोड़ दिये जाने पर तथा उसी समय अचानक वास्तविक दधिमुख के वहां आ जाने पर, दधिमुख को सामने कर, वह स्वयं अदृश्य हो गया तथा इस प्रकार उसने वृद्ध जाम्बवान् को ठग लिया है ।

इधर दधिमुख जाम्बवान् के द्वारा स्वयं को निगृहीत देखकर आश्चर्य व्यक्त करता है । वह जाम्बवान् से पूछता है कि राम इस समय इस समय कहां हैं । जाम्बवान् के द्वारा पूछे जाने पर वह बताता है कि दूत के रूप में गये हुए अंगद के पकड़े जाने की सूचना मिलने पर, लंका में शीघ्र ही कूदकर प्रवेश करने वाले सुग्रीव ने उसे आदेश दिया है कि वह राम देव से उनके लंका में जाने का वृत्तान्त कह दे ।

दधिमुख के वचनों को सुनकर जाम्बवान् सोचते हैं कि यह तो इस समय सर्वथा प्रतिकूल बात कह रहा है । फिर भी वे उससे पुनः कहते हैं, "तुमने अभी तो तारेय के शत्रुपक्ष में प्रवेश की बात कही थी और अब कुछ और ही कह रहे हो ।" यह सुनकर दधिमुख कहता है कि संभवतः उसके रूप को धारण करने वाले किसी राक्षस ने व्यथित करने के लिए ऐसा

किया है । जाम्बवान् को उसकी बात पर विश्वास नहीं होता और वे दधिमुख से बताते हैं कि वे उसे संकेत मुद्रा हेतु विभीषण के पास ले जा रहे हैं ।

जाम्बवान् एवं दधिमुख की वार्ता सुनकर अदृश्य शम्बर विचार करता है कि विभीषण तो राक्षसी माया निस्तारण में निपुण हैं अतः जाम्बवान् एवं दधिमुख के विभीषण के पास पहुंचने से पहले ही, मणि के प्रभाव से संकेत मुद्रा ज्ञात करके राम एवं लक्ष्मण के कार्य में विलम्ब उत्पन्न करने के लिए, मार्ग में विभीषण बनकर इन्हें वंचित करके अदृश्य हो जाता हूं । इस अवधि में कुमार मेघनाद सर्पों का आवाहनअनुष्ठान पूर्ण कर लेंगे । यह सोचकर वह विभीषण का रूप बनाकर मार्ग में ही उन्हें भ्रमित कर देता है ।

इसके पश्चात् नेपथ्य से सुग्रीव के लंका में प्रवेश की सूचना प्राप्त होती है । लक्ष्मण राम को सुग्रीव के सहायतार्थ चलने के लिए प्रेरित करते हैं । उसी समय वहां एक घायल राक्षस आकर गिरता है । उस राक्षस को देखकर राम, उसके किसी वानर द्वारा संग्रामभूमि से फेंके जाने की सम्भावना व्यक्त करते हैं । इधर वेदना में उन्मत्त सा वह राक्षस मूर्च्छावस्था में प्रलाप करता हुआ कहता है," अरे दुष्ट वानर अभी तेरा सिर गिरता है ।" राक्षस के प्रलाप को सुनकर राम वितर्क करते हैं कि यह वानर कौन हो सकता है । इसी समय दधिमुख के वेश में शम्बर पुनः वहां आ जाता है । अपनी माया के प्रदर्शन हेतु उपयुक्त अवसर जानकर राम को मायानिर्मित सुग्रीव का कटा हुआ सिर दिखाकर कहता है, "जिसका यह है ।" लक्ष्मण अपने द्वारा बांधे गये पट्टबन्ध को देखकर सुग्रीव को पहचान लेते हैं । मित्र का कटा हुआ शीर्ष देखकर राम शोक से विह्वल हो उठते हैं । लक्ष्मण राम को सान्त्वना देते हुए उस शीर्ष को मायानिर्मित बताते हैं । यह सुनकर लक्ष्मण को विश्वस्त करने के लिए,

शम्बर सुग्रीव के शीर्ष को लेकर पर्वत से गिरकर प्राण त्यागने की इच्छा व्यक्त करता है । लक्ष्मण उसे स्वामी का अनुकरण करते हुए रणभूमि में प्राण त्यागने की सलाह देते हैं ।

अब दधिमुख वेशधारी शम्बर राम को विश्वास में लेकर, उन्हें अंगद के द्वारा छलपूर्वक सुग्रीववध का कल्पित वृत्तान्त सुनाता है । वह बताता है कि अंगद ने पिता की मृत्यु से उत्पन्न रोष के शमन हेतु, शत्रु की सहायता से सुग्रीव का वध कर दिया है । इसी बीच प्रसंगवश शम्बर छल से प्राप्त संकेतमुद्रा भी राम-लक्ष्मण को दिखाता है । लक्ष्मण सुग्रीव की मृत्यु के प्रति फिर भी आश्वस्त नहीं होते ।

शम्बर आगे कहता है कि इन्द्रजित ने, सुग्रीव को नागपाश में बांध लिया तथा अंगद ने स्वयं रावण के हाथ से चन्द्रहास लेकर सुग्रीव का वध कर दिया । इस वृत्तान्त को सुनकर शोकसंतप्त राम अत्यन्त शिथिल हो जाते हैं । उनकी यह अवस्था देखकर शम्बर मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न होता है किन्तु लक्ष्मण को धैर्ययुक्त देखकर कुछ व्यग्र सा हो जाता है । इसके बाद लक्ष्मण के द्वारा सान्त्वना दिये जाने पर राम मित्रवध का प्रतिशोध लेने के लिए उत्तरगोपुर की ओर चल पड़ते हैं ।

इधर प्रहस्त मूर्च्छा से जागृत हो जाता है । मार्ग में शम्बर राम को अंगद के छल एवं प्रतिशोध का कल्पित वृत्तान्त सुनाता चलता है । इसी बीच नेपथ्य स्वर से अंगद के आगमन का समाचार सुनकर शम्बर अंगद को भी दधिमुख के वेश में छलकर, लक्ष्मण के कोप का भाजन बनाने का विचार करता है । तत्पश्चात् वह राम-लक्ष्मण को पीछे ही छोड़कर स्वामी के वध का प्रतिकार करने के लिये रण में प्राण त्यागने की इच्छा व्यक्त करते हुये आगे चला जाता है । तत्पश्चात् राम एवं लक्ष्मण भी उसका अनुसरण

करते हुए उत्तरगोपुर तक पहुंच जाते हैं।

इधर मूर्च्छा से जागृत प्रहस्त कुछ स्खलित पदों से चलता हुआ कहता है, "अरे दुष्ट वानर क्या जीवित ही चला जायेगा।" यहां दधिमुख के वेश में शम्बर प्राकारध्वंस में प्रवृत्त वानरों से कहता है कि लंकापुर पर आक्रमण थोड़ी देर रोक दो तथा अपने पक्ष से उठने वाले अत्यन्त अहितकर वृत्तान्त को सुनो कि अंगद शत्रुबल का सहयोग लेकर वानरसेना का दलन कर रहा है। ऐसा कहकर निकल जाता है।

इधर राम अपने मन में उमड़ने वाली अकारण प्रसन्नता का अनुभव करके आश्चर्य व्यक्त करते हैं कि उन्हें प्रतिकूल परिस्थितियों में भी, मित्र के पुनः दर्शन की आशा क्यों हो रही है। फिर स्वयं ही सम्भावना व्यक्त करते हैं कि भावी विजय के कारण ही प्रसन्नता हो रही है।

इधर प्रहस्त भी वानर अंगद को खोजते हुए आ जाता है तथा उसके सिर तोड़ने की बात कहता है। यहां द्वितीय अंक समाप्त हो जाता है।

तृतीय अंक

उत्साहित लक्ष्मण की स्वगत उक्तियों के साथ तृतीय अंक का प्रारम्भ होता है। लक्ष्मण के कथन से ज्ञात होता है कि वे मित्रशोक से प्रतिपत्तिशून्य श्रीराम को किसी प्रकार प्राप्तव्य प्रदेश तक ले आये हैं तथा उन्हें यहां तक लाकर लक्ष्मण बहुत प्रसन्न हैं। इसके पश्चात् ही शोककातर एवं मन्दगति से चलते हुए श्रीराम का प्रवेश होता है। सामने स्थित लंका के गोपुर को देखकर वे करुण स्वर में, कभी अंगद के धैर्य की

प्रशंसा करते हैं तो कभी सुग्रीव के प्रति दुःख व्यक्त करते हैं, तथा वे सीता को जीवित देखने के प्रति भी शंकित होते हैं। अनवस्थित चित्तवृत्ति वाले श्री राम के ऐसे वचनों को सुनकर लक्ष्मण उन्हें सान्त्वना देते हैं और त्रिकूट के शिखर भाग की ओर ले जाते हैं।

श्रीराम भी त्रिकूट पर से लंका को देखकर तथा कपिसेना के द्वारा उसे लीलापूर्वक विलंघित किए जाते देखकर उनकी प्रशंसा करते हैं। इसी बीच श्रीराम को सीता का स्मरण हो जाता है। वे मन ही मन कहते हैं कि इस लंका में अवरुद्ध उस वराकी ने राम की दृष्टि को समाप्त सा कर दिया है। उसी समय नेपथ्य से स्वर उठता है कि कुमार लक्ष्मण के उपदेशानुसार, "भृत्य की मृत्यु वहीं श्रेयस्कर है, जहां स्वामी की। इस प्रकार मेरे स्वामी के पिण्ड का उपयोग सफल हुआ।" इस स्वर को सुनकर राम कहते हैं कि यह तो दधिमुख का आर्त स्वर है। उसी समय लक्ष्मण राम को अंगद के द्वारा दधिमुख का शीर्ष उछालते हुए दिखाते हैं। यह देखकर श्रीराम दधिमुख के लिए तो दुःख प्रकट करते हैं किन्तु साथ ही अंगद की प्रशंसा भी करते हैं कि उसने शत्रु को नष्ट करके स्वयं का तथा अपने कुल दोनों का ही मानवर्द्धन किया है।

इसी समय अंगद का वेश धारण किये हुए,शम्बर राम-लक्ष्मण के सम्मुख आ जाता है। लक्ष्मण उसकी वल्गना से क्रोधित होकर खड्ग पकड़ लेते हैं। यह देखकर शम्बर एक बार तो डर जाता है किन्तु फिर सोचता है कि श्रीराम तो महापुरुष हैं, वे शत्रु का भी अहित नहीं करते इसलिए उनके पास जाकर लक्ष्मण के क्रोध को उद्दीप्त करना चाहिए, जब तक कि अंगद यहां नहीं आ जाता। तत्पश्चात् वह श्रीराम के पास जाकर अपनी बातों से लक्ष्मण को क्रोधित कर देता है। अंगद रूपधारी शम्बर के उद्धत व्यवहार को देखकर लक्ष्मण कुछ भ्रमित से हो जाते हैं। वे विचार करते हैं कि इस प्रकार का व्यवहार करने वाला यह चाहे

वास्तविक अंगद हो अथवा मायावी राक्षस, सर्वथा वध्य है । वे शम्बर को मारने की इच्छा करते हैं । इसी समय सेना की धूल उड़ती देखकर शम्बर अनुमान करता है कि अंगद समीप आ गया है । यह देखकर वह अंगद को, क्रोधान्ध लक्ष्मण के सम्मुख कर, स्वयं तिरोहित होकर देखने की इच्छा व्यक्त करता है । यहीं पटाक्षेप हो जाता है ।

तदनन्तर प्रहस्त का प्रवेश होता है । वह भुजाओं में शम्बर को पकड़ लेता है और कहता है कि दुष्ट वानर अभी तेरा सिर गिरता है । यह देख लक्ष्मण विमर्श करते हैं कि यह कौन बीच में आ गया । तभी कूदकर सुग्रीव प्रवेश करते हैं । उनके स्वगत कथन से ज्ञात होता है कि अंगद ने रावण के सामने ही प्रहस्त आदि को ध्वस्त करके, उनका दूर से जाना विफल कर दिया । यहां यह भी ज्ञात होता है कि अन्य राक्षसों के साथ प्रहस्त तथा आकाश में रथ से गिरे हुए विवश इन्द्रजित को ध्वस्त करते हुए अंगद ने जो बालसुलभ चपल क्रीड़ा की है, उसीके फलस्वरूप सुग्रीव रावण के शीर्ष पंक्तियों से उसके मुकुटों को दूर-दूर तक फेंक सकने में समर्थ हो सके । इसी बीच सुग्रीव क्रोधित कुमार लक्ष्मण की ओर देखकर कहते हैं, "मुझ सुग्रीव को देखकर भी कुमार किस कारण से क्रोधित होकर असिधारण किये हैं ।" लक्ष्मण भी सुग्रीव को देखकर खड्ग नीचे कर लेते हैं ।

इधर प्रहस्त शम्बर को अंगद समझकर कहता है, "अरे पापी, बहुत समय बाद मेरे हाथ में आया है । अभी तेरा सिर तोड़ता हूं ।" उसकी बात सुनकर सुग्रीव कहता है कि मेरे रहते यह पुत्र को किस प्रकार पकड़े हुए है । उधर लक्ष्मण श्रीराम को सावधान करते हुए कहते हैं कि कोई स्वयं को बार-बार सुग्रीव कह रहा है । इसी समय सुग्रीव भी मायामोहित श्रीराम को खिन्न देखकर खेद प्रकट करते हैं । श्रीराम सुग्रीव का नाम सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं । उनके उद्गारों से

सुग्रीव को ज्ञात होता है कि किसी ने उनके मृत्यु की मिथ्या वार्ता से श्रीराम को पीड़ित किया है ।

तदनन्तर सुग्रीव श्रीराम के सम्मुख जाकर उन्हें प्रणाम करते हैं । उन्हें देखकर श्रीराम कहते हैं कि इसको देखते ही जिस प्रकार मेरी अन्तरात्मा प्रसन्न हो रही है उससे यह प्रतीत होता है कि यह मित्र सुग्रीव ही है । राम की सरलता देखकर लक्ष्मण उन्हें सहसा विश्वास करने से रोकते हैं । इस पर राम सविश्वास कहते हैं, "वत्स ! अब भी अश्रद्धा क्यों ? जबकि मैं यह कह रहा हूं, यह मित्र सुग्रीव ही है ।" श्रीराम सुग्रीव को हृदय से लगा लेते हैं तथा अत्यन्त सौजन्यतापूर्ण व्यवहार करते हैं । सुग्रीव श्रीराम के अत्यन्त आत्मीयतापूर्ण व्यवहार से कुछ संकुचित से हो जाते हैं तथा हर्ष एवं लज्जा का मिश्रित भाव व्यक्त करते हुए,श्रीराम को आश्वस्त करने के लिए, पृच्छायाशीतल शिलातल की ओर लेकर चले जाते हैं । कुमार लक्ष्मण फिर भी राम को सावधान रहने की चेतावनी देते हुए उन्हीं के साथ चले जाते हैं ।

इधर प्रहस्त, अंगद रूपधारी शम्बर को विषमशिलाखण्ड पर पटककर मारने की इच्छा व्यक्त करता है । यहां शम्बर इस नयी आपत्ति से भ्रमित सा हो जाता है । व्याकुल शम्बर को उठाकर प्रहस्त भी यथासमीहित करने के लिए चला जाता है । यहीं पर तृतीय अंक पूर्ण हो जाता है ।

चतुर्थ अंक

चतुर्थ अंक में सर्वप्रथम वार्तालाप करते हुए दधिमुख का आगमन होता है । जाम्बवान् दधिमुख से पूछते हैं कि क्या उसने श्रीराम के सामने अंगद के शत्रुपक्ष में प्रवेश का कथन नहीं किया । तथा कहते हैं कि अवश्य ही यह किसी राक्षस के द्वारा की गई वंचना है । दधिमुख उनका समर्थन करता है और बताता है कि मायावी राक्षस ने तिरोहित होकर तथा माया से विभीषण का रूप धारणकर हमें छल लिया है । जाम्बवान् हंसकर दधिमुख को मुक्त कर देते हैं ।

इसके बाद जाम्बवान् आशंका व्यक्त करते हैं कि दधिमुख को बन्धन में डालकर वह राक्षस राम एवं लक्ष्मण के समक्ष न जाने क्या विपरीत आचरण कर रहा हो । इसलिए वे दोनों शीघ्रतापूर्वक राम-लक्ष्मण की ओर चल देते हैं मार्ग में दधिमुख के सुग्रीव के विषय में पूछने पर, जाम्बवान् बताते हैं कि आकाशमार्ग से गिरी हुई एक अद्भुत आकार की मणि को विभीषण के दर्शनार्थ ले जाने वाले, अमात्य सम्पाती के द्वारा ज्ञात हुआ है कि मन्त्री सहित रावण को प्रताडित कर, सुग्रीव राम के समक्ष वापस आ गये हैं । इस प्रकार वार्ता करते हुए वे दोनों श्रीराम के पास चल देते हैं ।

तदनन्तर अंगद के वेष में शम्बर को ही अंगद समझकर, प्रहस्त शम्बर को पकड़कर ले आता है और कहता है, "अरे तारापुत्र व्यर्थ ही स्फुरित हो रहा है । तेरी मुक्ति अब सम्भव नहीं । इस विषम शिलातल पर पटककर तेरा सिर तोड़ता हूं ।" बन्धन में पड़ा हुआ शम्बर व्याकुल होकर किसी प्रकार भ्रू-संकेत से अपने को शम्बर बता देता है । उसे पहचानकर प्रहस्त उसे मुक्त कर देता है ।

इधर लक्ष्मण उन दोनों की वार्ता सुनते हैं । इसी समय रावण के साथ द्वन्द्वयुद्ध कर वापस लौटे सुग्रीव भी आ जाते हैं । वे अंगदवेशधारी शम्बर को देखकर कहते हैं, "यहां पुत्र अंगद की उपस्थिति कहां सम्भव है, यह तो दुष्ट शम्बर है ।" इन्हीं के साथ आये हुए राम पूछते हैं कि क्या यही शम्बर है, इसी ने समस्त सम्मोहन उपस्थित किया है । तभी जाम्बवान् और दधिमुख भी आ जाते हैं । जाम्बवान् सम्मोहित करने वाले शम्बर को पकड़ लेते हैं । शम्बर भी उन्हें देखकर अपने जीवित लौटने के प्रति शंकित हो जाता है ।

सुग्रीव राम को बताते हैं कि अंगद के निग्रह का समाचार सुनकर उन्होंने लंका में प्रवेश करते समय, समस्त वृत्तान्त श्रीराम को निवेदित करने के लिए दधिमुख को भेजा था । इस पर दधिमुख शम्बर के छल एवं स्वयं के पकड़े

जाने का वृत्तान्त सुनाता है । अब लक्ष्मण के द्वारा अंगद के विषय में पूछे जाने पर सुग्रीव बताते हैं कि अंगद प्रहस्त आदि को मारकर मेघनाद के साथ जूझ रहा है । वे आगे बताते हैं कि उसने मेघनाद को पराजित भी कर दिया । लक्ष्मण अंगद को साधुवाद देते हैं ।

अब जाम्बवान् के द्वारा यह पूछने पर कि शम्बर का क्या किया जाय, लक्ष्मण शम्बर का वध करने के लिए उद्यत हो जाते हैं किन्तु राम यह कहकर रोक देते हैं कि पकड़े गये को मारने से क्या लाभ । सुग्रीव सुझाव देते हैं कि शम्बर को किष्किन्धा की गुफा में बांधकर डाल देना चाहिए । राम भी उनका समर्थन करते हैं । अपने परिणाम को सुनकर शम्बर यह सोचकर संतुष्ट होता है कि भले ही वह बन्धन में पड़ गया किन्तु राक्षसों को तैयारी का समय तो मिल ही गया साथ ही कुमार मेघनाद ने भी अपना कार्य सिद्ध कर लिया । किन्तु प्रकाश में वह राम से पुनः विचार करने के लिए कहता है और सुग्रीव, जाम्बवान् तथा दधिमुख आदि को राक्षसों की मायारचना बताता है । जाम्बवान् व्यंग्य करते हैं कि सत्य ही हम क्रूर राक्षसों की मायारचना हैं और तुम बालिपुत्र अंगद हो । इसलिए आओ तुम्हें किष्किन्धा में ही पिता के पद पर स्थापित कर देते हैं ।

तभी नेपथ्य स्वर से ज्ञात होता है कि अंगद के आघात से त्रस्त मेघनाद घोर अट्टहास करता हुआ तिमिरमयी माया में प्रवेश कर गया । इसी स्वर से यह भी ज्ञात होता है कि क्या अन्तरिक्ष, क्या दिशाएं, क्या पृथ्वी कुछ भी स्पष्ट नहीं हो रहा है । जिस प्रकार दीपक के नष्ट हो जाने पर अन्धकार व्याप्त हो जाता है उसी प्रकार वानरसेना भी सर्पों द्वारा आच्छादित हो गई है । वेदना की व्यापकता से उनकी वाणी की शक्ति लुप्त हो गई है अतः वानर सेना कर्ण-परम्परा से अपनी दयनीय स्थिति का समाचार महाराज रामदेव तक पहुंचाती है ।

इस समाचार को सुनकर राम, लक्ष्मण से मेघनाद के आगमन के विषय में कहते हैं तथा उसकी दिव्य युद्धशक्ति, बाहुबल आदि का वर्णन करते हैं जिसकी देवता भी आकांक्षा रखते हैं। उसी समय सुग्रीव सूचना देते हैं कि नायकों सहित कपिसैनिक भूलुण्ठित हो रहे हैं। वानरसेना सर्पविष की ज्वाला से व्याकुल तथा पलायन करने में भी असमर्थ हो गई है, यह देख श्रीराम, सुग्रीव को उन्हें आश्वस्त करने के लिए निर्देश देते हैं। सुग्रीव माया से तिरोहित मेघनाद को खोजकर मार गिराने के लिए चले जाते हैं। दधिमुख यह समस्त वृत्तान्त विभीषण को बताने के लिए चला जाता है।

तभी नागपाश में बंधा हुआ सुग्रीव गिरता है। यहीं राम के कथन से ज्ञात होता है कि हनुमान्, अंगद तथा नल आदि वानरेश्वर भी बांध दिये गये हैं। इसी समय श्रीराम महागरुडास्त्र का सन्धान करते हैं तथा वानरसेना नागपाश से मुक्त हो जाती है। यहीं चतुर्थ अंक समाप्त हो जाता है।

पंचम अंक

पंचम अंक सर्वथा असम्बद्ध रूप से प्रारम्भ होता है। इस अंक के प्रारम्भ में माल्यवान् का प्रवेश होता है। माल्यवान् निःश्वास लेकर कहता है कि जीवन की अवधि क्षणिक कही गई है, किन्तु दैवदुर्दृष्ट राक्षसों में तो यह प्रत्यक्ष ही हो रही है।

उसी समय मय प्रवेश करता है। वह भी दुःखी स्वर में माल्यवान् का समर्थन करता है। यहां वह माल्यवान् से युद्ध की स्थिति बताते हुए राम के द्वारा गरुडास्त्र के सन्धान से वानरों के मुक्त होने तथा उन्हीं वानरों के द्वारा राक्षस वीरों के विजयोत्सव को ध्वस्त करने एवं उनके मशाल लेकर लंका में प्रवेश करने की सूचना देता है।

माल्यवान् मय के द्वारा राम-लक्ष्मण के लिए नर युगल शब्द का प्रयोग करने पर आपत्ति व्यक्त करता है । वह कहता है कि जिस नागास्त्र का देवता भी प्रतिकार नहीं कर सके, उसे तृण की भांति नष्ट करने वाले राम मनुष्य नहीं अपितु मनुष्य के रूप में अवश्य ही कोई तत्व हैं । वह राम को विष्णु का अवतार सिद्ध करने के प्रमाणस्वरूप शिव-धनुर्भंग, परशुराम पराजय तथा नागास्त्रभंग का वर्णन करता है । इसी प्रसंग में माल्यवान् मय से देवासुर संग्राम की भी चर्चा करता है । वह उस संग्राम में विष्णु के पराक्रम का स्मरण कर मूर्च्छित हो जाता है । मय भी विष्णु के नृसिंह रूप में हिरण्यकशिपु वध, वराह रूप में हिरण्याक्ष वध आदि की चर्चा करता है । इसी प्रसंग में वह समुद्र मन्थन के समय विष्णु के पक्षपात का भी स्मरण करता है, जिसमें उन्होंने समस्त महत्वपूर्ण वस्तुएं देवताओं को देकर, मोहिनी बनकर दैत्यों को वंचित किया था ।

इसके बाद मय माल्यवान् से पूछता है कि क्या उसके द्वारा रावण को समझाया नहीं गया । यह पूछने पर माल्यवान् बताता है कि रावण एक बार कहने पर तो सुनता ही नहीं, दो बार कहने पर मुख टेढ़ा कर लेता है, बार-बार विज्ञापित करने पर कुटिल भ्रुकुटी से देखता है इसीलिए उचित कथन करने वाला विभीषण निष्कासित कर दिया गया । मय विभीषण को कृतघ्न कहता है तब माल्यवान् बताता है कि रावण ने ही अवसर पाकर पुत्रप्रेम के पक्षपात से विभीषण को अपमानित करके निकाल दिया ।

मय और माल्यवान् बात कर ही रहे हैं कि इसी बीच एक पुरुष आकर माल्यवान् से कहता है कि प्रहस्त के वध से क्रोधित लंकेश्वर ने युद्धभूमि की ओर प्रस्थान करने से पूर्व, आदेश दिया है कि गोपुरों सहित लंका के प्राकार की सब तरफ से रक्षा की जाए तथा चिरकाल से सोये हुए कुम्भकर्ण को जगाकर, त्रिजटा आदि से रक्षित प्रमदवन में स्थित सीता की रक्षा की जाय । राजाज्ञा का पालन करने के लिए अनुचरों सहित यूपाक्ष

को कुम्भकर्ण को जगाने की आज्ञा देकर तथा राजमित्र महोदर को अशोकवन की रक्षा की आज्ञा देकर चला जाता है । माल्यवान् के समर वृत्तान्त के प्रति चिन्तित होने पर मय अपने द्वारा प्रदत्त अद्भुतदर्पण नामक मणि के द्वारा उसी स्थान पर समर वृत्तान्त ज्ञात करने के लिए कहता है तो माल्यवान् बताता है कि सुग्रीव के द्वारा रावण के फेंके गये मुकुटों से बिखरी हुई मणियों में से अद्भुतदर्पण नामक मणि, विभीषण के पास से श्रीराम के पास पहुंच चुकी है । दुःखी होकर मय कहता है कि न केवल अद्भुतदर्पण अपितु विश्वामित्रप्रदत्त दिव्यास्त्रतथा अगस्त्य के द्वारा दिया गया दिव्य धनुष भी राम के पास है । वह इन्हें राम का स्वाभाविक जयसूचक बताता है ।

इसी समय विद्युज्जिह्व वहाँ आता है । उससे ज्ञात होता है कि रावण ने उसे सीता को रावण के अनुकूल बनाने का उद्योग करने के लिए भेजा है । विद्युतज्जिह्व की सहायता के लिए रावण अपने नर्म सचिव महोदर को भी भेजता है । यही महोदर इस नाटक का विदूषक भी है । विद्युज्जिह्व महोदर के साथ प्रमदवनिका में प्रवेश करता है । यहाँ राक्षसियों के द्वारा रक्षित जानकी शिंशपा वृक्ष के नीचे बैठी हैं । प्रमदवन में पुरुषों का प्रवेश निषिद्ध है इसलिए विद्युज्जिह्व महोदर को भेजकर शूर्पणखा को बुलाना चाहता है । विद्युज्जिह्व की बात सुनकर महोदर रोषपूर्वक कहता है कि क्या वह पुरुष नहीं है । विद्युज्जिह्व कहता है, "आर्य आपके पुरुषत्व में क्या सन्देह है किन्तु महाराज रावण ने आपको राजस्त्रियों के दर्शन में अनियन्त्रित कर रखा है ।" यह सुनकर महोदर का क्रोध शान्त हो जाता है और वह शूर्पणखा को बुला लाता है ।

विद्युज्जिह्व शूर्पणखा को राम का मायानिर्मित कटा हुआ शीर्ष देकर सीता के पास भेजता है । शूर्पणखा सीता के पास आती है । इसके पूर्व सीता, सरमा से त्रिजटा के सम्बन्ध में वार्ता कर रही है । वह सरमा को समर वृत्तान्त ज्ञात करने के लिए गई हुई त्रिजटा का समाचार लेने के लिए भेजती है । तभी राम का शीर्ष लेकर शूर्पणखा सीता के पास पहुंचती है । वह सीता

से कहती है कि स्वामी रावण की विजय से तुम वृद्धि को प्राप्त हो रही हो । राम से पुनर्मिलन का तुम्हारा मनोरथ भंग हो चुका है । यह कहकर वह सीता को राम का कटा हुआ शीर्ष दिखाती है । उसे देखकर सीता मूर्च्छित हो जाती हैं । शूर्पणखा तथा अन्य राक्षसियाँ सीता को संज्ञालाभ कराने की चेष्टा करती हैं किन्तु असफल रहती हैं । राक्षसियाँ भय एवं क्रोधपूर्वक शूर्पणखा की भर्त्सना करती हैं तथा रावण से यह वृत्तान्त बताने चली जाती हैं ।

तभी त्रिजटा और सरमा राम के विजय-वृत्तान्त को सुनाने के लिए सीता के पास आती हैं । वहाँ सीता को मूर्च्छित देखकर उन्हें सीता के गाढ़ निद्रा में मग्न होने का भ्रम होता है किन्तु त्रिजटा कहती है कि यह तपस्विनी राम के विरह से लेकर आज तक सोयी ही नहीं अतः अवश्य ही यह मूर्च्छित है । इस विषय में उन्हें शूर्पणखा पर सन्देह होता है । त्रिजटा तथा सरमा के अनेक प्रयत्नों से भी जब सीता की मूर्च्छा भंग नहीं होती तब त्रिजटा सीता को उन्हीं के द्वारा बताई गई, गुप्त प्रणयवार्ता के प्रसंग को अभिज्ञानस्वरूप सीता को सुनाती है । इस प्रकार सीता की मूर्च्छा भंग होती है । त्रिजटा सीता को बताती है कि कटा हुआ सिर मायानिर्मित था ।

अब त्रिजटा सीता को राम का विजय-वृत्तान्त सुनाना चाहती है । सरमा उससे प्रत्यक्ष दिखाने का अनुरोध करती है । सरमा और त्रिजटा सीता को दारुपर्वत की आड़ में, शिंशपा वृक्ष के पीछे ले जाकर समर वृत्तान्त दिखाने का निश्चय करती हैं । यहीं पर पंचम अंक समाप्त हो जाता है ।

षष्ठ अंक

नेपथ्य स्वर से छठे अंक का प्रारम्भ होता है । इस स्वर से ज्ञात होता है कि त्रिजटा तथा सरमा सीता को उनके स्वामी राम का विजय महोत्सव दिखाना चाहती हैं तथा इस समय शूर्पणखा वहाँ पर नहीं है । तत्पश्चात् रावण का प्रवेश होता है । त्रिजटा की बात सुनकर रावण कहता है कि क्या त्रिजटा सीता को हमारा विजय महोत्सव दिखाना प्रारम्भ कर

रही है । रावण के साथ ही आने वाला महोदर उसके विचार का समर्थन करता है । रावण प्रसन्न होकर त्रिजटा तथा विद्युज्जिह्व के प्रयत्नों की प्रशंसा करता है । वह त्रिजटा द्वारा दिखाये जा रहे वृत्तान्त को देखकर, सीता को अपने प्रति आश्वस्त जानकर समर भूमि में राम को मारने की इच्छा व्यक्त करता है ।

रावण के इस वक्तव्य के पश्चात् राम एवं लक्ष्मण का प्रवेश होता है । राम, लक्ष्मण को अद्भुतदर्पण मणि के द्वारा रावण के क्रिया-कलाप ज्ञात करने का निर्देश देते हैं । लक्ष्मण देखकर बताते हैं कि रावण अन्तःपुर में विहार कर रहा है । इधर महोदर रावण को प्राणसंशयकारी युद्ध से विरत करने की चेष्टा करता हुआ उसे सुझाव देता है कि वह कोई मायानिर्मित सीता राम को दे दे, ऐसा करने पर उसे वास्तविक सीता जानकर राम लौट जाएंगे । इधर सीता भी राम के ससैन्य लौट जाने का समाचार सुनकर राम की पुनः प्राप्ति से निराश एवं असहाय होकर आपकी सेवा में निरत हो जायेगी । राम अद्भुतदर्पण मणि के द्वारा रावण एवं महोदर के समस्त आचरण देख रहे हैं । वे लक्ष्मण से महोदर की बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि यह समय पर राजा का अनुवर्तन कर रहा है तथा प्रकारान्तर से रावण को प्रबोधित भी कर रहा है कि सीता को लौटाये बिना उसका जीवित रहना सम्भव नहीं है ।

इधर महोदर के द्वारा मायानिर्मित सीता को लौटाने की सलाह सुनकर रावण क्रोधित हो जाता है । महोदर उसे समझाता है कि मात्र सीता को लौटा देने से ही सन्धि करके वह अबाध रूप से पूर्ववत् इच्छापूर्वक विहार कर सकता है । इस प्रकार राम की मित्रता भी प्राप्त कर सकता है । रावण महोदर की मन्त्रणा की प्रशंसा करता है किन्तु उसे विभीषण को लेकर शंका है क्योंकि विभीषण राम का मित्र है तथा राम उसे लंका का राजा बनाने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं । महोदर इस समस्या का यह समाधान बताता है कि सीता को प्रत्यर्पित करते समय

अन्य शर्त यह रखी जाए कि राम सिंहल राज्य को छोड़कर अपने द्वारा अंगीकृत किसी अन्य राज्य में विभीषण को अभिषिक्त कर दें। रावण इस सुझाव का अनुमोदन तो करता है किन्तु उसे विभीषण के द्वारा राज्य में हिंसा फैलाए जाने की आशंका है। इस प्रकार वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि जो होना था वह हो चुका। इसलिए वह सीतानुरंजन को ही एकमात्र ध्येय बना लेता है। वह महोदर से कहता है कि वह उसका, त्रिजटा तथा सरमा एवं विद्युज्जिह्व का प्रयास देखेगा।

महोदर अपवारित करके कहता है, "सैकड़ों विद्युज्जिह्व, नियुत सरमा और त्रिजटा भी सीता को अकार्य में प्रवृत्त नहीं कर सकते हैं।" यह सुनकर लक्ष्मण, राम से कहते हैं कि आर्या सीता के प्रति इसका सुचिरनिष्पादित बुद्धिनिष्कर्ष सुनिए। इधर रावण एवं महोदर शिंशपा वृक्ष के पास पहुंच जाते हैं। वहां सीता को न देखकर उद्विग्न रावण उन्मत्त सा प्रलाप करता हुआ, अशोकवनिका की ओर चल देता है। वहां उसे सीता नहीं दिखाई देती। इसी बीच महोदर दारुपर्वत के पीछे कुछ शब्द सुनता है और वे दोनों उधर ही चल देते हैं। इधर लक्ष्मण मणि के द्वारा उन दोनों को जाते हुए देखते हैं।

इसी बीच राम विकल होकर पूछते हैं कि क्या सीता दिखाई दी। लक्ष्मण विचार करते हैं कि आर्य को आर्या सीता दिखाई जानी चाहिए अथवा नहीं। फिर सीता के स्मरण से मोहित राम को वे आश्वस्त करते हैं। यहांउधर महोदर रावण को क्रीडापर्वत की ओर ले जाता है। लक्ष्मण रावण की इस विचित्र गतिविधि को देखकर कहते हैं, "इसकी वीरता विलक्षण है, जो शत्रु के उपस्थित रहने पर भी निःशंक होकर क्रीडासक्त है।" राम कहते हैं कि ऐसा नहीं है, अवश्य यहां इसका शस्त्रागार अथवा महान मन्त्रों-तन्त्रों एवं माया का साधन स्थान होगा।

इधर रावण कामवेग की पीड़ा को व्यक्त करता है तथा राम के बाणवेग की उपेक्षा करता है। महोदर कहता है कि जब राम सरलतापूर्वक पकड़े जा सकते हैं तो उन्हें पकड़ा क्यों नहीं जाता। इस पर रावण बताता है कि वह राम को सीता की अपेक्षा से उपेक्षित कर रहा है। महोदर रावण का समर्थन करता है। वह कहता है कि विद्युज्जिह्व के द्वारा राम का मायानिर्मित शीर्ष दिखाने मात्र से ही जब सीता संज्ञाशून्य हो गई थी तो राम के जीवित न रहने पर वह स्वयं ही प्राण त्याग देगी। यह देख लक्ष्मण रावण को मोहान्ध कहते हैं क्योंकि प्रत्यक्ष निन्दा किये जाने पर भी वह उससे अनभिज्ञ है।

महोदर के यह कहने पर कि राम के जीवित रहते सीता रावण के प्रति आकर्षित नहीं होगी, रावण हंसकर कहता है कि उसने संसार की बन्दीकृत स्त्रियों को, जिनमें पतिव्रताएं भी थीं वशीभूत कर लिया है। महोदर, रावण के प्रति उन्हें अनुरक्त करने में अपने योगदान का भी स्मरण कराता है। रावण कहता है, इसीलिये, "तुम यहां भी नियुक्त किए गए हो"। रावण की बात सुनकर महोदर अपवारित करके रावण के प्रति सीता की अनुरक्ति, तिमिर और चन्द्रिका के मिलन के समान असम्भव बताता है। वह रावण को सलाह देता है कि रावण बलपूर्वक सीता को वशीभूत करे। क्योंकि रावण कई बार ऐसा कर चुका है। इस प्रसंग में रावण एवं महोदर की वार्ता से ज्ञात होता है कि बलपूर्वक रम्भाभिसार के कारण नलकूबर के द्वारा दिये गए शाप के अनुसार यदि रावण किसी अनासक्त स्त्री से बलपूर्वक रमण करेगा तो उसका सिर सहस्र भागों में विभक्त हो जायेगा। यहीं पर रोती हुई पुंजिकस्थला से बलात्कार करने वाले रावण को ब्रह्माजी द्वारा शाप दिये जाने की भी चर्चा हुई है। इन्हीं कारणों से रावण सीता पर बल प्रयोग नहीं कर सकता था।

यह सुनकर राम निःश्वास लेकर कहते हैं," मैं सीता को पहले से ही जानता हूं और उसे देख भी रहा हूं, लेकिन संसार के हृदय

में क्या है मुझे तो इस बात की चिन्ता है ।" इधर रावण का मुकुट वृक्ष की शाखाओं में फंस गया और उन्हें ठीक कर,वह पुनः विविध उपायों से किये जा रहे सीतावर्जन के उद्योग को देखकर तत्पश्चात युद्ध में सुग्रीव को मारकर समर वृत्तान्त समाप्त करने की बात कहता है । रावण की बात सुनकर राम कहते हैं कि हमें भी इसके निकलने की प्रतीक्षा करते हुए, युद्ध की धुरी को धारण करने वाले वानर यूथपों को उत्साहित करना चाहिए । लक्ष्मण कहते हैं कि हम शर से काटकर आगे फेंके गए मेघनाद एवं कुम्भकर्ण के सिरों के द्वारा, इस अन्तःपुर-विहारी से समर वृत्तान्त आवेदित करेंगे । यहीं पर छठा अंक पूर्ण हो जाता है ।

सप्तम अंक

सप्तम अंक का प्रारम्भ लक्ष्मण के ओजस्वी सम्भाषण से होता है । यहां ज्ञात होता है कि वे कुम्भकर्ण तथा मेघनाद का सिर काटकर अन्तःपुर विहारी रावण के सम्मुख डाल देना चाहते हैं । राम, लक्ष्मण से पुनः मणि के द्वारा रावण का कार्यव्यापार ज्ञात करने के लिए कहते हैं । मणि से ज्ञात होता है कि रावण तथा महोदर अशोकवनिका में प्रवेश कर रहे हैं । महोदर रावण को राम का रूप धारण कर सीता को छलने की सलाह दे रहा है । रावण महोदर से बताता है कि उसने यह प्रयत्न तो किया था किन्तु राम का रूप बनाने में असफल रहा । इसी प्रसंग में महोदर के द्वारा ज्ञात होता है कि रावण की स्त्रियों ने भी सीता का वेश बनाकर, रावण को आकर्षित करने की चेष्टा की थी किन्तु वे भी अपने प्रयत्न में असफल रहीं । राम सीता के पातिव्रत्य की प्रशंसा करते हैं । यह होने पर भी वे लोकापवाद की आशंका से भी ग्रस्त हैं ।

इधर रावण तथा महोदर सीता को त्रिजटा तथा सरमा

के साथ वार्तालाप करते देखकर छिपकर उनकी बातें सुनते हैं। यहां सीता, त्रिजटा से युद्धवृत्तान्त दिखाने का अनुरोध करती हैं। त्रिजटा सरमा को मायारूपक की पीठमर्दिका बनने तथा सीता को विभिन्न रसों में पर्यवस्थित करने का निर्देश देती है। रावण, महोदर, राम तथा लक्ष्मण सभी अग्रिम वृत्तान्त देखने के लिए कौतूहलपूर्वक सनद्ध हो जाते हैं।

<u>माया नाटिका</u>

यहां से मायानाटिका प्रारम्भ हो जाती है जिसमें त्रिजटा अपनी मायावी शक्ति से अब तक हुए युद्ध के दृश्यों को प्रस्तुत करती है। नाटिका में सर्वप्रथम माया-लक्ष्मण का प्रवेश होता है। उनके द्वारा ज्ञात होता है कि मेघनाद रणभूमि से पलायन कर गया है। नाटिका में माया-लक्ष्मण राम के द्वारा मेघनाद को भगा दिये जाने से तथा अपनी रण-तृष्णा शान्त न होने के कारण खिन्नता का अनुभव करते हैं।

नाटिका में मेघनाद के पलायन की बात सुनकर रावण त्रिजटा पर क्रोधित होता है क्योंकि वह रावणपक्ष का अपकर्ष दिखा रही है। सीता मेघनाद के मुक्त होने की बात सुनकर दुःखी हो जाती है। नाटिका में माया-लक्ष्मण भागते हुए मेघनाद तथा अन्य राक्षसों को युद्ध के लिये ललकारते हैं। यहां उनकी उक्ति से ज्ञात होता है कि राम ने राक्षसों के समूल नाश का प्रण किया है। यहीं पर नाटिका में माया राम का प्रवेश होता है। इसी समय नाटिका के नेपथ्य स्वर से ज्ञात होता है कि राम रावण से युद्ध करने के लिये व्यग्र हो रहे हैं। इसे सुनकर प्रकृत-रावण राम को युद्ध में देख लेने की बात कहता है।

नाटिका में विकृत-राम माया-लक्ष्मण से भागते हुए शत्रुओं पर प्रहार करने से रोकते हैं। इधर नाटिका में विकृत-लक्ष्मण कहते हैं कि युद्ध न करने वाले रावण पर यदि शस्त्र नहीं ग्रहण किया जायेगा तो वह बिना

युद्ध के ही विजयी हो जायेगा । यह सुनकर विकृत राम समस्त यूथपों को सेना सहित लंका को पीड़ित करने का आदेश देते हैं । नाटिका में दिये गए आदेश को सुनकर महोदर भयभीत हो जाता है । तब रावण उसे धैर्य बंधाते हुए अपने भुजबल की प्रशंसा करता है । यहां राम भी उसके पराक्रम की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि अपने भुजबल के कारण ही यह त्रैलोक विजयी है ।

नाटिका में विकृत-राम आगे कहते हैं कि स्वजनों को वानरों से पीड़ित देखकर रावण युद्ध के लिये बाहर निकल पड़ेगा । इस वृत्तान्त को देखकर सीता प्रसन्नता व्यक्त करती है । प्रसन्नता से खिले हुए सीता के मुख को देखकर रावण स्वयं का मायाजन्य वध दिखाकर सीता के मुख पर पूर्ण प्रसाद देखने की इच्छा व्यक्त करता है । रावण की यह अभिलाषा सुनकर प्रकृत-लक्ष्मण उसका वास्तविक वध करने की वीरोचित भावना व्यक्त करते हैं । इसी बीच नेपथ्य से रावण की वीरता एवं प्रभाव को व्यक्त करने वाले चारण-गीत का स्वर सुनाई देता है । इससे ज्ञात होता है कि रावण ने देवाधिपतियों, मर्त्याधिपतियों, नागेशों तथा दानवाधीश्वरों की स्त्रियों का हरण कर उनके साथ स्वच्छन्द विहार किया था । इसे सुनकर प्रकृत-लक्ष्मण रावण को पौलस्त्य कुल कलंक तथा निर्लज्ज कहते हैं । सीता भी उसके इन आचरणों को सुनकर घृणा व्यक्त करती हैं ।

इधर सरमा मायानाटिका को आगे बढ़ाती है । इसमें रावण के रणभूमि में प्रवेश का संकेत प्राप्त होता है । यहां ज्ञात होता है कि उसने आते ही सुग्रीव, अंगद, हनुमान्, जाम्बवान् आदि महान योद्धाओं को परास्त कर राम एवं लक्ष्मण की ओर बढ़ना प्रारम्भ कर दिया है । रावण के इस प्रकार के आगमन का वृत्तान्त सुनकर माया-लक्ष्मण, माया-राम से कहते हैं, "यद्यपि रावण-वध की प्रतिज्ञा आपने की है तथा मैं आपके प्रतिज्ञा-निर्वाह के व्रत को भी जानता हूं तथापि इसे देखकर चिरकाल की युद्धाभिलाषा से मेरे हाथ सहसा ही धनुष-बाण पर विचरण कर रहे हैं ।"

अब मूल नाटक में राम,लक्ष्मण को रावण के अग्रिम आचरणों को देखने का निर्देश देकर स्वयं वानर-सेना को उत्साहित करने चले जाते हैं । इधर महोदर रावण से समस्त शेष वृत्तान्त देखने को कहता है । रावण गुप्तचरों के द्वारा समर-वृत्तान्त ज्ञात करना चाहता है । लक्ष्मण रावण की समर जिज्ञासा देखकर उसके सामने मेघनाद तथा कुम्भकर्ण के शीर्ष गिराकर उसे समर वृत्तान्त बताना चाहते हैं । यहीं पर सप्तम अंक का समापन होता है ।

अष्टम अंक

अंकावतार के साथ अष्टम अंक का प्रारम्भ होता है । अंक में प्रथम प्रवेश लक्ष्मण का है । लक्ष्मण पूर्वोक्त कथन को ही दुहराते हैं जिसमें कुम्भकर्ण एवं मेघनाद के शिरोकर्तन के द्वारा रावण को रणकर्म से अवगत कराने की आकांक्षा व्यक्त करते हैं । तत्पश्चात् लक्ष्मण,राम के निर्देश पर मणि के माध्यम से रावण तथा महोदर के आचरण देखते हैं । महोदर तथा रावण अशोक वाटिका में ही हैं तथा त्रिजटा एवं सरमा द्वारा दिखाई जाने वाली नाटिका का अद्धांश देखने के लिये उत्सुक हैं ।

नाटिका में नेपथ्य से सूचना प्राप्त होती है कि राम एवं लक्ष्मण की ओर रावण आ रहा है । सूचना पाकर माया-लक्ष्मण उसकी सेना का उन्मूलन करने चल पड़ते हैं तथा विकृत-राम रावण को ललकारते हैं । यहां नाटिका में विकृत-रावण का प्रवेश होता है । वह नायकों सहित वानर-सेना को पलायन करते देख विकट अट्टहास करता है । उसके कथन से ज्ञात होता है कि त्रैलोक्य विजय के पश्चात् उसे माया-प्रदर्शन का अवसर ही नहीं मिला क्योंकि तब से लेकर आज तक उसके द्वारा मात्र शस्त्र सन्धान करते ही युद्ध शान्त हो जाता है । माया-रावण माया-राम को देखकर उन्हें इच्छानुसार युद्ध करने के लिये ललकारता है । इस प्रसंग को देखकर सीता भयभीत हो जाती हैं तब सरमा उन्हें

समझाती है कि यह सब माया है ।

उधर नाटिका में राम एवं रावण के यु.. को देखकर विकृत-लक्ष्मण भ्राता के शौर्य की प्रशंसा करते हैं । यहां ज्ञात होता है कि राम रावण के तीनों दण्ड, चारों अश्व, सारथि, धनुष तथा बाण तथा उसके किरीटों का उच्छेद कर रहे हैं । आगे शत्रु के प्रति राम का औदार्य वर्णित करते हुए विकृत-लक्ष्मण कहते हैं कि आर्य एक बाण से रावण के हृदय-मर्म का वेधन करके गिरते हुए रावण को धनुष की कोटि का अवलम्बन दे रहे हैं । इसके बाद ही यथावर्णित अवस्था वाले राम एवं रावण मंच पर प्रवेश करते हैं । विकृत-रावण को आश्वस्त देखकर विकृत-राम उससे कहते हैं कि यदि वह यु..जनित श्रम से खिन्न न हुआ हो तो पुनः धनुष उठाकर अपनी वीरता का प्रदर्शन करे । इस पर रावण राम के साथ भुजाओं से युद्ध करने की ही इच्छा व्यक्त करता है ।

विकृत-राम उससे कहते हैं कि वानर-सेना के अवमर्दन से वह परेशान हो चुका है अतः आज वह लौट जाए तथा दूसरे दिन वे एक दूसरे को देखेंगे । वास्तव में राम अपरिश्रान्त रावण से युद्धाभिलाषी हैं । तत्पश्चात् माया-लक्ष्मण का आगमन होता है । वे रावण को मुक्त कर दिए जाने से अमर्षयुक्त हैं । लक्ष्मण के क्रोध को देखकर सीता को प्रसन्नता होती है किन्तु रावण को दण्डित किये जाने में होने वाले विलम्ब से वें दुःखी भी हैं । सरमा सीता को सान्त्वना देती है कि क्रमपूर्वक ही होगा ।

सरमा की बात सुनकर रावण क्रोधित हो जाता है । तभी मायानाटिका में माया-लक्ष्मण के द्वारा ज्ञात होता है कि रावण को पकड़ने का उद्योग किया जा रहा है । लक्ष्मण उसकी दो या तीन भुजाएं तथा शीर्ष काटकर कारागृह में उसे डाल देना चाहते हैं जिससे राम उसे उचित दण्ड दे सकें । इस दृश्य को देखकर रावण का क्रोध चरमसीमा पर

पहुंच जाता है । वह त्रिजटा और सरमा का वध करने को उद्यत हो जाता है किन्तु महोदर उसे ऐसा करने से रोक देता है तथा अग्रिम वृत्तान्त देखने के लिये कहता है ।

इधर माया-राम, माया-लक्ष्मण को समझाते हैं कि परशुराम तथा जयन्त के परास्त हो जाने के पश्चात् उनसे युद्ध करने योग्य कोई शत्रु शेष नहीं रहा और अब यह भाग्य से प्राप्त हुआ है, उसे श्रान्तावस्था में दृष्टिपात मात्र से मार देंगे तो उनके युद्ध-कौशल को कौन जानेगा । नाटक के माध्यम से राम का रण के ही प्रति कौतूहल देखकर सीता अपनी उपेक्षा का अनुभव करती हैं ।

इधर मायानाटिका में माया-लक्ष्मण हंसकर कहते हैं," अच्छा तो आर्य इस दशानन के साथ उसी प्रकार क्रीडा करना चाहते हैं जैसे गरुड सर्प-शिशु के साथ तथा गज मार्जार-शिशु के साथ करता है ।" यहां माया-नाटिका समाप्त हो जाती है ।

अब मुख्य नाटक में त्रिजटा प्रवेश करती है । सीता हर्ष से त्रिजटा का आलिंगन कर लेती हैं तथा रावण का वर्तमान क्रियाकलाप जानना चाहती हैं । त्रिजटा दुःख व्यक्त करती है कि राम ने हाथ में आये दुष्ट को भी छोड़ दिया । त्रिजटा की बात सुनकर क्रोधित रावण राम-लक्ष्मण के वध से पूर्व, त्रिजटा और सरमा के वध के लिये टूटा हुआ चैत्यस्तम्भ उठाता है । रावण की प्रतिक्रिया देखकर लक्ष्मण कहते हैं कि कुम्भकर्ण तथा मेघनाद के वध के द्वारा रावण को युद्ध की सूचना देने का यही उपयुक्त अवसर है ।

अभी रावण चैत्यस्तम्भ उठाना ही चाहता था कि नेपथ्य से कुम्भकर्ण तथा मेघनाद के युद्धभूमि में प्रवेश की सूचना प्राप्त होती है । अभी उनके रण-प्रवेश की सूचना मिली ही थी कि राम के हाथों कुम्भकर्ण तथा

लक्ष्मण के द्वारा मेघनाद के वध की सूचना प्राप्त होती है । इन दुःखद समाचारों को सुनकर शोकाकुल रावण मूर्च्छित हो जाता है । मूर्च्छा टूटती है तो कहता है कि जब दोनों पुत्र ही मुझे छोड़ गये तो इस राज्य, इन प्राणों अथवा सीता के प्राप्त होने से ही क्या लाभ है । रावण के इन निराश वचनों को सुनकर महोदर उसे सान्त्वना देता है और कहता है कि सम्भवतः उनके अन्तःपुर विहार को न सहन कर सकने के कारण वानरों ने ही यह असत्य समाचार दिया है ।

इसे सुनकर रावण को कुछ सान्त्वना मिलती है और वह शीघ्र ही रणभूमि में जाने के लिये तत्पर हो जाता है । यहाँ अष्टम अंक का समापन हो जाता है ।

नवम अंक

लंकापुर की अधिष्ठात्री देवी "लंका" तथा मेघनाद के दुर्ग की अधिष्ठात्री देवी "निकुम्भिला" के प्रवेश के साथ नवम अंक का प्रारम्भ होता है । लंका निकुम्भिला को बुलाती है । लंका को देखकर निकुम्भिला उससे पूछती है कि वह कहाँ जा रही है । लंका बताती है कि वह वानरों के द्वारा लंकादहन की घटना बताने के लिये पितामह ब्रह्मा के पास गई थी । तत्पश्चात् वह पितामह के द्वारा दिये गए किसी आश्वासन को निकुम्भिला के कान में बताती है जिसे सुनकर निकुम्भिला मूर्च्छित हो जाती है । शोक-संतप्त होकर वह कहती है कि तब तो वे दोनों शून्यारण्य हो जायेंगी । लंका उसे सान्त्वना देती है कि ऐसा नहीं होगा, महाराज राम विभीषण को प्रजापालन हेतु राज्याभिषिक्त करेंगे । लंका निकुम्भिला को समझाती है कि अब उन दोनों को तथा वध से बचे हुए राक्षसों को यथा राजा तथा प्रजा की नीति का अनुसरण करते हुए सौम्य हो जाना चाहिए ।

लंका स्वयं इतनी विनम्र हो जाती है कि वह मिथिला, किष्किन्धा

आदि नगरियों के साथ मैत्रीभाव के साथ ही अयोध्या के प्रति दासीभाव से रहना भी स्वीकार कर लेती है । उसका यह विचार निकुम्भिला को नहीं अच्छा लगता । वह समर वृत्तान्त जानकर ही ऐसा निर्णय लेने की सलाह देती है ।

तभी नेपथ्य-स्वर से ज्ञात होता है कि एक-एक कपि को कहीं एक, कहीं दो तो कहीं तीन, चार क्रोधित रावण घेरे हुए हैं । अपनी जगन्मोहिनी माया के प्रभाव से यूथपतियों को पांच-छः, सुग्रीव एवं अंगद को सात-आठ, लक्ष्मण को सौ तथा राम को तो असंख्य रावण घेरे हुए हैं । तभी एक-एक रावण को असंख्य-असंख्य राघवों के द्वारा मर्दित किये जाने की सूचना प्राप्त होती है । लंका से ज्ञात होता है कि राम ने रावण की माया समाप्त कर दी है । उन्होने रथ के मार्ग को रोक दिया है तथा पैदल ही आ रहे हैं । इसी समय एक तीव्र प्रकाश से लंका तथा निकुम्भिला की आंखें चौंधिया जाती हैं । लंका के द्वारा ज्ञात होता है कि यह प्रकाश इन्द्र के भेजे हुए, राम के आरोहण हेतु दिव्य रथ का है जिसका सारथि मातलि है ।

इन्द्र के इस साहस को देखकर निकुम्भिला को अपने स्वामी इन्द्रजेता कुमार मेघनाद का स्मरण हो आता है । वह असहाय होकर रो पड़ती है । लंका उसे नीतिपूर्ण वाक्यों से सान्त्वना देती हुई कहती है, "नये राजा के आने से राजधर्म भी परिवर्तित हो जाता है । अतः राज्यानुवर्तिनी हमको अपनी सीमा के साथ ही प्रजा का पालन करना चाहिए ।" वह निकुम्भिला को पूर्व का स्मरण कराती हुई कहती है, "कुबेर के शासन काल में जो हमारी स्थिति थी वह रावण के राज्य में हम भूल गये । इसी प्रकार धर्मभूषण विभीषण के द्वारा पालित होकर हम अपना विषाद विस्मृत कर देंगी ।"

इसी समय नेपथ्य स्वर को सुनकर लंका कहती है कि राम-रावण

का शीर्षच्छेद कर रहे हैं किन्तु आश्चर्यजनक रूप से वे शीर्ष पुनः उत्पन्न हो रहे हैं। इधर रावण भी क्रोधित होकर बड़े-बड़े शस्त्रास्त्रों का प्रयोग कर रहा है। राम उसके समस्त आयुधों को विफल कर रहे हैं और अचानक उन्होंने शत्रु के हृदय पर ब्रह्मास्त्र का प्रहार कर दिया तथा रावण मारा गया। यह घटना देखकर निकुम्भिला मूर्च्छित हो जाती है। इसी समय नेपथ्य स्वर से ज्ञात होता है कि राम ने पूर्ण युद्धविराम की घोषणा कर दी है। स्कन्धावार, नगर आदि समस्त स्थानों से स्वतन्त्र विचरण पर लगा प्रतिबन्ध हटा दिया गया है। वे लंका में पूर्ववत् प्रसन्नता की कामना कर रहे हैं। यह सुनकर लंका प्रसन्नता से निकुम्भिला का आलिंगन कर लेती है।

तभी नेपथ्य स्वर से विभीषण के राज्याभिषेक-उत्सव की सूचना मिलती है तथा कहा जाता है कि समस्त प्रजाजन हिंसा तथा वैर का त्याग कर, सौम्यता एवं शीलगुण को धारण करें क्योंकि जैसा राजा, वैसी ही प्रजा होती है। तत्पश्चात् नेपथ्य पात्र के द्वारा ही, युद्ध में नष्ट हुए प्राकार, उपवन, गृह, वीथिका आदि के पुनर्निर्माण की आज्ञा दी जाती है। लंका निकुम्भिला से कहती है कि अब उन्हें देवी सीता के समक्ष जाना चाहिए क्योंकि राक्षसों का जीवन अब सीता के ही आधीन है।

तभी नेपथ्य से आज्ञा दी जाती है कि लंका वेत्रधारकों के आगे चलते हुए शीघ्रतापूर्वक सभी जनों को हटाएं, निकुम्भिला चारों ओर की भीड़ को नियन्त्रित करें तथा देवी सीता के शिविका में आरूढ़ होने पर त्रिजटा तथा सरमा दोनों ओर से आलम्बन देकर उनकी रक्षा करें।

इसी समय लंका विचार करती है कि विभीषण से समस्त नागरिक आश्वस्त हैं किन्तु यह ज्ञात नहीं हो रहा है कि पुत्री को

खिन्न देखकर मय क्या करेगा। निकुम्भिला कहती है, "इस समय रावण के पक्षपात से पूर्ण हम दोनों का संवाद अपराध ही है। इसलिए अब सीतादेवी के पास चलना चाहिए।" दोनों चली जाती हैं। यहीं नवम अंक का समापन हो जाता है।

दशम अंक

अंक के प्रारम्भ में शोककातर मय का प्रवेश होता है। वह रोते हुए कहता है कि राम के द्वारा राक्षसों का अवान्तर प्रलय कर दिया गया है। इसलिए यदि उसने आज किसी प्रकार प्रतिकार नहीं लिया तो उसकी समस्तगहना माया तथा जीवन भी व्यर्थ होगा। उसी समय राम के वृत्तान्त को जानने के लिए भेजी गई शूर्पणखा वहाँ आती है। मय उससे पूछता है कि क्या प्रतिविधान के लिए कोई मार्ग है, तो वह निराशा व्यक्त करती है। सीता को ही समस्त संहार का कारण मानकर मय उसी से प्रतिशोध लेना चाहता है। इस पर शूर्पणखा बताती है कि सीता के प्रति अहित आचरण का समय नहीं रहा। वह सीता के सुरक्षा प्रबन्ध के विषय में भी बताती है।

मय फिर भी सीता से राम का वियोग कराने का निश्चय करता है। इस कार्य की योजना के लिए वह सर्वप्रथम राम एवं लक्ष्मण के कार्यकलाप जानना चाहता है। शूर्पणखा बताती है कि उसने राम-लक्ष्मण को तो नहीं देखा किन्तु उनके परिजनों की वार्ता सुनी है। वह आगे कहती है कि राम, सीता के शत्रु के घर निवास करने के कारण उसके प्रति शंकित हैं तथा उनका अनुराग भी मन्द पड़ गया है। इसीसे लज्जित एवं कुण्ठित होकर कहीं छिप गये हैं। यह सुनकर मय शूर्पणखा को अपनी योजना से अवगत कराता है कि वह राम बनकर सीता को जनसभा के सम्मुख, परगृहवास का अभियोग लगाकर त्याग देगा। इस प्रकार नवीन अपमान सहन करने में असमर्थ होकर दुःखी सीता या तो समुद्र में प्रवेश कर जाएगी

अथवा अग्नि में प्रविष्ट हो जाएगी ।

इसके पश्चात् ही राम के द्वारा परित्यक्ता सीता के अग्नि में प्रवेश कर, अपना शरीर त्याग देने की सूचना प्राप्त होती है । यह देखकर सरमा तथा त्रिजटा मूर्च्छित हो जाती हैं । तभी मय विस्मयपूर्वक शूर्पणखा को दिखाता है कि जो अग्नि पाषाण एवं जल को भी अप्रतिहत गति से आक्रान्त कर लेता है, वही सीता के प्रति कुण्ठित हो गया है । शूर्पणखा भी यह देखकर आश्चर्य व्यक्त करती है । अपने षड़यन्त्रों में विफल होकर मय कहता है कि अब उन्हें विभीषण का ही अनुसरण करना चाहिए क्योंकि वही राक्षसकुल का राजा है । यह कहकर शूर्पणखा के साथ मय चला जाता है ।

इसी समय नेपथ्य से अग्नि का स्वर सुनाई देता है । उनसे ज्ञात होता है कि वे स्वयं, मुनियों तथा देवताओं के समक्ष सीता को राम के लिए प्रदान कर रहे हैं । इसके बाद ही राम, लक्ष्मण, सुग्रीव एवं विभीषण का आगमन होता है । राम भ्राता एवं मित्रों से कहते हैं कि यद्यपि वे सीता के महान सतीत्त्व को जानते हैं तथापि त्रैलोक्य के जन-समुदाय की शंका का निवारण करने के लिये इस सभा में स्वयं अग्निदेव सीता को उन्हें प्रदान कर रहे हैं । इधर विभीषण, सरमा एवं त्रिजटा को आश्वस्त करते हैं । वे दोनों सीता को अग्निदेव के उत्संग में देखकर हर्ष व्यक्त करती हैं ।

तदनन्तर नेपथ्य से दशरथ का स्वर सुनाई देता है । वे राम को आज्ञा देते हैं कि राम, ऋषिगणों के द्वारा अनुमोदित अग्निदेव की वाणी पर शंका न करते हुए, सीता के साथ अभिषेकोत्सव को पूर्ण करें । वे पुनः राम की प्रशंसा करते हैं कि उन्होंने पिता के सत्य को अच्युत रखने के लिये जो दुःख सहन किये उसीके कारण पिता को सुरेन्द्र के आसन पर आधा भाग प्राप्त हुआ है । तदनन्तर वे अभिषेकोत्सव के द्वारा, माता के कारण

चिरकाल से प्राप्त अपवाद से ग्रस्त भरत को उबारने के लिये कहते हैं ।

इसके बाद दशरथ सीता और लक्ष्मण की भी प्रशंसा करते हैं साथ ही भरत एवं शत्रुघ्न को भी प्रशंसनीय बताते हैं । यहां दशरथ के द्वारा ज्ञात होता है कि भरत राम की पादुकाओं पर सम्पूर्ण राज्यभार निवेशित करके, पवित्र साधुवेशधारी शत्रुघ्न के साथ तपस्वी बनकर, राम की आराधना करते हुए सम्पूर्ण राज्य का विधिवत पालन कर रहे हैं । पिता के वचनों को सुनकर राम पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर राज्य पालन के लिए सहमत हो जाते हैं । किन्तु वे राज्य को भाइयों की ही सम्पत्ति मानते हैं । दशरथ राम को आशीर्वाद देकर चले जाते हैं ।

तभी लक्ष्मण आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहते हैं, "इन्द्रादिकों के द्वारा वर प्रदान किये जाने पर ये मृत वानर मानो सोकर उठ रहे हैं । तथा उनके वे अंग भी जो पक्षियों के द्वारा उठा लिये गए हैं और श्वानों के द्वारा ग्रास बना लि ग हैं, वे अपने-अपने शरीरों में आकर स्वयं ही मिल रहे हैं । "

विभीषण राम को कुबेर का पुष्पक विमान देते हैं जिसका रावण के द्वारा हरण कर लिया गया था । राम सहर्ष भाई एवं सीता के साथ विमानारूढ़ होते हैं । वे सरमा और त्रिजटा को भी साथ ले लेते हैं । इसके बाद श्रीराम के अयोध्या में प्रवेश, माताओं, मन्त्रियों तथा बान्धवों की प्रसन्नता की सूचना प्राप्त होती है ।

इधर लक्ष्मण, सपत्नीक तथा सबान्धव विभीषण, सुग्रीव, गुह आदि को राम का अभिषेक महोत्सव देखने के लिए आमन्त्रित करते हैं । नेपथ्य से अग्निदेव का स्वर सुनाई देता है । वे राम के राज्याभिषेक के अवसर पर उन्हें कुछ प्रदान करना चाहते हैं । पूर्णकाम राम कहते हैं कि उनकी समस्त अभिलाषाएं पूर्ण हो चुकी हैं । भरतवाक्य के साथ ही नाटक का अन्तिम अंक दशम अंक पूर्णता को प्राप्त होता है ।

अद्भुतदर्पणम् नाटक के विविध स्रोत

कोई भी साहित्यकार देश और काल की सीमाओं में ही अपनी साहित्य-साधना करता है । उसकी साहित्य-साधना में पूर्ववर्ती आचार्यों, कवियों और साहित्यकारों की कृतियों का प्रभाव स्वतः संक्रान्त हो उठता है । यही कारण है कि रामकथात्मक किसी भी रचना का प्रणयन करने वाले, प्रत्येक कवि ने रामकथा के आदि गायक महाकवि बाल्मीकि का यशोगान अवश्य किया है । भवभूति जब उत्तररामचरितम् की नान्दी में लिखते हैं, "इदं कविभ्यः पूर्वेभ्यो नमावाकं प्रशास्महे" तो उनका भी पूर्वकवियों के प्रति आदर ही व्यक्त होता है ।

उच्चकोटि का साहित्य जिस प्रकार सामान्य समाज को प्रभावित करता है, उसी प्रकार अगली पीढ़ी में जन्म लेने वाले रचनाकारों को भी । उनके कथानक, सन्दर्भ और शैली भी कभी-कभी रचनाकार को इतना प्रभावित कर देते हैं कि रचनाकार न चाहते हुए भी अपनी रचनाओं में स्वभावतः उनका प्रभाव ग्रहण कर लेता है । संस्कृत के अनेक प्राचीन कवियों में भी पूर्ववर्ती कवियों की स्पष्ट झलक मिलती है । दिङ्नाग कृत नाटक "कुन्दमाला" का सम्पूर्ण कथानक भवभूति के "उत्तररामचरितम्" से प्रभावित है, तो मुरारि कृत "अनर्घ राघवम्" भवभूति के ही "महावीरचरितम्" पर निर्भर है । इन्हीं के समान हमारे आलोच्य कवि महादेव की रचना "अद्भुतदर्पणम्" भी अपने पूर्ववर्ती अनेक नाटककारों की रचनाओं से प्रभावित प्रतीत होती है ।

अद्भुतदर्पणम् पर पूर्ववर्ती रचनाओं का प्रभाव अनेक रूपों में दृष्टिगत होता है, जैसे-शैलीगत प्रभाव, पात्रचरित्रांकन व कथानक पर प्रभाव आदि । इस नाटक पर भट्टनारायण कृत "वेणीसंहार" नाटक का तो बहुआयामी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है ।

नाटक के प्रारम्भ में ही अंगद को दूत बनाकर लंका में भेजे जाने के कारण असन्तोष को प्रकट करते हुए लक्ष्मण का प्रवेश, राम और रावण के मध्य होने वाले सन्धि प्रस्ताव का लक्ष्मण के द्वारा घोर विरोध ठीक उसी शैली में हुआ है, जिस प्रकार "वेणीसंहार" में कृष्ण के माध्यम से युधिष्ठिर और दुर्योधन के मध्य प्रस्तावित संधि का विरोध करते हुए भीम का प्रवेश हुआ है। यही नहीं लक्ष्मण के चरित्रांकन पर भी "वेणीसंहार" के भीम का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। वेणीसंहार में जिस प्रकार भीम युधिष्ठिर की सौम्यता से क्षुब्ध हैं, उसी प्रकार लक्ष्मण भी श्रीराम की सहिष्णुता से क्षुब्ध हैं।

एक अन्य प्रसंग में वेणीसंहार के द्वितीय अंक में दुर्योधन की पत्नी और उसकी सखियों के मध्य वार्ता को, जिस प्रकार दुर्योधन छिपकर सुनता है तथा भानुमति के सतीत्व पर सन्देह करते हुए उसे मारने को उद्यत हो जाता है, उसी प्रकार अद्भुतदर्पणम् में भी त्रिजटा, सरमा और सीता के मध्य गर्भनाटिका के प्रसंग में, रावण भी छिपकर वार्ता सुनता है तथा सरमा और त्रिजटा के प्रति शंकित होकर उनकी हत्या को उद्यत हो जाता है।

यही नहीं अद्भुतदर्पणम् में शम्बर नामक रावणपक्ष के एक मायावी राक्षस द्वारा सुग्रीव के अनुचर दधिमुख का वेश बनाकर, शत्रुपक्ष से मिलकर, अंगद के द्वारा सुग्रीव के वध की चर्चा करके, राम-लक्ष्मण को इस स्तर तक भ्रमित कर दिया जाता है कि राम मूर्च्छाविष्ट हो जाते हैं। यह प्रसंग भी वेणीसंहार के षष्ठ अंक में आये दुर्योधन के मित्र चारवाक् नामक राक्षस के द्वारा कपटमुनि का वेश धारण कर, युधिष्ठिर तथा द्रौपदी आदि को भ्रमित करने के प्रसंग से साम्य रखता है। यहां वह भीम तथा अर्जुन की मृत्यु का मिथ्या समाचार देता है, जिससे युधिष्ठिर तो दुःखी होते ही हैं, द्रौपदी चिता तैयार कर अग्नि में प्रविष्ट होने को भी उद्यत हो जाती है।

एक स्थान पर तो वेणीसंहार में, दुःशासन की मृत्यु के पश्चात् दुर्योधन द्वारा कहे गये वचनों का भाव अद्भुतदर्पणम् के अन्तर्गत कुम्भकर्ण तथा मेघनाद की मृत्यु के पश्चात् रावण के निर्वेद वचनों में पूर्णतः प्रकट होता है, यथा- वेणीसंहार में -

दुर्योधनः - घातिताऽशेषबन्धोर्मे किं राज्येन जयेन वा[1]।

अद्भुतदर्पणम् में -

रावणः - (आश्वस्य ।) सखे महोदरः ।
किं राज्येन किमसुभिः किं त्वनया सीतया वा मे ।
यन्मम सर्वप्राणौ यातौ वत्सौ विमुच्य्मां क्वापि [2]।

प्रतीक-नाटकोंका का प्रभाव

प्रतीक नाटकों की परम्परा "बालचरितम्" से ही प्रारम्भ हो जाती है । यद्यपि प्रतीक नाटक का प्राचीनतम उदाहरण कृष्णमिश्र - प्रणीत प्रबोधचन्द्रोदय माना जाता है, जो कि 12वीं शताब्दि में लिखा गया । परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से गवेषणा करने पर ज्ञात होता है कि अमूर्त प्रत्ययों को पुरुष अथवा नारी पात्र के रूप में प्रस्तुत करने की परम्परा कालिदास से पूर्व ही प्रारम्भ हो चुकी थी । भास प्रणीत बालचरितम् नाटक में अलक्ष्मी आदि अनेक भावों को प्रतीकात्मक पात्रों के रूप में प्रस्तुत किया गया है । कालान्तर में प्रतीकों की यही परम्परा संस्कृत नाटकों में पल्लवित और पुष्पित होती है । कालिदास की कृतियों में भी प्रकारान्तर से यह कौशल देखने को मिलता है । उर्वशी के प्रेम में उन्मत्त पुरुरवा हंस आदि पक्षियों से जो वार्तालाप करता है उसमें भी उन पक्षियों का मानवीकरण ही दिखाई पड़ता है ।

- -

1. वेणीसंहार -अंक-4, पृ. 246 प्रकाशन- पं छन्नूलाल ज्ञानचन्द, संस्कृत पुस्तकालय कचौड़ीगली, वाराणसी

2. "अद्भुतदर्पणम्", अंक -8, श्लोक - 42

मध्यकालीन नाटकों में यही प्रतीक पद्धति एक प्रमुख नाट्यविधा बनकर उभरी और पूरा का पूरा नाटक प्रतीकात्मक शैली में लिखा जाने लगा। "प्रबोधचन्द्रोदय" इस परम्परा का प्रथम नाटक है, जिसकी अनुकृति में "संकल्प-सूर्योदय" आदि विशिष्ट नाट्यकृतियां प्रणीत की गईं।

यद्यपि प्रतीक शैली का उदय उत्तरभारत में हुआ, फिर भी धीरे-धीरे यह दक्षिणापथ में भी लोकप्रिय हुई। "संकल्पसूर्योदय" के रचनाकार वेदान्तदेशिक दाक्षिणात्य ही थे। अद्भुतदर्पणम् के रचनाकार कविवर महादेव भी इस परम्परा से ही प्रभावित हुए, ऐसा प्रतीत होता है। इस परम्परा में वे सर्वाधिक महाकवि भवभूति के "उत्तररामचरितम्" से प्रभावित हुए हैं। एक ओर जहां उन्होंने विकृतराम, विकृतलक्ष्मण, विकृतरावण आदि के प्रस्तुतीकरण के माध्यम से उत्तररामचरितम् और कुन्दमाला की छायासीता परम्परा का अनुकरण किया है वहीं पर नाटक का सम्पूर्ण नवम अंक कवि ने प्रतीक परम्परा में लिखा है। जैसे महाकवि भवभूति ने तमसा, मुरला और पृथ्वी आदि को मानवीकरण के माध्यम से सजीव नारी पात्रों के रूप में प्रस्तुत किया है, ठीक उसी प्रकार कवि महादेव ने भी लंका और निकुम्भिला को नारी पात्रों के रूप में प्रस्तुत करके एक विचित्र नाट्यरस की सृष्टि की है।

'लंका' रावण की राजधानी थी तथा 'निकुम्भिला' मेघनाद की तपस्थली। इन दोनों ही स्थानों को माता और पुत्री के रूप में प्रस्तुत कर, उनके संवाद के माध्यम से जहां कवि ने कथानक को आगे बढ़ाया है, वहीं रसोद्रेक को भी अपेक्षाकृत और सहज बना दिया है क्योंकि यथार्थ पात्रों की तुलना में प्रतीकात्मक पात्र कहीं अधिक प्रभावी तथा आश्चर्य व विस्मय उत्पन्न करने वाले होते हैं।

इस प्रकार यह तथ्य स्वीकार करने योग्य है कि अद्भुतदर्पणकार

प्रतीकात्मक नाट्य परम्परा के गहन अध्येता एवं सफल प्रयोजक भी थे। इस रूप में उनका भास, कृष्णमिश्र, भवभूति तथा दिङ्नाग आदि की नाट्यशैली से प्रभावित होना स्वतः सिद्ध है। उत्तररामचरितम् का प्रभाव तो अद्भुतदर्पणम् के कुछ संवादों पर भी है। इस संदर्भ में अद्भुतदर्पणम् की प्रस्तावना दर्शनीय है, जहां सूत्रधार के वचनों में सीता के प्रति वचनीयता और अग्निपरिशुद्धि का प्रसंग अद्भुतदर्पणम् में ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार उत्तररामचरितम् में सूत्रधार और नट के वार्तालाप में प्रस्तुत किया गया है[1]।

उत्तररामचरितम् के सप्तम अंकस्थ गर्भांक नाटक का भी अद्भुतदर्पणम् पर पूर्ण प्रभाव है। जिस प्रकार सीता के वाल्मीकि आश्रम आदि के प्रसंग को राम के सामने प्रदर्शित करने के लिए उत्तररामचरितम् में गर्भनाटिका की रचना की गई थी, उसी प्रकार अद्भुतदर्पणम् में राम-रावण युद्ध को जानकी के सामने प्रस्तुत करने के लिए "मायानाटिका" नामक गर्भांक की रचना की गई है।

---

1. सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता।
   यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः ॥
   देव्यामपि हि वैदेह्यां सापवादो यतो जनः।
   रक्षोगृहे स्थितिर्मूलमग्निशुद्धौ त्वनिश्चयः ॥

   -उत्तररामचरितम् - 1/5, 6

2. आशंकिते सकृदतत्यपि वाच्यलेशे
   स्वस्त्रीसुतेष्वपि जनैः परिशोधनानि।
   शुद्धिप्रकर्षपिशुनान्यनुमन्यमाना
   मध्यस्थतापि ममतेव सतां विसृष्टा ॥
   अपि स्वैराचारैः कलुषमितरेषां शमयतः परश्लाघायत्ता भवति महतः
   स्वेषु शुचिता।
   अहल्याविकल्पक्षणमदरेणोरपि विभो . प्रमाणं वैदेहीचरितपरिशुद्धौ हुतवहः ॥

   -अद्भुतदर्पणम् 1/6, 7

अन्य प्रभाव

नाटक के कथानक में माया का प्रदर्शन, राक्षसों का वेश परिवर्तन तथा अद्भुत मणि का प्रस्तुतीकरण भी सामान्यतया पूर्ववर्ती रचनाओं में आये हुए इसी प्रकार के कथानकोंके से प्रभावित प्रतीत होता है। नाटकों में मायावी पात्रों के प्रदर्शन की भी एक सुदीर्घ परम्परा है, जहां कुछ पात्र शत्रुपक्ष के पात्रों का वेश धारण कर उन्हें छलने की कोशिश करते हैं। इस प्रकार के नाटकों में भवभूति कृत महावीरचरितम्, अनंग हर्ष "मायुराज" कृत उदात्तराघवम्, मुरारि कृत "अनर्घराघवम्" तथा शक्तिभद्र कृत आश्चर्य चूडामणि प्रमुख हैं।

कविवर महादेव की नाट्यकृति "अद्भुतदर्पणम् पर शक्तिभद्रप्रणीत आश्चर्यचूडामणि का विशेष प्रभाव है। सर्वप्रथम तो अद्भुतदर्पणम् शीर्षक ही आश्चर्यचूडामणि से प्रभावित है, क्योंकि सामान्य परम्परा के विपरीत दोनों ही नाटकों के नाम न तो किसी पात्र न ही किसी कथानक के आधार पर रखे गये हैं। रस-परिपाक की दृष्टि से भी दोनों नाटकों में साम्य है। आश्चर्यचूडामणि की भांति अद्भुतदर्पणम् में भी अनेक आश्चर्यजनक घटनाओं का बाहुल्य होने पर भी, अद्भुत रस गौण होकर वीर रस का ही प्राधान्य लक्षित होता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि महाकवि महादेव ने समकालीन एवं पूर्ववर्ती दाक्षिणात्य तथा उत्तरभारत की साहित्यिक कृतियों का गहन अध्ययन किया था जिसका व्यापक किन्तु स्वाभाविक प्रभाव उनकी रचना में दृष्टिगत होता है। ये रचनाएं ही इनके नाटकीय संविधान की स्रोत हैं।

अद्भुतदर्पणम् नाटक की वाल्मीकीय रामायण से तुलना

आलोच्य नाटक की कथावस्तु रामकथात्मक होने के कारण यह तो स्वतः सिद्ध है कि इस नाटक का मूल आधार वाल्मीकीय रामायण ही है । आदिकाव्य के "युद्ध काण्ड" की मुख्य घटनाओं को ही इस दशांक नाटक में नाटकीय रूप दिया गया है । महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण, राम के चरित्र का सर्वांगीण वर्णन करने वाला एक बृहत्काय महाकाव्य है । यही कारण है कि इसके युद्धकाण्ड में राम के द्वारा सेतु निर्माण के पश्चात् समस्त वानरवाहिनी के साथ लंका में प्रवेश से लेकर, रावण के समस्त वंश के साथ रामपक्ष का युद्ध एवं रावण-वध का सर्वांगीण वर्णन है । अद्भुतदर्पणम् नाटक में यद्यपि महाकवि महादेव ने राम-रावण युद्ध को ही कथावस्तु के रूप में प्रस्तुत किया है, किन्तु वह एक नाट्यशैली में लिखी रचना है जो सामान्यतया पाठक तथा दर्शक के मनोरंजननिमित्त ही होती है अतः उसमें वाल्मीकीय रामायण जैसा कथाविस्तार न तो सम्भव है न ग्राह्य ही । अतः कथानक की दृष्टि से अद्भुतदर्पणम् नाटक में नाटककार ने यथावश्यक कथानकों को ही अपने नाटक में ग्रहण किया है । मनोरंजन एवं नाट्यविधा के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने अपनी कथा में यथासम्भव आवश्यक परिवर्तन भी किये हैं । इस आधार पर वाल्मीकीय रामायण से नाटक के साम्य एवं वैषम्य के बिन्दुओं की समीक्षा निम्न भांति की जा रही है :-

साम्य

क्योंकि अद्भुतदर्पणम् का उपजीव्य वाल्मीकीय रामायण ही है अतः नाटक के कथानक का रामायण के कथानक से साम्य स्वाभाविक ही है । यद्यपि कुछ रामायणवर्णित वृत्तान्तों की नाटक में मात्र सूचना ही दी गई है । यह साम्य अनेक स्थानों पर दृष्टिगोचर होता है, यथा-

(क) रामायण के युद्धकाण्ड में हनुमानजी के द्वारा लंका के दुर्ग, फाटक, सेना विभाग और संक्रम आदि का विस्तार से जो वर्णन किया गया है, उसकी एक संक्षिप्त सूचना मात्र नाटक के प्रस्तावना में दे दी गई है[1]।

(ख) रामायण के 6/41वें सर्ग में वर्णित अंगद के दौत्यकर्म की भी नाटक में सूचना ही प्राप्त होती है[2]।

(ग) रामायण के युद्धकाण्ड-चत्वारिंशः सर्ग में वर्णित सुग्रीव द्वारा रावण पर किये गए आकस्मिक आक्रमण को भी नाटक में सूचित किया गया है ।

(घ) नाटक के पंचम अंक में मय और माल्यवान् के संवाद प्रकरण में माल्यवान् द्वारा रावण को समझा जाने का प्रसंग सूचित है । यह वास्तव में रामायण के युद्धकाण्ड के 35वें सर्ग में माल्यवान् द्वारा रावण को श्रीराम से सन्धि करने के लिये समझाए जाने वाले प्रसंग की ही सूचना है ।

(च) लंका को देखकर श्रीराम को सीता का स्मरण हो आना भी

---

1. नन्वत्र रूपके गूढप्रणिधिना हनुमता निवेदितेषु निखिलेषु वैरिमर्मसु तत्क्षणनिबद्धेन सेतुना निस्तारितसागरमखिलमेव बलीमुखबलमधित्यकासु त्रिकूटस्य निबिडितलंकापुरगोपुरं .... ।

   -अद्भुतदर्पणम् पृष्ठ 6 ।

2. संधित्सति नाम राजा तारेयमुखात् ।

   - वही पृष्ठ 7 ।

दोनों स्थानों पर समान रूप से वर्णित है[1] ।

§छ§ अंगद द्वारा इन्द्रजित की पराजय, इन्द्रजित का माया से अदृश्य होना, उसका नागास्त्र सन्धान, लक्ष्मण द्वारा उसका वध ये सभी वृत्तान्त रामायण से साम्य रखते हैं ।

§ज§ विद्युज्जिह्व द्वारा राम के मायामय शीर्ष एवं धनुष का निर्माण तथा उनके द्वारा सीता को विचलित करने का प्रयत्न भी रामायण के समान इस नाटक में भी प्राप्त होता है ।

§झ§ वानरों के द्वारा लंकापुरी दहन का संकेत भी अद्भुतदर्पणम् के पंचम अंक में प्राप्त होता है[2]।

§ट§ निकुम्भिला मन्दिर में इन्द्रजित द्वारा पूजन का प्रसंग भी अद्भुतदर्पणम् में प्राप्त होता है ।

§ठ§ महोदर के द्वारा रामायण के 6/64वें सर्ग में जो रावण को बिना युद्ध के ही अभीष्ट सिद्धि का उपाय बताया गया है, उसके एक श्लोक तथा इसी प्रकार के एक प्रसंग में अद्भुतदर्पणम् में महोदर के एक वाक्य में तो भाव-साम्य भी पाया जाता है[3]।

---

1. अत्र सा मृगशावाक्षी मत्कृते जनकात्मजा ।
पीड्यते शोकसन्तप्ता कृशा स्थण्डिलशायिनी ।।
-रामायण 6/42/8

2. रामः §स्वगतम्§ अस्यां हि कष्टया तया वराक्या चिरादन्धीकृता दृष्टि रियं रामस्य ।
-अद्भुतदर्पणम् पृष्ठ 33 ।

2. लंकामेव हठेन विष्वगभिभ्मुल्काकरा वानराः ।।
- वही 5/2

3. अनयोपधयाराजन् भूयः शोकानुबन्धया ।
अकामा त्वद् वशं सीता नष्टनाथा गमिष्यति ।।
-वाल्मीकीय रामायण 6/64/35 ।

{ड} कुम्भकर्ण की रणयात्रा, राम द्वारा कुम्भकर्ण वध, लक्ष्मण द्वारा इन्द्रजित वध, इनके वध से रावण का शोक संतप्त होना आदि वृत्तान्तों का भी संकेत नाटक में अत्यन्त संक्षिप्त किन्तु साम्ययुक्त है ।

{ढ} राम-रावण युद्ध, राम द्वारा रावण की मृत्यु, विभीषण का लक्ष्मण के द्वारा राज्याभिषेक, ये सभी वृत्तान्त रामायणीय कथा से साम्य रखते हैं ।

{त} सीता की अग्निपरीक्षा, साक्षात् अग्निदेव द्वारा श्रीराम को सीता प्रदान करना, दशरथजी से वार्ता तथा मृत वानरों के स्वस्थ होने का वृत्तान्त भी रामायण के समान अद्भुतदर्पणम् में भी पाया जाता है ।

{थ} विभीषण द्वारा श्रीराम को अयोध्या प्रस्थान के लिए पुष्पक विमान दिया जाना भी दोनों ग्रन्थों में समान रूप से वर्णित है ।

{द} अद्भुतदर्पणम् के सभी पात्रों का नामोल्लेख रामायण में प्राप्त होता है भले ही नाटक में उनका चरित्रांकन रामायण से कुछ भिन्न है ।

वैषम्य

नाटक के कथानक में जहाँ रामायण से साम्य पाया जाता है वहीं पर्याप्त वैषम्य भी । नाटक में रोचकता एवं अभिनेयता लाने के लिए कवि ने नवीन कथांशों की कल्पना तो की ही है, साथ ही रामायण वर्णित कुछ वृत्तान्तों में परिवर्तन भी कर दिया है । ये सभी वृत्तान्त ही इसे रामायणीय कथा से अलग एक विशिष्ट रूप प्रदान करते हैं । वैषम्य के कतिपय मुख्य बिन्दु निम्न हैं :-

---

........निराशा पुनरपि तस्य समागमे भवन्तमेवानन्यशरणा
चिररोधकदर्थिता सेविष्यते जानकी ।

—अद्भुतदर्पणम् अंक-6, पृष्ठ- 66

(क) अद्भुतदर्पणम् में लक्ष्मण, श्रीराम के द्वारा अंगद को दौत्यकर्म के लिए भेजे जाने से अप्रसन्न होते हैं तथा अपना उग्र क्षोभ भी व्यक्त करते हैं[1]। किन्तु रामायण में ऐसा नहीं है।

(ख) रामायण में शुक और सारण गुप्तचर के रूप में आते हैं, उनको रावण के द्वारा भेजा जाता है। किन्तु अद्भुतदर्पणम् में शम्बर नामक मायावी राक्षस स्वयं ही वानर-वेश धारण कर, अपने स्वामी मेघनाद के यज्ञकार्य सिद्ध होने तक रामपक्ष को भ्रमित करने के लिए आता है।

(ग) रामायण की भांति इस नाटक में भी विद्युज्जिह्व ही राम के माया-शीर्ष का निर्माण करता है किन्तु रामायण की भांति अद्भुतदर्पणम् में रावण, राम के मायामय शीर्ष और धनुष को सीता को नहीं दिखाता यहां विद्युज्जिह्व ही महोदर और शूर्पणखा की सहायता से मायामय शीर्ष सीता के पास भेजता है। रामायण में सीता, रामके शीर्ष और धनुष को देखकर दुःखी तो बहुत होती हैं किन्तु मूर्च्छित नहीं होतीं। जबकि इस नाटक में सीता शोकविह्वल होकर मूर्च्छित हो जाती हैं।

(घ) रामायण में शोक संतप्त सीता को सरमा आश्वासन देती है, जबकि अद्भुतदर्पणम् में त्रिजटा विविध प्रकार से सीता को आश्वस्त करती है तथा सरमा त्रिजटा की सहयोगिनी के रूप में उसके साथ रहती है।

---

1. तन्नैव स्मृतमाश्रुतं सदसि यद्रक्षःकुलोन्मूलनं
तज्जीर्णं हृदि यद्विभीषणमखो संकल्पिताः सिंहलाः।
अन्यत्प्रस्तुतमद्य नूतनतया यत्किंचिदार्येण मे
मानी संधिकथां करोति हृदि कस्तदैरमूलं स्मरन्॥

तारेयोपहृतां कथंचिदपि नः संधिप्रसक्तिं चिरा-
दार्यामोक्षमृते तु राक्षसपतेः संमन्वते मन्त्रिणः

-अद्भुतदर्पणम् 1/10, 13

(च) रामायण में हनुमानजी लंका से लौटकर श्रीराम को सीता का समाचार सुनाते हुए उन्हें मनःशिला के तिलक का अभिज्ञान देते हैं,[1] किन्तु अद्भुतदर्पणम् में त्रिजटा मूर्च्छित सीता को आश्वस्त करने के लिए उनके द्वारा बताये गये मनःशिलातिलक प्रसंग का अभिज्ञान देती है । इसी प्रकार रामायण में श्रीराम द्वारा सीता के कपोल-चुम्बन का वृत्तान्त नहीं है जबकि मनःशिला-तिलक के प्रसंग में त्रिजटा द्वारा यह अभिज्ञान भी दिया जाता है[2] ।

(छ) पर्वत से उछलकर रावण के गढ़ में जाकर सुग्रीव द्वारा रावण पर आक्रमण किए जाने का वर्णन तो रामायण में भी है किन्तु इसी समय सुग्रीव के द्वारा फैंके गये रावण के मुकुटों से निकलकर विभीषण को प्राप्त होने वाली अद्भुतदर्पण नामक मणि का उल्लेख रामायण में नहीं है । यह कवि की नितान्त नवीन कल्पना है ।

(ज) रामायण में प्रहस्त और नील के समर का वर्णन है किन्तु अद्भुतदर्पणम् में अंगद के साथ प्रहस्त के युद्ध का उल्लेख है ।

(झ) रामायण में रावण का प्रथम युद्ध लक्ष्मण के साथ होता है जबकि नाटक में रावण के दोनों ही युद्ध राम के साथ होते हैं । यहाँ लक्ष्मण के साथ रावण के युद्ध का संकेत भी नहीं है ।

---

1. मनःशिलायास्तिलकं तद् स्मरस्येति चाब्रवीत् ।

   —वाल्मीकीय रामायण 5/65/23

2. ननु मनःशिलातिलककल्पनकपोलचुम्बनं लज्जालुकयापि मयार्यपुत्रस्यै-कवारमप्रतिषिद्धमासीदिति त्वयैव कथितवचनाभिज्ञानं धारयन्ती किं तेऽहं सत्यं त्रिजटास्मि ।

   —अद्भुतदर्पणम् अंक-5, पृष्ठ-62

(ट) यद्यपि दोनों ग्रन्थों में महोदर के द्वारा रावण को बिना युद्ध के ही अभीष्ट सिद्धि का उपाय बताया जाता है किन्तु अन्तर यह है कि रामायण में महोदर कहता है कि नगर में घोषणा करा दी जाय, "महोदर, द्विजिह्व, संह्लादी, कुम्भकर्ण और वितर्दन ये पांच राक्षस राम पर विजय करन करने जा रहे हैं, इस प्रकार यदि शत्रु पर विजय मिल जाय तो ठीक, किन्तु यदि शत्रु अजेय रहा तो खून से लथपथ, रामनाम से अंकित बाणों से अपने शरीर को घायल कराकर हम लौटेंगे और कहेंगे कि हमने राम-लक्ष्मण को खा लिया। तत्पश्चात् सीता इस प्रवंचना से स्वयं को अनाथ मानकर इच्छा न होने पर भी आपके आधीन हो जाएगी। जबकि अद्भुतदर्पणम् में महोदर कहता है कि मायानिर्मित सीता, राम को लौटा दी जाय। उसे प्राप्त कर राम ससैन्य लौट जाएंगे और निराश सीता आपकी शरण में आ जाएगी।

(ठ) रामायण में राम-रावण युद्ध के समय अगस्त्य मुनि द्वारा आदित्यहृदय स्तोत्र का राम को उपदेश किये जाने का वर्णन है, जबकि अद्भुतदर्पणम् में युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व ही अगस्त्य मुनि द्वारा दिये गये सावित्रि मन्त्र का उल्लेख आया है, जिसके प्रभाव से वानरों पर राक्षसों का आवेश अथवा माया का प्रभाव नहीं हो सकता।

(ड) रामायण में सरमा द्वारा सीता को युद्धभूमि में ले जाकर राम-लक्ष्मण की स्थिति दिखाने का उल्लेख है, किन्तु अद्भुतदर्पणम् में त्रिजटा और सरमा के द्वारा एक मायानाटिका के माध्यम से, सीता को, हो चुके युद्ध को प्रत्यक्ष दिखाया जाता है। इस युद्ध को छिपकर रावण तथा महोदर एवं अद्भुतदर्पण मणि के माध्यम से राम-लक्ष्मण भी देखते हैं।

(8) रामायण तथा अद्भुतदर्पणम् दोनों में ही सीता के अग्निप्रवेश का वृत्तान्त है किन्तु दोनों वृत्तान्तों में पर्याप्त वैषम्य है। रामायण में सीता, स्वयं राम की ही भर्त्सना से क्षुब्ध होकर अपने सतीत्व को सिद्ध करने के लिये अग्नि में प्रविष्ट हो जाती हैं जबकि नाटक में रावण की पत्नी मन्दोदरी का पिता मय, रावण वध के प्रतिशोधस्वरूप एक षड्यन्त्र के द्वारा सीता-राम मिलन से पूर्व ही राम का रूप धारणकर सीता पर परगृहवास का आरोप लगाता है जिससे पीड़ित होकर सीता अग्नि में प्रवेश कर जाती हैं।

इन कतिपय परिवर्तनों के द्वारा कवि ने नाटक के प्राचीन एवं बहुश्रुत कथानक को एक नवीन रूप देकर अधिक रोचक बनाने का प्रयत्न किया है और अपने इस प्रयत्न में वे सफल भी हुए हैं।

नवीन कथांशों की समीक्षा

नाटक में चमत्कार, मनोरंजकता तथा नाटक के परम्परागत नियमों को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिये कविवर महादेव ने कुछ नवीन कथांशों की कल्पना की है। ये कथांश हैं -

शम्बर वृत्तान्त

नाटकीय चमत्कार की दृष्टि से नाटक के प्रथम अंक से लेकर चतुर्थ अंक तक व्याप्त शम्बर का वृत्तान्त सर्वाधिक कुतूहलपूर्ण है। यहां पर कवि ने शम्बर नामक एक मायावी राक्षस पात्र की अवतरणा की है। यह राक्षस अपने स्वामी मेघनाद के यज्ञकार्य को निर्विघ्न सम्पन्न कराने के लिये राम-लक्ष्मण को भ्रमित कर, कुछ समय के लिये युद्धविरत करने का विविध भांति उद्योग करता है। सर्वप्रथम वह सुग्रीव के सेवक दधिमुख का

वेश बनाकर यह कहकर राम को व्यथित कर देता है कि अंगद ने पिता की हत्या का प्रतिकार करने के लिये शत्रुपक्ष से मिलकर सुग्रीव की हत्या कर दी। यहां पर कवि ने मानव की स्वाभाविक संवेदनाओं का बहुत ही सफलतापूर्वक उपयोग किया है। एक पुत्र, जिसके पिता की छलपूर्वक हत्या कर दी गई है, वह स्वाभाविक ही अपने पिता की हत्या का बदला लेना चाहेगा। इस प्रवृत्ति का सफल प्रयोग कवि ने इस प्रसंग में किया है। श्रीराम को भी इसी कारण विश्वास हो जाता है कि अंगद ने सुग्रीव का वध कर दिया। वे अंगद के इस भाव की प्रशंसा भी करते हैं[1]।

यही शम्बर एक स्थान पर जाम्बवान् को भी वंचित करता है। जब जाम्बवान् उसे लेकर विभीषण के पास पहचान के लिये जा रहे थे तभी अचानक वास्तविक दधिमुख के आ जाने से तथा जाम्बवान् के द्वारा राम का पत्र पढ़ने के लिये उसका हाथ छोड़े जाने पर शम्बर माया से तिरोहित होकर दधिमुख को पकड़ा देता है। यही नहीं वह मार्ग में विभीषण का रूप धारण कर दधिमुख का वध भी कराने का प्रयत्न करता है।

यहां से छूटकर शम्बर पुनः राम-लक्ष्मण को भ्रमित करने पहुंच जाता है। वह राम को इतना अधिक अशक्त बना देता है कि वे मूर्च्छित भी हो जाते हैं। यही नहीं एक स्थान पर वह लक्ष्मण के सामने अंगद का रूप धारणकर अपनी औद्धत्यपूर्ण उक्तियों से अंगद के प्रति लक्ष्मण के मन में

---

1. रामः - कथं वराको झटित्येव शत्रुवशं गतः। [सश्लाघम्।] साधु रे बालिपुत्र, साधु।
   मथ्नासि सहजं शत्रुं स्वं चावर्जयसे कुलम्।
   कण्टकांश्चोपमृद्नाति काले साधु प्रगल्भसे ।।
   -अद्भुतदर्पणम् 3/9

क्रोध उत्पन्न कर देता है, जिससे आने वाले अंगद का लक्ष्मण वध कर दें। इस प्रकार विभिन्न मायावी कार्यों के द्वारा वह अपने उद्देश्य में सफल होता है।

इस वृत्तान्त से जहां नाटक में चमत्कार आया है वहीं युद्ध के नीरस प्रकरण को एक मनोरंजक एवं रुचिकर गति मिली है। नाटक को देखने के लिये जिस कौतुहल का कवि, दर्शक में संचार करना चाहता है, उसमें भी उसे पूर्ण सफलता मिली है।

माल्यवान् तथा मय की वार्ता

नाटक के पंचम अंक में माल्यवान् तथा मय की वार्ता भी कवि की मौलिक सूझ है। इसके द्वारा जहां विभीषण के निष्कासन, मय द्वारा रावण का उद्बोधन राम-लक्ष्मण का नागपाशाविष्ट होना, वानरों द्वारा लंका विध्वंस करना आदि पूर्व कथांशों की सूचना मिलती है, वहीं कवि द्वारा श्रीराम, सीता एवं लक्ष्मण के विष्णु एवं लक्ष्मी का अवतार होने अथवा उनके ईश्वरीय तत्त्व होने की मान्यता को आविष्कृत करने के उद्देश्य को भी सफलता मिली है। माल्यवान् के कथनों के द्वारा कवि यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि राम-लक्ष्मण साधारण मानव नहीं अपितु साक्षात् परमतत्त्व हैं[1]।

विदूषक का प्रसंग

इस नाटक से पहले न तो रामायण न ही अन्य किसी राम-कथात्मक नाटक में विदूषक की कल्पना की गई थी अतः इस नाटक में

---

1. माल्यवान् – सखे दानवराज, किमुच्यते नरयुगमिति। मा मैवं मंस्थाः। पश्य।
अनस्तिप्रत्यस्त्रे पशुमदवशानां दिविषदा-
मपि प्रायो यस्मिन्भवत सहनमेव प्रतिविधिः।
तदेतन्नागास्त्रं तृणमिव विधूतं यदि तदा
वदामो रामाख्यं ननु किमपि तत्त्वं नरवपुः॥
–अद्भुतदर्पणम् 5/3

विदूषक का होना भी कवि कल्पना की सर्वथा मौलिक सृष्टि है। विदूषक रावण का नर्मसचिव है। महोदर नामक यह राक्षस अपने नामानुरूप ही भोजनभट्ट है। इस पात्र के कारण जहाँ कथानक में हास्यरस को पुष्टि मिली है वहीं कवि ने इसके माध्यम से सीता के चरित्र को भी निखारा है। विदूषक की उक्तियों के द्वारा सीता की चारित्रिक दृढता उभरकर सामने आती है[1]।

<u>मायानाटिका</u>

मायानाटिका के रूप में नाटक का गर्भांक भी कवि की नवीन सूझ है। कवि ने नाटिका को त्रिआयामी रूप में प्रस्तुत किया है। इस नाटिका के द्वारा ही नाटक के शीर्षक अद्भुतदर्पणम् को सार्थकता मिली है। सीता के व्यथित चित्त को आश्वस्त करने के लिये त्रिजटा और सरमा उन्हें पिछला युद्ध और उसमें श्रीराम की रावण पर विजय का दृश्य प्रत्यक्ष दिखाने के लिये मायानाटिका का आयोजन करती हैं। इस नाटिका को वृक्ष की ओट से जहाँ रावण और महोदर देखते हैं, वहीं अद्भुतदर्पण नामक मायावी मणि के माध्यम से श्रीराम और लक्ष्मण भी देखते हैं। इसी मणि से राम-लक्ष्मण रावण और महोदर के क्रियाकलापों को भी देखते हैं।

इस कथानक के द्वारा कवि के तीन उद्देश्य स्पष्ट होते हैं। पहला तो नाटकीय परम्परा का निर्वाह करना। युद्ध का दृश्य रंगमंच पर प्रत्यक्ष नहीं दिखाया जाता यह नाट्यशास्त्र का नियम है, अतः

---

1. महोदरः - यदि रामो जीवति ततस्त्वयि भावबन्धं कदापि न करिष्यति सीता। अथ पक्षान्तरे सैव न जीविष्यतीति सर्वथा नास्ति ते जानकी-निरूद्धस्य दुर्मनोरथस्य फलम्।

-अद्भुतदर्पणम् अंक-6, पृष्ठ-76

युद्धवृत्तान्त को पूर्णतः स्पष्ट करने के लिये कवि ने इस गर्भनाटिका की रचना की है । दूसरा यह कि अद्भुतदर्पण मणि के अद्भुत कार्यों को दिखाकर दर्शकों में आश्चर्य उत्पन्न करना । तीसरा और सर्वप्रमुख उद्देश्य इस नाटिका का है, सीता के चरित्र की उदात्तता को प्रकाशित करना । अद्भुतदर्पण मणि के द्वारा रावण, महोदर, सीता, सरमा और त्रिजटा के क्रियाकलाप एवं उनकी वार्ता को देखने और सुनने वाले राम-लक्ष्मण के माध्यम से दर्शकों तक सीता और रावण का चरित्र उभरकर सामने आता है । जहाँ रावण तथा उसके वैतालिकों की गर्वोक्तियों से, जिनमें उसके द्वारा पुंजिकस्थला, रम्भा तथा अन्य स्त्रियों पर अत्याचार का वर्णन है, रावण की दुष्टता एवं क्रूरता का पता चलता है[1], वहीं महोदर की उक्तियों से सीता के चरित्र की उदात्तता का परिचय मिलता है[2] ।

---

1. रावणः - (विहस्य ।)

   ननु जानासि लोकेषु नार्यो बन्दीकृता मया ।
   प्रायेण वशमा नीताः पातिव्रत्यपरा अपि ।।

   रावणः - - - - - - - - - -

   बलाद्भुक्तां मया दृष्ट्वा रुदन्तीं पुंजिकस्थलाम् ।
   मा बलात्कुरु नारीरित्यन्वशान्मां पितामहः ।।

   -अद्भुतदर्पणम् 6/24, 26

2. महोदरः - यदि रामो जीवति ततस्त्वयि भावबन्धं कदापि न करिष्यति सीता । अथ पक्षान्तरे सैव न जीविष्यतीति सर्वथा नास्ति ते जानकी-निरुद्धस्य दुर्मनोरथस्य फलम् ।

   - वही - अंक 6, पृष्ठ 76

इस नाटिका के माध्यम से कवि ने एक बन्दिनी एवं विरहिणी नारी के मनोभावों को भी स्पष्ट किया है । राम के द्वारा रावण वध में विलम्ब किये जाने से सीता क्षुब्ध होकर उपालम्भ दे उठती हैं । इन्हीं स्थितियों में वे लक्ष्मण के वीर-भाव की बारम्बार सराहना करती हैं क्योंकि वे रावणवध के लिये अत्यन्त उतावले हैं । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सीताचरित्र को ही प्रमुखता से प्रकाशित करने के लिये मायानाटिका के कथानक को कल्पित किया गया है ।

लंका-निकुम्भिला संवाद प्रकरण

नाटक के नवम अंक में कवि ने एक अन्य नवीन वृत्तान्त का प्रणयन किया है । यहाँ रावण की राजधानी लंका तथा मेघनाद की तपस्थली निकुम्भिला का मानवीकरण करके उन्हें माता और पुत्री के रूप में प्रस्तुत किया गया है । इनके संवाद के माध्यम से कवि ने राम-रावण के विकट युद्ध, राम के द्वारा रावण वध की तो सूचना दी है, साथ ही इनके वार्तालाप के माध्यम से उन्होंने सामान्य राजनीति व राजाओं की जय-पराजय पर प्रजा की मनोभावनाओं का विश्लेषण भी प्रस्तुत किया है । लंका-निकुम्भिला वास्तव में सामान्य जनता का प्रतिनिधित्व करती हैं । नए राजा के आने पर प्रजा स्वयं को किस प्रकार उसके अनुरूप ढाल लेती है अथवा प्रजा को किस प्रकार स्वयं को राजा के अनुरूप परिवर्तित कर - लेना चाहिए, साथ ही धर्मप्रिय राजा के राज्य में प्रजा सर्वथा सुखपूर्वक रहती है आदि अपने राजनैतिक विचारों को कवि ने व्यक्त किया है । ये ऐसे विचार हैं जो कालजयी हैं । सत्य ही है प्रजा किसी भी नवीन राजा के राज्य में पुराने शासक को , यदि वह अत्याचारी है तो सर्वथा विस्मृत कर देती है । कभी-कभी तो वह उस शासक के अनुरूप स्वयं को इतना अधिक

परिवर्तित कर लेती है कि प्रजा के सामूहिक चरित्र से शासक के चरित्र का भी अनुमान लगाया जा सकता है । रावण तथा कुबेर के शासन के माध्यम से कवि ने इसी बात को स्थापित किया है[1]। लंका की वार्ता के माध्यम से कवि यह भी स्पष्ट करना चाहते हैं कि प्रजा को धर्मपालक एवं सौम्य राजा के शासन में स्वयं को भी सौम्य बना लेना चाहिए[2]।

सीता की अग्निपरीक्षा

सीता की अग्निपरीक्षा का प्रसंग भी कवि की नितान्त नवीन कल्पना है । नाट्यशास्त्र का यह नियम है कि नाटक में जो कुछ

---

1. चिरपरिचितराजव्यत्यये पत्तनानां
   ननु भवति नवीने राज्ञि कोऽपि प्रकारः ।
   तदपि तदनुजन्मा यन्मया च त्वया च
   प्रकृतिषु निजसीमापालनात्पालनीयः ।।
   यक्षाधिराजकलिता स्थितिरावयोर्हि
   रक्षोधिराजभयपालनविस्मृताभूत् ।
   तद्धर्मभूषणविभीषणपालनेन
   सर्वोऽप्ययं शममुपैष्यति नौ विषादः ।।
   –अद्भुतदर्पणम् 9/8, 9

2. लंका – अतःपरमावाभ्यामन्यैरपि हतशेषैः राक्षसकुलैः "यथा राजा तथा प्रजाः" इति नीतिमनुसृत्य सौम्यन्तरैरेव भवितव्यम् । त्वया घोराभिचारभूमिभावं परित्यज्य महायज्ञक्षेत्रभावश्चिरादुररीकर्तव्यः ।
   – वही अंक 9, पृष्ठ 127

भी नायक के चरित्र के प्रतिकूल होता है उसे या तो छोड़ दिया जाता है अथवा उसकी अन्य प्रकार से कल्पना कर ली जाती है[1]। सीता की अग्निपरीक्षा का प्रसंग भी इसी प्रकार का है। सीता जैसी निर्मल-चरित्र नारी की भर्त्सना तथा उसे अग्नि में प्रवेश करने जैसा कठोर निर्णय लेने के लिये विवश करना, राम जैसे उदात्त महापुरुष के चरित्र को धूमिल बना देता है। कवि महादेव ने नायक श्रीराम के चरित्र की रक्षा करने के लिये इस वृत्तान्त को नवीन रूप प्रदान किया है।

यहाँ उन्होंने यह कल्पना की है कि मय दानव अपनी पुत्री मन्दोदरी के पति, रावण की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिये उसके वध की मूल कारण सीता को ही नष्ट करना चाहता है। इसके लिये वह एक षड्यन्त्र रचता है, जिसके अनुसार सीता राम के मिलन से पूर्व ही वह राम का वेश बनाकर सीता पर परगृहवास का लाञ्छन लगाकर उन्हें पीड़ित कर देता है। इस नवीन वंचना को सीता सहन नहीं कर पाती और अग्नि में प्रवेश कर जाती हैं। बाद में अग्निदेव उन्हें राम को सौंप देते हैं।

इन कतिपय परिवर्तनों के आधार पर प्रस्तुत नाटक का उद्देश्य राम के द्वारा रावण विजय के अनन्तर सीता की प्राप्ति है। इसी कथा को गतिशील एवं मनोरंजक बनाने के लिये कवि ने अनेक घटनाएं समाविष्ट की हैं, जिनके द्वारा नाटक में गतिशीलता तो आई ही है, दर्शकों के लिये मनोरंजन की भरपूर सामग्री भी उपलब्ध हुई है।

---

1. यत्तत्रानुचितं किंचिन्नायकस्य रसस्य वा ।।
   विरुद्धं तत्परित्यज्यामन्यथा वा प्रकल्पयेत् ।
   - दशरूपकम्, तृतीय प्रकाश, 24, 25

तृतीय अध्याय

प्रतिपाद्य विवेचन

1. संस्कृत नाटकों का रचना विधान ।

2. अधिकारी की दृष्टि से कथावस्तु के भेद - आधिकारिक एवं प्रासंगिक कथा, प्रासंगिक कथा के भेद - पताका एवं प्रकरी कथाएं ।

   अभिनय की दृष्टि से इतिवृत्त के भेद - दृश्य, श्रव्य एवं सूच्य कथा । सूच्य कथा के भेद - [अर्थोपक्षेपक] विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अंकास्य, अंकावतार ।

   संवाद के आधार पर इतिवृत्त का विभाजन - सर्वश्राव्य, अश्राव्य, नियत श्राव्य कथा का स्वरूप तथा आकाशभाषित ।

   अद्भुतदर्पणम् के इतिवृत्त की समीक्षा - आधिकारिक कथावस्तु तथा पताका एवं प्रकरी कथाएं ।

   अद्भुतदर्पणम् में अर्थोपक्षेपक - विष्कम्भक, चूलिका, अंकास्य, अंकावतार ।

   अद्भुतदर्पणम् नाटक की संवाद योजना ।

तृतीय अध्याय

प्रतिपाद्य विवेचन

संस्कृत साहित्य में रचना प्रक्रिया के नियन्त्रण के प्रति विद्वानों का विशेष ध्यान रहा है। यही कारण है कि अलंकार शास्त्रएवं लक्ष्य-लक्षण ग्रन्थों की रचनाएं की गईं। इसी आधार पर नाट्यविधा के नियन्त्रण तथा नियमन हेतु भरतमुनि द्वारा सर्वप्रथम नाट्यशास्त्र की रचना करके नाट्य विधाओं का नियमन किया गया है। नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक की उत्पत्ति ब्रह्मा के द्वारा हुई। ब्रह्मा ने चार वेदों के आधार पर ही पंचम वेद नाट्यवेद की रचना की। इस पंचम वेद में नाट्य के जिन चार अंगों, पाठ्य, गीत, अभिनय तथा रस का वर्णन किया गया है उन्हें ब्रह्मा ने क्रमशः ऋक्, यजुष्, साम तथा अथर्व वेद से ग्रहण किया है[1]।

वस्तुतः नाट्यकला को मानव जीवन में मनोरंजन के साथ-साथ अनेक सामाजिक सद्व्यवहारों एवं कार्यकलापों के सहज तथा सरल उपदेश का एक आधार भी माना गया है। अतः संस्कृत साहित्य में नाट्यविधा के माध्यम से नाट्यस्वरूप के नियन्त्रण का सम्यक् प्रयास किया गया है, जिससे दर्शकों के हृदय में जहां एक ओर मनोरंजन की सरसता का आभास होता रहे, वहीं दूसरी ओर अनेक ऐसे दृश्यों से भी बचा जाए जो मानव-मन को ठेस पहुंचा रहे हों। इसके साथ ही, क्योंकि भारतीय नाट्यकला धार्मिक भावनाओं से भी प्रभावित रही है अतः उसकी परम्परा में मंगलाचरण

- -

1. नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदांग सम्भवम् ॥
   जग्राह पाठ्यं ऋग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च ।
   —नाट्यशास्त्रम् - 1/16, 17

एवं भरतवाक्य जैसे मंगलकारक भावों को भी उचित स्थान दिया गया है ।

रस, अलंकार एवं गुणसम्पन्न जिस शब्द, अर्थ अथवा वाक्य को विद्वानों ने काव्य की संज्ञा दी है उसे आचार्यों ने दो प्रकार से विभक्त किया है - 1. श्रव्य काव्य तथा 2. दृश्य काव्य । इनमें दृश्य काव्य को ही नाटक कहा जाता है । वस्तुतः जिस प्रकार मुख आदि पर कमल आदि के आरोप के कारण रूपक अलंकार का नामकरण हुआ है उसी प्रकार नट आदि के द्वारा नायक आदि का आरोप करने के कारण दृश्यकाव्य को रूपक नाम दिया गया है । सामान्य रूप से जिसे नाटक कहा जाता है वह रूपक का एक भेद मात्र है । महाकवि कालिदास ने नाटक को भिन्न रुचि वाले व्यक्तियों का एकमात्र समाराधक माना है[1] ।

नाट्याचार्यों ने वस्तु, नेता एवं रस के भेद से रूपक के दशधा भेद निरूपित किये हैं - 1. नाटक, 2. प्रकरण, 3. भाण, 4. व्यायोग, 5. समवकार, 6. डिम, 7. ईहामृग, 8. अंक, 9. वीथी तथा 10. प्रहसन[2]। इन भेदों में मुख्य रूप से प्रथम भेद नाटक का ही सर्वाधिक महत्व है ।

संस्कृत नाटकों का रचनाविधान

प्रायः सभी संस्कृत नाटकों का रचनाविधान समान है । नाटक

---

1. देवानामिदमामनन्ति मुनयः शान्तं क्रतुं चाक्षुषं,
   रुद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे स्वाङ्गे विभक्तं द्विधा ।
   त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते,
   नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधकम् ।।
   -मालविकाग्निमित्रम् 1/4

2. नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः ।
   व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्केहामृगा इति ।।
   -दशरूपकम् प्रथमः प्रकाशः-8

को रंगमंच पर प्रस्तुत करने से पूर्व रंगमंच की विघ्न समाप्ति हेतु मंगला-चरण की प्रक्रिया आवश्यक समझी गई है । इसे ही पूर्वरंग भी कहा जाता है । इसके प्रत्याहार आदि अनेक अंग हैं, जिनमें नान्दी प्रमुख अंग है । यही कारण है कि नान्दीपाठ अनिवार्य माना गया है[1] । यह नान्दी आठ अथवा बारह पदों की होती है । इसमें देव, द्विज अथवा नृप आदि की आशीर्वचन से युक्त स्तुति की जाती है[2] ।

नाटक के प्रारम्भ में प्रस्तावना आवश्यक है । इसका प्रमुख पात्र सूत्रधार कहलाता है । कहीं-कहीं सूत्रधार ही नान्दीपाठ करता है तथा किन्हीं नाटकों में कुशीलव पूर्वरंग का विधान करते हैं । पूर्वरंग के पश्चात् कुछ नाटकों में सूत्रधार चला जाता है तथा दूसरा प्रधान नट जिसे स्थापक कहते हैं, कवि एवं उसकी रचना का परिचय देता है[3] । तथा कुछ नाटकों में सूत्रधार ही पूर्वरंग के साथ-साथ स्थापना का

- -

1. यन्नाट्य वस्तुनः पूर्वं रंगविघ्नोपशान्तये ।
   कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरंगः स उच्यते ।।
   प्रत्याहारादिकान्यंगान्यस्य भूयांसि यद्यपि ।
   तथाप्यवश्यं कर्तव्या नान्दी विघ्नोपशान्तये ।।

   -साहित्यदर्पण: 6/22, 23

2. आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते ।
   देवद्विज नृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ।।
   पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत ।।

   -साहित्यदर्पण: 6/24, 25

3. पूर्वरंगं विधायैव सूत्रधारो निवर्तते ।
   प्रविश्य स्थापकस्तद्वत्काव्यमास्थापयेत्ततः ।।

   - वही 6/26

कार्य भी करता है[1]। यह सूत्रधार भारतीवृ-त्ति का आश्रय लेकर कवि का परिचय देता हुआ काव्यार्थ की सूचना देता है । भारती वृत्ति के चार अंग हैं - प्ररोचना, वीथी, प्रहसन और आमुख । इनमें प्ररोचना तथा आमुख मुख्य हैं । नाटक एवं कवि की प्रशंसा के द्वारा सामाजिकों को नाटक में प्रवृत्त करना ही प्ररोचना है[2]।

प्रस्तावना

भारती वृत्ति का दूसरा प्रमुख अंग है- आमुख । इसे ही प्रस्तावना भी कहते हैं । इसमें सूत्रधार, नटी, पारिपार्श्वक अथवा विदूषक के साथ वार्तालाप करता हुआ किसी प्रमुख पात्र की प्रवेश की सूचना भी देता है[3]। प्रस्तावना के भी आचार्यों ने भेद किये हैं । धनंजय इसके चार भेद तथा पण्डित विश्वनाथ - उद्घात्यक, कथोद्घात, प्रयोगातिशय तथा प्रवर्तक एवं अवलगित ये पांच भेद मानेते हैं[4] । इस प्रकार नाटक में पात्र प्रवेश की व्यवस्था इन पांच प्रस्तावना भेदों के माध्यम से की जाती है । इस प्रकार कथावस्तु के पात्र-प्रवेश के द्वारा नाटक का प्रारम्भ होता है ।

अंक

प्रस्तावना के पश्चात् वास्तविक नाट्यकर्म का आरम्भ होता है ।

---

1. इदानीं पूर्वरंगस्य सम्यक्प्रयोगाभावादेक एव सूत्रधारः सर्वं प्रयोजयतीति ।
   - साहित्यदर्पण: 6/26 {वृत्ति}
2. उन्मुखीकरणं तत्र प्रशंसातः प्ररोचना । - दशरूपकम् 3/6
3. सूत्रधारो नटीं ब्रूते मार्षं वाडथ विदूषकम् ।।
   स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम् । - दशरूपकम् 3/7, 8
4. उद्घात्यकः कथोद्घातः प्रयोगातिशयस्तथा ।
   प्रवर्तकावलगिते पंच प्रस्तावनाभिदा : ।। - साहित्यदर्पण: 6/33

इसमें नाट्य कथावस्तु के अभिनय की व्यवस्था की जाती है । इस कथा-
वस्तु में भी उन सरस घटनाओं को जिनका नायक से सम्बन्ध होता है
और जिनको रंगमंच पर अभिनीत करना होता है, को अंकों के अन्तर्गत
समाविष्ट किया जाता है । प्रत्येक अंक में प्रायः एक दिन में, एक
ही प्रयोजन से किये गये कार्यों का समावेश होता है । क्योंकि समस्त
नाटक की कथावस्तु अंकों के माध्यम से ही रंगमंच पर प्रस्तुत होती है ।
अतः नाट्याचार्यों ने अंक विधान में भी कुछ नियमों का निर्धारण किया
है, यथा - कथावस्तु की योजना इस प्रकार की जाए कि अंकों में नायक
की उपस्थिति अथवा समीपता रहे । पात्रों की अधिक भीड़ न हो,
तीन या चार पात्र उचित माने गये हैं, इन पात्रों का भी अंक की समा-
प्ति पर निर्गमन हो जाना चाहिये । इसी प्रकार वे घटनाएं जो नीरस
हों, दो दिन से लेकर वर्षपर्यन्त चलने वाली हों अथवा अंकों में दर्शनीय
न हों, उनकी अर्थोपक्षेपकों के द्वारा सूचना मात्र दे देनी चाहिये । इसी
प्रकार जब आरम्भ से ही कथावस्तु सरस हो तो अंक का विधान नाटक
के आदि में ही किया जाए यह व्यवस्था की गई है । नाटक कम से कम
पांच अंकों और अधिक से अधिक दस अंकों का होना चाहिये[1]।

प्रवर्तकावलगिते पंच प्रस्तावनाभिदाः ।।

- साहित्यदर्पणः 6/33

1. एकाहाचरितैकार्थमित्थमासन्ननायकम् ।।
पात्रैस्त्रिचतुरैरंकं तेषामन्तोऽस्य निर्गमः ।
एवमंकाः प्रकर्तव्याः प्रवेशादिपुरस्कृताः ।
पंचांकमेतदवरं दशांकं नाटकं परम् ।।

- दशरूपकम् 3/36, 37, 38

अंकों के मध्य में कभी-कभी गर्भांक का प्रयोग भी किया जाता है । यह गर्भांक सूत्रधार द्वारा प्रयुक्त मंगल, आमुख आदि से युक्त तथा अंक के मध्य में प्रविष्ट बीज से युक्त फल सहित दूसरा अंक ही होता है[1] ।

भरतवाक्य

संस्कृत नाटकों की समाप्ति भी मंगलपाठ से होती है । इस अन्त के मंगलपाठ को भरतवाक्य कहा जाता है । इस मंगल प्रशस्ति में आश्रयदाता राजा, स्वयं कवि अथवा सामान्यतः प्रजामात्र के कल्याण की कामना की जाती है ।

नाट्याचार्यों ने कथावस्तु,नेता एवं रस की भिन्नता के आधार पर रूपक के नाटक, प्रकरण, प्रहसन आदि जो दस भेद किये हैं उन भेदों में नाटक की प्रधानता होने से सम्पूर्ण नाट्यसाहित्य को नाटक के नाम से अभिहित किया जाता है । क्योंकि कथावस्तु, नेता एवं रस के आधार पर ही इन रूपकों को विभाजित किया जाता है अतः ये तीनों ही नाटक के प्रधान तत्त्व हैं । अतः किसी भी नाटक के वास्तविक स्वरूप के ज्ञान हेतु उसके मूल तत्त्वों का सम्यक् अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है । इस अध्याय में नाटक के प्रथम तत्त्व "वस्तु" का विवेचन किया जायेगा ।

---

1. अंकोदरप्रविष्टो यो रंगद्वारामुखादिमान् ।
   अंकोऽपरः स गर्भांकः सबीजः फलवानपि ।।

   \- साहित्यदर्पणः 6/20

कथावस्तु

रूपक के विभाजक तत्त्वों में वस्तु का विशेष महत्त्व है। वस्तु को ही कथावस्तु, इतिवृत्त एवं कथावृत्त के नाम से अभिहित किया जाता है। अधिकारी, अभिनय एवं संवाद आदि के भेद से इस कथावृत्त के भी अनेक रूप हो जाते हैं।

वस्तु के भेद – अधिकारी की दृष्टि से

अधिकारी की दृष्टि से नाट्याचार्यों ने इतिवृत्त के दो भेद किये हैं। इन दो भेदों में मुख्यवृत्त को आधिकारिक एवं उसके अंगरूप में सहायक वस्तु को प्रासंगिक कहा जाता है[1]।

1. आधिकारिक. अधिकार का अर्थ है फल का स्वामित्व। फल का स्वामी ही अधिकारी कहा जाता है। इस प्रकार अधिकारी के द्वारा फलप्राप्ति तक पहुंचने वाला वृत्त या कथानक ही आधिकारिक कथावस्तु कहलाती है[2]। जैसे – रामायण में राम की कथा।

2. प्रासंगिक. जो कथावृत्त आधिकारिक कथा के प्रयोजन की सिद्धि के लिये सहायक रूप में होता है, साथ ही प्रसंगवश उसके अपने प्रयोजन की भी सिद्धि हो जाती है वह कथासूत्र प्रासंगिक कहलाता है[3]। जैसे – रामायण

- -

1. वस्तु च द्विधा।
   तत्राधिकारिकं मुख्यमंगं प्रासंगिकं विदुः ।। –दशरूपकम् 1/11
2. अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः।
   तन्निर्वृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम् ।। –वही 1/12
3. यस्येतिवृत्तस्य परप्रयोजनस्य सतस्तत्प्रसंगात्स्वप्रयोजनसिद्धिस्तत्प्रासंगिक-
   मितिवृत्तं प्रसंगनिर्वृतिः। – वही 1/13 वृत्ति

में सुग्रीव की कथा ।

प्रासंगिक कथा के भी दो भेद हैं - (क) पताका (ख) प्रकरी[1]।

(क) पताका

वह प्रासंगिक कथा जो प्रधान कथा के साथ दूर तक चली जाती है तथा मूल कथा में जिसका महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है एवं स्वयं का प्रयोजन भी अन्वित होता है, उसे पताका कहते हैं,[2] जैसे रामायण में सुग्रीव की कथा ।

(ख) प्रकरी

नाटक में उन छोटे-छोटे प्रसंगों या कथानकों को प्रकरी कहते हैं, जो किसी विशेष अवसर पर आकर मुख्य कथा की सहायता कर समाप्त हो जाते हैं । इनका नायक अपने किसी प्रयोजन की सिद्धि की अपेक्षा न करता हुआ निरपेक्ष भाव से प्रधान नायक का सहायक होता है,[3] जैसे - रामायण में ही जटायु एवं शबरी की कथा ।

- -

1. प्रासंगिकमपि पताकाप्रकरीभेदाद् द्विविधमित्याह

-दशरूपकम् 1/13 वृत्ति

2. व्यापि प्रासंगिकं वृत्तं पताकेत्यभिधीयते ।
पताकानायकस्य स्यान्न स्वकीयं फलान्तरम् ।

-साहित्यदर्पण: 6/67

3. प्रासंगिकं प्रदेशस्थं चरितं प्रकरी मता ।।
प्रकरी नायकस्य स्यान्न स्वकीयं फलान्तरम् ।

- साहित्यदर्पण: 6/68, 69

कथावस्तु का विभाजन

सम्पूर्ण कथावस्तु को तीन भागों में विभक्त किया गया है - 1. प्रख्यात, 2. उत्पाद्य तथा 3. मिश्र[1]।

1. प्रख्यात इतिहासप्रसिद्ध घटनाओं पर आधारित कथावस्तु प्रख्यात कथा कही जाती है[2]। नाटक की कथावस्तु प्रख्यात इतिवृत्त पर ही निर्भर होती है[3]। जैसे - अभिज्ञान शाकुन्तलम्। इस नाटक का इतिवृत्त महाभारत एवं पद्मपुराण की इतिहासप्रसिद्ध कथा पर आधारित है।

2. उत्पाद्य कवि द्वारा कल्पित इतिवृत्त उत्पाद्य इतिवृत्त होता है[4]। जैसे - शूद्रक का "मृच्छकटिकम्" तथा भवभूति का "मालतीमाधव"।

3. मिश्र इस प्रकार के इतिवृत्तों में कुछ अंश इतिहास पर आधारित होता है किन्तु अधिकांश कविकल्पित होता है[5]।

अभिनय की दृष्टि से इतिवृत्त के भेद

रंगमंच पर अभिनय की दृष्टि से कथावस्तु के दो विभाग किये गये हैं - 1. दृश्य-श्रव्य 2. सूच्य[6]।

- -

1. प्रख्यातोत्पाद्यमिश्रत्व भेदात्त्रेधापि तत्त्रिधा। -दशरूपकम् 1/15
2. प्रख्यातमितिहासादेः - दशरूपकम् 1/15
3. तत्प्रख्यातं विधातव्यं वृत्तमत्राधिकारिकम्। - दशरूपकम् 3/24
4. उत्पाद्यं कविकल्पितम् - वही 1/15
5. मिश्रं च संकरात्ताभ्यां दिव्यमर्त्यादिभेदतः।

   -दशरूपकम् 1/16
6. द्वेधा विभागः कर्तव्यः सर्वस्यापीहवस्तुनः।

   सूच्यमेव भवेत् किंचिद् दृश्यश्रव्यमथापरम्॥ - वही 1/56

1. दृश्य-श्रव्य. नाटक में जो कथानक दर्शनीय अर्थात् चित्ताकर्षक, उदात्त, रस एवं भाव से परिपूर्ण होते हैं उनको ही रंगमंच पर प्रदर्शित किया जाता है। इतिवृत्त के इन अंशों को ही दृश्य-श्रव्य कहा जाता है[1]।

2. सूच्य. भारतीय नाट्य परम्परा के अनुसार कुछ घटनाओं का रंगमंच पर अभिनय वर्जित है, जैसे - मृत्यु, प्रणय, युद्ध आदि का अभिनय। रूपक रसाश्रित होते हैं। अतः नीरस वस्तुओं का अभिनय भी वांछनीय नहीं है। इसी प्रकार सभी घटनाओं का अभिनय भी नहीं किया जा सकता, किन्तु कथासूत्र को अविच्छिन्न रखने के लिये इनकी सूचना देना आवश्यक है अतः ऐसे प्रकरणों की "अर्थोपक्षेपकों" के माध्यम से केवल सूचना दे दी जाती है[2]।

अर्थोपक्षेपक

उपर सूच्य विषय के माध्यम-रूप में अर्थोपक्षेपकों की चर्चा की गई है अतः उन्हें स्पष्ट करना उचित है। रंगमंच पर यथोक्त सूच्य वस्तुओं को जिन उपायों से सूचित किया जाता है उन्हें अर्थोपक्षेपक

---

1. दृश्यस्तु मधुरोदात्तरसभावनिरन्तरः ॥

- दशरूपकम् 1/57

2. नीरसोऽनुचितस्तत्र संसूच्यो वस्तुविस्तरः ।

- वही 1/57

अङ्केष्वदर्शनीया या वक्तव्यैव च सम्मता ।

या च स्याद्वर्षपर्यन्तं कथा दिनद्वयादिजा ॥

अन्या च विस्तरा सूच्या सार्थोपक्षेपकैर्बुधैः ।

अङ्केषु अदर्शनीया कथा युद्धादि कथा ।

-साहित्यदर्पणः 6/51, 52 तथा वृत्ति

कथावस्तु में सूच्य प्रकरणों की स्थिति सर्वत्र समान न होने के कारण, उनको रंगमंच पर सूचित करने के लिये अर्थोपक्षेपकों में भी भिन्नता हो जाती है । अतः नाट्यशास्त्रियों ने उनको पांच प्रकार का बताया है - 1. विष्कम्भक 2. प्रवेशक 3. चूलिका 4. अंकास्य 5. अंकावतार[1] । इनका विवरण निम्नांकित है:-

1. विष्कम्भक. विष्कम्भक के द्वारा भूत एवं भावी घटनाओं की सूचना मध्यम श्रेणी के पात्रों द्वारा दी जाती है । यह संक्षिप्त अर्थ वाला होता है तथा इसकी भाषा संस्कृत होती है । शुद्ध एवं संकीर्ण के भेद से विष्कम्भक भी दो प्रकार का होता है [2] । अनेक मध्यम पात्रों के द्वारा प्रयुक्त विष्कम्भक शुद्ध तथा मध्यम एवं अधम पात्रों के द्वारा प्रयुक्त विष्कम्भक, मध्यम या संकीर्ण कहलाता है ।

विष्कम्भक के द्वारा भूत एवं भविष्य की कथा को सूचित करके कथासूत्र को अविच्छिन्न रखा जाता है । यह प्रथम अंक के आमुख में तथा अन्य अंकों के प्रारम्भ में भी रखा जा सकता है[3]।

- -

1. अर्थोपक्षेपकैः सूच्यं पंचभिः प्रतिपादयेत् ।
   विष्कम्भचूलिकांकास्यांकावतारप्रवेशकैः ।। -दशरूपकम् 1/58

2. वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
   संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्र प्रयोजितः ।।
   एकानेककृतः शुद्धः संकीर्णो नीचमध्यमैः । -वही 1/59

3. संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावंकस्य दर्शितः ।।
   -साहित्यदर्पणः 6/55

2. <u>प्रवेशक.</u> प्रवेशक के द्वारा भी भूत एवं भविष्य के कथांशों की सूचना दी जाती है, किन्तु इसका प्रयोग निम्न श्रेणी के पात्रों द्वारा किया जाता है। नाट्यशास्त्रियों ने इसमें भाषा का भी बन्धन लगाया है, अर्थात् इसमें संस्कृत का व्यवहार न होकर केवल प्राकृत भाषा, वह भी निम्न कोटि की शकारी, आभीरी, चाण्डाली आदि का ही प्रयोग होता है।

प्रवेषक का प्रयोग सदैव दो अंकों के मध्य में ही किया जाता है। प्रथम अंक में इसका प्रयोग वर्जित है[1]।

3. <u>चूलिका.</u> यवनिका के भीतर स्थित पात्रों के द्वारा किसी वस्तु या घटना की सूचना देना चूलिका कहलाता है। इसे ही नेपथ्य कथन कहा जाता है, जो कुछ ही वाक्यों में स्थिति का बोध करा देता है[2]।

4. <u>अंकास्य</u> अंक की समाप्ति के समय जाते हुए पात्रों के द्वारा पूर्व अंक से असम्बद्ध, अग्रिम अंक में आने वाली घटनाओं या वृत्त की सूचना देना ही अंकास्य कहलाता है[3]। नाट्यशास्त्र में इसे अंकमुख भी कहा गया है[4]।

- -

1. तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
   प्रवेशोऽङ्कद्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः ।। –दशरूपकम् 1/60

2. अन्तर्जवनिकासंस्थैश्चूलिकार्थस्य सूचना ।। – वही 1/61

3. अंकान्तपात्रैरंकास्यं छिन्नांकस्यार्थसूचनात् । – वही 1/62

4. विश्लिष्टमुखमंकास्यं स्त्रियापुरुषेण वा ।।

4. यदुपक्षिप्यते पूर्वं तदंकमुखमुच्यते ।।

–नाट्यशास्त्र 19/116

साहित्यदर्पणकार ने अंकमुख को पंचम अर्थोपक्षेपक माना है तथा दशरूपक के अंकास्य को अंकावतार के अन्तर्गत ही रखा है[1] ।

5. <u>अंकावतार</u>. इसमें पूर्व अंक की समाप्ति से पहले ही अग्रिम अंक का प्रारम्भ हो जाता है । अर्थात् जहां पूर्वअंक का अन्त हो जाने पर अग्रिम अंक का अभिन्न रूप से अवतरण हो जाता है वह अंकावतार कहलाता है[2] ।

नाट्यदर्पण के अनुसार, जिसमें पूर्व अंक के पात्रों द्वारा सूचना दिये बिना ही, दूसरे अंक का प्रारम्भ कर दिया जाता है उसे अंकावतार कहते हैं ।[3]

इस प्रकार अर्थोपक्षेपकों के द्वारा सूचित करने योग्य अर्थ को सूचित किया जाता है । जहां अधिक वस्तु की सूचना देनी होती है वहां विष्कम्भक, तथा प्रवेशक के द्वारा दी जाती है । अल्प वस्तु यदि सूचनीय हो तो अंकास्य, अल्पतर अर्थ यदि सूचनीय हो तो चूलिका तथा अल्पतम वस्तु हो तो अंकावतार का प्रयोग किया जाता है ।

---

1. यत्र स्यादंक एकस्मिन्नंकानां सूचनाऽखिला ।।
   तदंकमुखमित्याहुर्बीजार्थख्यापकं च तत् ।
   अंकान्तपात्रैर्वांकास्यं छिन्नांकस्यार्थसूचनात् ।।

   - साहित्यदर्पणः 6/59, 60

2. अंकावतारस्त्वंकान्ते पातोऽंकस्याविभागतः ।

   -दशरूपकम् 1/62

3. सोऽंकावतारो यत् पात्रैरंकान्तरमसूचनम् ।

   - नाट्यदर्पण 1/23

संवाद के आधार पर इतिवृत्त का [illegible]

रूपक की कथा का विकास कथोपकथन तथा अभिनय-व्यापार के द्वारा हुआ करता है । रूपकों में संवाद के द्वारा ही पात्रों के चरित्र का परिचय मिलता है, इसलिये नाटकों में संवादों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है । भारतीय नाट्यसमीक्षा के अनुसार कथावस्तु के अन्तर्गत ही संवाद या कथोपकथन का समावेश होता है ।

नाट्याचार्यों ने संवाद के आधार पर भी वस्तु के तीन भेद किये हैं - 1. सर्वश्राव्य 2. नियतश्राव्य 3. अश्राव्य[1] ।

1. सर्वश्राव्य. किसी पात्र की उक्ति यदि रंगशाला में उपस्थित सभी व्यक्तियों के श्रवण योग्य होती है तो उसे "सर्वश्राव्य" कहते हैं । सर्वश्राव्य वस्तु "प्रकाशम्" नाम से भी अभिहित होती है[2] ।

2. नियतश्राव्य. यदि किसी पात्र की किन्हीं उक्तियों को उपस्थित व्यक्तियों में कुछ ही व्यक्तियों को सुनना है तो उसे "नियतश्राव्य" कहते हैं । इसे भी दो प्रकार से अभिव्यक्त किया जाता है - (क) जनान्तिक तथा (ख) अपवारित[3] ।

(क) जनान्तिक नाटक में जिस पात्र को वार्तालाप नहीं सुनना हो, उसके बीच "त्रिपताकाकर" मुद्रा करके जब कोई पात्र दूसरे से मन्त्रणा करता है तो

---

1. नाट्यधर्ममपेक्ष्यैतत्पुनर्वस्तु त्रिधेष्यते ।।
   सर्वेषां नियतस्यैव श्राव्यमश्राव्यमेव च । -दशरूपकम् 1/63, 64

2. सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्याद् - वही 1/64

3. द्विधाऽन्यन्नाट्यधर्माख्यं जनान्तमपवारितम्- वही 1/65

यह संवाद जनान्तिक कहा जाता है[1] । इस प्रकार यह संवाद एक से तो गोपनीय होता है किन्तु बहुतों के लिये श्राव्य होता है[2]।

(ख) अपवारित. जब किसी पात्र के द्वारा मुंह फेर कर दूसरे व्यक्ति से गुप्त वार्ता की जाती है तो यह संवाद अपवारित कहलाता है[3]।

3. अश्राव्य. जब कोई पात्र अपनी उक्ति किसी अन्य को नहीं सुनाना चाहता अथवा कोई अन्य उसके सुनने का अधिकारी नहीं होता, वक्ता स्वयं ही कहता है तथा स्वयं ही सुनता है तो उस संवाद को अश्राव्य कहते हैं । इस अश्राव्य को ही "स्वगत" कहा जाता है[4] ।

नाट्यधर्म की दृष्टि से संवाद के एक अन्य प्रकार का उल्लेख भी नाट्याचार्यों द्वारा किया गया है । इसे "आकाशभाषित" कहते हैं।

4. आकाशभाषित. कथावस्तु के किसी प्रकरण को स्पष्ट करने के लिये जब एक पात्र रंगमंच पर उपस्थित होकर किसी अनुपस्थित पात्र से वार्तालाप करते हुये, दोनों के संवादों को प्रश्नोत्तर के द्वारा स्पष्ट करता रहता है तो उसे "आकाशभाषित" कहते हैं [5]।

इस प्रकार संस्कृत के नाट्याचार्यों ने नाना दृष्टि से नाटक के कथानक पर विचार किया है ।

---

1. त्रिपताकाकरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम् ।।
   अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिकम् । - दशरूपकम् 1/65,66
2. यस्य न श्राव्यं तस्यान्तर ऊर्ध्वसर्वांगुलिं वक्रानामिकात्रिपताका लक्षणं करं कृत्वा अन्येन सह यन्मन्त्र्यते तज्जनान्तिकमिति । दशरूपकम् 1/65,66 वृत्ति
3. रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्यापवारितम् ।। - दशरूपकम् 1/66
   परावृत्य रहस्याख्याऽन्यस्मै तदपवारितम् । - नाट्यदर्पण 1/12

अद्भुतदर्पणम् नाटक के इतिवृत्त की समीक्षा

कौण्डिन्य वंशोत्पन्न इन दार्शनिक महाकवि महादेव की रचना अद्भुतदर्पणम् नाटक यद्यपि रामकथा को आधार मानकर लिखा गया है, तथापि यह राम कथा के एक अंग का ही प्रस्तुतीकरण करता है। आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने आदिकाव्य रामायण में, जहाँ मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम के जन्म से लेकर विवाह, वनगमन, जानकी हरण, सुग्रीव-मित्रता, सीतान्वेषण तदनन्तर सेतुबन्ध के उपरान्त लंकाभियान एवं राक्षसों के साथ युद्ध तथा राक्षस प्रमुखों मेघनाद, कुम्भकर्ण आदि के वध के साथ रावणवध से लेकर राम के राज्याभिषेक तक सर्वांगीण वर्णन किया है, वहीं कवि महादेव ने इस नाटक में अंगद के दूत बनकर लंका जाने से लेकर लंका में सीतामुक्ति के लिये राम द्वारा किये गये अभियानों में, राक्षसों के साथ युद्ध, सीतामुक्ति एवं संक्षेप में राम के राज्याभिषेक की सूचना पर्यन्त कथा का ही वर्णन किया है।

अद्भुतदर्पणम् में कवि का उद्देश्य श्रीराम के उदात्त चरित्र के साथ राम-रावण के युद्ध सम्बन्धी दृश्यों को प्रस्तुत करते हुये, अद्भुत दृश्यों के माध्यम से नाटक को कौतूहलपूर्ण एवं अद्भुत बनाना रहा है। इस उद्देश्य में यथासम्भव कवि को सफलता भी मिली है। सामान्यतया प्रख्यात कथाओं के परवर्ती रचनाकार अपने काव्यों एवं नाटकों में कुछ ऐसे वैचित्र्य का समायोजन करते रहे हैं जो पाठक एवं दर्शक के लिये नाट्यरचना के प्रति उत्तरोत्तर उत्सुकता जागृत करता रहे। ऐसी ही स्थिति इस रचना की भी है।

पूर्व-पृष्ठ का शेष -

5. किं ब्रवीष्येवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति यत्।
श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत्स्यादाकाशभाषितम्॥

अद्भुतदर्पणम् नाटक की कथा शोध का आलोच्य विषय है। अतः रामकथा के उतने ही अंश को, जितने का इसमें वर्णन किया गया है, नाटक की पूर्ण कथावस्तु मानते हुए हमें यह विवेचन करना है कि नाटककार नाट्यशास्त्रीय परम्परा के निर्वाह में इस नाटक में कहाँ तक सफल हुए हैं।

जैसा कि अध्याय के पूर्व में नाट्यीय परम्पराओं एवं विधाओं की चर्चा की जा चुकी है, उस आधार पर यह नाटक दस अंकों में पूर्ण हुआ है। नाट्यविधा की मान्यता के अनुसार पांच से दस अंकों का नाटक प्रशस्त माना गया है। नाटक के प्रारम्भ में कवि ने दो अनुष्टुप छन्दों के माध्यम से अष्टपदी नान्दी का प्रयोग किया है, जिसमें श्री रसज्ञ पुरुषोत्तम भगवान विष्णु तथा चमत्कारिक आत्मानंद प्रदान करने वाली वाग्देवी की वन्दना की गई है[1]। कुशीलवों के द्वारा नान्दीपाठ कर लेने के बाद नाटक के सूत्रधार का प्रवेश होता है। वह रंगपूजाविधान की औपचारिकता की चर्चा करता है तथा कौण्डिन्यवंशीय ब्राह्मणों के आचार-व्यवहार पर प्रकाश डालते हुए, मंगल की कामना करता है। तत्पश्चात् वह विदूषक के साथ वार्ता करते हुए कवि महादेव के वंश की प्रशस्ति करते हुए उनके पिता तथा बालजनसुलभ चपलता के कारण कवि-गणना की चाह करने वाले स्वयं महादेव एवं उनकी रचना की चर्चा करता है। यहीं वह नाटक को

---

1. श्रेयः श्रियो रसज्ञो ददातु पुरुषोत्तमो भवताम्।
   जागर्ति यः पयोधौ तादृक्तरुणी जिघृक्षयेव पुनः।
   अन्यादृशं चमत्कारमात्मानन्दैकसाक्षिणम्।
   दर्शयन्तीं प्रतिव्यक्तिं देवीं वाचमुपास्महे॥

   —अद्भुतदर्पणम् 1/1, 2

अभिनीत किये जाने का उद्देश्य भी जाता है[1] ।

प्रस्तावना की विधा में सूत्रधार ने लक्ष्मण के प्रवेश की सूचना दी है तथा यहीं पर कथावस्तु की प्रारम्भिक स्थिति का भी संकेत दे दिया है, जिससे रंगस्थल पर उपस्थित सामाजिकों को यह ज्ञात हो जाता है कि हनुमान् के माध्यम से लंका की स्थिति ज्ञात होने के पश्चात् राम, समुद्र पर सेतु बांधकर विशाल वानरवाहिनी के साथ लंका में प्रवेश कर उसके प्रमुख गोपुरों को घेरने के लिये वानरसेना को निवेशित कर चुके हैं । इस तरह सूत्रधार ने प्रस्तावना के अन्तर्गत, यद्यपि यहां पर समस्त कथावस्तु की चर्चा नहीं की है तथापि उक्त वर्णन से कथावस्तुस्थिति का ज्ञान दर्शकों को अवश्य हो जाता है । अतः इसे वस्तुसूचना के रूप में माना जा सकता है[2]।

- -

1. सूत्रधारः - यथा विदित एव हि तत्रभवानस्मत्कुलगुरोरभिनवगौभेरेरनितलब्रह्मणः प्राभाकरदीक्षित इति गृहीतनाम्ना ... महर्षेरवतार इव द्वितीयः कुलकुमारनायकं कृष्णसूरिः ।
सूत्रधारः - स किल बालजनसुलभेन चापलेन कविगणनामिच्छन्नाटकमिति यदेतदभिनवमभिनिर्वर्तितवान् , तदद्य कर्मान्तरेषु युष्माभिः प्रयुज्यमानमार्या यावत्परिशोधयन्तीति ।

-अद्भुतदर्पणम्-पृष्ठ-4

2. सूत्रधारः - ...... न्नूवत्र स्यके गूढप्रणिधिना हनुमता निवेदितेषु निखिलेषु वैरिमर्मसु तत्क्षणनिबद्धेन सेतुना निस्तारितसागरमखिलमेव बलीमुखबलमधित्यकासु त्रिकूटस्य निष्डिडितलंकापुरगोपुरं निवेशितवत्येव महाराजरामदेवे समन्ततस्तत्कालविजृम्भितानि महाविमर्दसूचकानि निमित्तानि बहुमन्यमानस्य कुमारलक्ष्मणस्य भूमिकैव प्राथमिकी ।

- वही-पृष्ठ-6

विश्वप्रसिद्ध आदिकवि वाल्मीकि कृत रामायणीय कथा के एकांश का वर्णन अद्भुतदर्पणम् में होने के कारण इसका [illegible] प्रख्यात कथावृत्त है। इस रचना के नायक मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम हैं, जिनका चरित्र धीरोदात्त नायक के रूप में प्राप्त है। उनकी प्रतिष्ठा देवत्व रूप में होने पर भी, वे आदर्श मानव माने गये हैं। नाटक की तृतीय विशेषता उसके रस की [illegible] है। इस आधार पर भी इस रूपक में प्रधानता अंगीरूप में वीर रस की है अतः वस्तु, नेता एवं रस के आधार पर यह नाटक ही सिद्ध होता है।

वस्तुविवेचन

आधिकारिक कथावस्तु

अद्भुतदर्पणम् नाटक की आधिकारिक कथावस्तु लंका में युद्ध की पूर्व पीठिका से प्रारम्भ होती है। जिसमें राम द्वारा अंगद को दूत बनाकर, संधि प्रस्ताव लेकर भेजे जाने के कारण लक्ष्मण का आक्रोश व्यक्त किया गया है। तत्पश्चात् जाम्बवान्, लक्ष्मण आदि के राम के साथ वार्ता करते समय ही विभीषण के अमात्य के द्वारा यह सूचना मिलती है कि राक्षसों के द्वारा मायावी युद्ध की प्रक्रिया का प्रारम्भ हो गया है। इसके बाद ही मायावी राक्षस शम्बर, दधिमुख का वेश बनाकर आता है तथा अंगद के शत्रुपक्ष में प्रवेश की मिथ्या सूचना देता है। इसी प्रकार के अनेक मायावी कृत्यों से वह, भ्रमीभूत वानरसेना के अनेक प्रमुख एवं श्रीराम को तब तक अवसाद में रखता है जब तक कि सुग्रीव के आ जाने से भेद नहीं खुल जाता और वह बन्दी नहीं बना लिया जाता। इन्हीं घटनाओं के मध्य सुग्रीव द्वारा रावण के मुकुट से गिराई गई अनेक मणियों में से एक, अद्भुत प्रभाव वाली अद्भुतदर्पण नामक मणि श्रीराम के

हाथ लग जाती है । इस मणि के माध्यम से श्रीराम अलकापुर में विहार करने वाले रावण तथा त्रिजटा एवं सरमा के द्वारा सीता को [illegible] करने के लिये दिखाई गई मायानाटिका को देखते हैं । मणि के माध्यम से, सीता को सुरक्षित देखकर वे आश्वस्त होते हैं । तत्पश्चात् राम-रावण युद्ध, युद्ध में कुम्भकर्ण, मेघनाद तथा रावण का मारा जाना, विभीषण को लंका का राज्य प्राप्त होना, मय के षड्यन्त्र से सीता का अग्नि-प्रवेश तथा अग्नि द्वारा सीता को सुरक्षित राम को सौंपा जाना इस नाटक में वर्णित है । यही है संक्षेप में अद्भुतदर्पणम् नाटक की आधिकारिक कथावस्तु ।

नाट्यप्रक्रिया में आधिकारिक कथावस्तु के अतिरिक्त दो प्रकार की प्रासंगिक कथावस्तुएं भी होती हैं, जिन्हें पताका एवं प्रकरी नाम दिया गया है ।

पताका कथा

राम का सम्पूर्ण चरित्र पौराणिक एवं विश्वप्रसिद्ध है । जिन महाकवियों ने इनकी सम्पूर्ण कथा का वर्णन किया है, उन कथाओं में यह सिद्ध है कि प्रासंगिक इतिवृत्तों में सुग्रीव तथा विभीषण का वृत्तान्त, दृश्यकाव्य के उन नियमों में खरा उतरता है, जिसके आधार पर उसे पताका कथावृत्त कहा जा सके । किन्तु अद्भुतदर्पणम् में राम के चरित्र का मात्र एक ही अंश वर्णन का विषय रहा है, जो केवल लंकाभियान से लेकर लंकाविजय तक ही सीमित है । इस अल्प अवधि के कथानक में भी सुग्रीव और विभीषण चर्चा के विषय रहे हैं । इसमें सुग्रीव राम की वानरसेना के सेनापति एवं किष्किन्धा के राजा के रूप में ही सामान्यतया चर्चित हैं । इनका वर्णन उसी प्रकार है, जिस प्रकार सेना के अन्य यूथप, हनुमान्, जाम्बवान् आदि का । अतः उनका चरित्र किसी कथावस्तु के रूप में प्रस्तुत नहीं हुआ है । यही कारण है कि उनका वृत्तान्त पताका

कथा के रूप में सिद्ध नहीं हो सकता ।

किन्तु लंकायुद्ध में विभीषण इस नाटक में भी प्रासंगिक हैं । यद्यपि वे रंगमंच पर नाटक के दशम अंक में कुछ समय के लिए ही आते हैं, परन्तु नाटक के दृश्यपटल पर अदृश्य रहते हुए भी विभीषण नाटक के प्रारम्भ से ही चर्चा के विषय रहे हैं ।सर्वप्रथम श्रीराम के समक्ष विभीषण का मन्त्री सम्पाति यह सूचना देता है कि मेघनाद ने विभीषण के घर को अग्नि से भस्म कर दिया है । किन्तु उनके परिवार को मैनाक पर्वत पर सुरक्षित निवेशित कर दिया गया है । विभीषण के रामपक्ष में आ जाने से रावण के परिवार में उनके प्रति कितना आक्रोश है, इस सूचना से दर्शक अवगत हो जाते हैं । इधर राम के लिये विभीषण इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि राम अपने संदेश में उन्हें निरन्तर सावधान रहने के लिये सूचित करते हैं । वे मानते हैं कि विभीषण और सुग्रीव के द्वारा निर्मित लीक पर ही राम का मार्ग निर्धारित हो सकता है[1] ।

विभीषण का महत्व तो इस नाटक में निरन्तर प्रासंगिक रहा है क्योंकि वे इन मायावी राक्षसों के मध्य में वानरसेना के लिये अभिज्ञान-मुद्रा के भी विशेषज्ञ हैं । स्वयं शम्बर भी विभीषण के कारण अपनी माया की विफलता के प्रति आशंकित है[2] ।

---

1. रामः – मद्वचनाद्वक्तव्यस्तत्रभवान्वयस्यविभीषणो वयस्यसुग्रीवश्च- "सर्वथा अप्रमत्ताभ्यां परिभ्रमितव्यम्" इति ।
धुर्यौ मनोरथस्य हि सुग्रीवविभीषणौ यत्रचरतः ।
स किलास्माकं पन्थाश्चक्राणामिव परिभ्रमताम् ।।

–अद्भुतदर्पणम् 1/26

2. शम्बरः – – – – – – विभीषणः खलु परायणमेतेषामस्मन्मायानिस्तरणे ।

– वही अंक 2, पृष्ठ 20

षष्ठ अंक के अन्तर्गत रावण और उसके नर्म सचिव महोदर के संवाद में भी विभीषण का विषय विद्यमान है । महोदर की वार्ता में ऐसी चर्चा आती है कि यदि रावण राम के साथ किसी प्रकार सन्धि करने में सफल हो भी जाए तो विभीषण का क्या होगा, क्योंकि राम उसे लंका का राजा घोषित कर चुके हैं । रावण भी शंकित है कि विभीषण को किसी अन्य स्थान का राजा बनाने की शर्त पर यदि संधि हो भी जाय तो विभीषण प्रजा में रावण के प्रति विद्रोह उत्पन्न कर, द्वैराज्य की स्थिति बना देगा[1] ।

नाटक के नवम अंक में लंका और निकुम्भिला के संवाद के अन्तर्गत भी विभीषण लंका के भावी राजा के रूप में चर्चा के विषय रहे हैं , जहाँ लंका, निकुम्भिला के हृदय में उत्पन्न भय को दूर करती हुई उसे आश्वस्त करती है कि राक्षसों का विनाश होने पर भी बचे हुए राक्षस कुल के संरक्षक के रूप में विभीषण ही प्रस्तुत होंगे और राम के द्वारा उन्हें लंका का राज्य प्रदान कर दिया जायेगा । तत्पश्चात् रावणवध के उपरान्त नेपथ्य में इस बात की घोषणा कि राम के निर्देश पर लक्ष्मण के द्वारा लंका के अन्दर विभीषण के राज्याभिषेक के समय समस्त प्रजा में हिंसा और वैर का विराम हो जाना चाहिये क्योंकि प्रजा को राजा के अनुकूल होना चाहिये तथा विभीषण से राजा के होने पर प्रजा में भी समता और शील गुण आ जाना चाहिये । स्वयं लंका और निकुम्भिला, जिन्हें हम यहाँ पर रावण की प्रजा के प्रतीक-रूप में देखते हैं, परस्पर विचार विमर्श के पश्चात्

---

1. रावणः - ——— — -

स्थापितोऽपि क्वचिद्रक्षो राज्यहिंसां करिष्यति ।
अर्थं हि तेन द्वैराज्यं राक्षसाधिपतेर्मम ।।

-अद्भुतदर्पणम् 6/4

राजा विभीषण के पक्ष में होकर प्रासंगिक कथा के प्रयोजन की फलप्राप्ति की सिद्धि की सूचना देती हैं[1]।

विभीषण का रंगमंच पर अवतरण बहुत थोड़े समय के लिये, दशम अंक में ही हुआ है। रावणवध के पश्चात् मय के द्वारा, सीता को जल से अग्नि में प्रवेश कराए जाने के उपरान्त जब अग्निदेव राम के लिये सीता को समर्पित कर रहे होते हैं उस समय राम के साथ सुग्रीव और विभीषण भी हैं। यहां विभीषण सीता के अलौकिक प्रभाव के विषय में कहते हैं कि जो कार्य अग्निशिखा नहीं कर सकती वह जनकात्मजा सीता कर सकती है[2]। इसके बाद वे मूर्च्छित त्रिजटा और सरमा को आश्वस्त करते दृष्टिगोचर होते हैं। तदनन्तर वे एक प्रसंग में राम को सूचित करते हैं कि रावण ने दिग्पालों से जो धनराशि बलात् हरण की थी वह उन्हें वापस कर दी गई है। इसके बाद वे पुष्पक विमान को, जो कुबेर से बलपूर्वक अपहरण किया गया था, वापस करने के लिये राम का निर्देश चाहते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि रावण के राज्य, धन एवं ऐश्वर्य पर विभीषण का पूर्ण प्रभुत्व स्थापित हो गया है। यही इस प्रासंगिक कथा की फलप्राप्ति भी है। इतना ही नहीं नाटक के एक दृश्य

- -

1. लंका - - - - -

लंकासीम्नि विभीषणस्य सुहृदः श्रीरामपादेंगितः
ज्ञानोदारकुमारलक्ष्मणकृते राज्याभिषेकोत्सवे।
हिंसावैरविरामसौम्यचरिताः सर्वेऽपि तस्मिन्नृपे
साम्यं शीलगुणेन बिभ्रतु यथा राजा तथा हि प्रजाः॥

-अद्भुतदर्पणम् 9/17

2. विभीषणः - किं बहुना।
न तदग्निशिखा कुर्याद्यत्कुर्याज्जनकात्मजा।

में शूर्पणखा तथा मय जो रावण के वधोपरान्त भी राम के विरोधी रहे हैं, अन्त समय में वे भी अपने षड्यन्त्र में असफल होकर यह स्वीकार कर लेते हैं कि राक्षस कुल के स्वामी राजा विभीषण ही हैं और उन दोनों को उन्हीं का अनुसरण करना चाहिये[1]। इस प्रकार लंका में विद्रोही-वर्ग के भी विभीषण के पक्ष में हो जाने से उनका प्रयोजन पूर्णतः सफल हो जाता है।

इस प्रकार पूर्ण विवेचन से हम इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि नाटक में विभीषण के रंगमंच पर उपस्थित अथवा अनुपस्थित रहने पर भी उनकी कथा का प्रवाह निरन्तर गतिशील रहा है। नाटक के नायक राम के पूर्ण सहयोग एवं प्रतिनायक रावण के विरोध में उनके चरित्र का सफलतापूर्वक प्रयोग हुआ है। इस कथावस्तु का प्रयोजन भी, विभीषण के लंका के राज्यप्राप्ति रूप में सिद्ध हुआ है। अतः अद्भुतदर्पणम् नाटक की कथावस्तु में विभीषण की कथा प्रासंगिक कथावस्तु है। इस कथा की पूर्णस्थिति पर दृष्टिपात करने के पश्चात् इसे "पताका" कथा के रूप में मान्यता दिया जाना समुचित होगा।

प्रकरी कथा

नाटक की कथावस्तु के अन्तर्गत जिन प्रासंगिक कथाओं के विषय में कहा गया है, उसका एक रूप नाट्यशास्त्र में प्रकरी के नाम से अभिहित होता है। प्रकरी ऐसी कथावस्तु है जो नायक की कथा के साथ कुछ समय के लिये सामने आ जाती है। सामान्यतया उस कथा या सम्बन्धित पात्र

---

1. मय - तदिदानीम्।
   दृष्टं द्रष्टव्यमस्माकं कर्तव्यं किमतः परम्।
   विभीषणोऽनुसर्तव्यः स हि राजा कुलस्य नः।।

   -अद्भुतदर्पणम् 10/11

का प्रयोजन निरपेक्ष भाव से किसी न किसी रूप में मात्र नायक की सहायता करना ही होता है। अद्भुतदर्पणम् की आधिकारिक कथावस्तु के सन्दर्भ में यदि भलीभांति निरीक्षण किया जाय तो दो ही ऐसे पात्र मिलते हैं जिनके प्रसंग को प्रकरी कथा के अन्तर्गत रखा जा सकता है। ये हैं - त्रिजटा तथा उसकी सहयोगिनी सरमा। यद्यपि ये दोनों महिला राक्षसियां सीता की सुरक्षा एवं प्रतिबन्ध के लिये रावण द्वारा नियुक्त की गई हैं, तथापि इनका जो चरित्र इस नाटक में प्रस्तुत किया गया है उससे ये सीताजी की सखी एवं सहायिका होती हुई कथानक की सहायिका सिद्ध होती हैं।

त्रिजटा का प्रथम सन्दर्भ तो नाटक के प्रथम अंक में ही उस प्रसंग में आया है, जिसमें विभीषण का मन्त्री सम्पाति, मेघनाद द्वारा अवरुद्ध किये गये विभीषण के भवन से उनके परिवार को त्रिजटा द्वारा दी गई सूचना के आधार पर ही सुरक्षित निकालने में सफल होता है[1]। त्रिजटा का दूसरा कथन आता है पंचम अंक में, जब शूर्पणखा द्वारा राम के कटे हुए मायामय सिर को दिखाए जाने के साथ ही सीता मूर्च्छित हो जाती हैं तब त्रिजटा व्याकुल होकर उन्हें संज्ञालाभ कराने के लिये अनेक प्रयास करती है। सीता की मूर्च्छा भंग न होने पर वह अन्तिम प्रयास में, दण्डकारण्य में राम के द्वारा

---

1. संपातिः - सखे अनल, तत्रैव दुरात्मनो मेघनादस्य व्यवसितं त्रिजटामुखादाकर्ण्य सद्य एव देवस्य कुटुम्बकमादाय गूढेन पथा मैनाके निवेश्य निवृत्तवानस्मि।

- अद्भुतदर्पणम् अंक 1, पृष्ठ 8

सीता के मनःशिला का तिलक लगाने के साथ ही कपोलचुम्बन के एक गुप्त प्रसंग को, सीता को सुनाकर, स्वयं को वास्तविक त्रिजटा सिद्ध करते हुए सीता को आश्वस्त करती है[2]। सलज्ज सीता त्रिजटा का आलिंगन कर लेती हैं। इस प्रसंग से नाटक की कथा में यह भी सिद्ध हो गया है कि त्रिजटा बहुत पहले से ही सीता की अन्तरंग सखी और सहायिका बन चुकी है। त्रिजटा सीता की आज्ञा से राम-रावण के युद्ध का वास्तविक वृत्तान्त ज्ञात करने रणभूमि तक भी जाती है।

इसके पश्चात् त्रिजटा एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य करती है और वह है मायानाटिका का प्रदर्शन, जिसमें वह उस समय तक हुए राम एवं रावणपक्ष के युद्ध का माया द्वारा साक्षात् प्रदर्शन करती है। इस नाटिका को देखकर एक ओर जहाँ सीता, युद्ध में राम और लक्ष्मण के सुरक्षित एवं सशक्त होने के प्रति आश्वस्त होती हैं, वहीं दूसरी ओर अद्भुतदर्पण मणि के चामत्कारिक प्रयोग के द्वारा, मायानाटिका को देखते हुए स्वयं राम और लक्ष्मण भी सीता की सुरक्षा एवं सत्यता के प्रति पूर्णतः संतुष्ट हो जाते हैं। इसी नाटिका के प्रदर्शन में त्रिजटा की एक सखी सरमा भी पीठमर्दिका के रूप में कार्य करती हुई, उसकी सहायिका बनकर प्रस्तुत होती है तथा यथावसर विभिन्न प्रसंगों में सीता को सहायता

---

1. त्रिजटा - ननु मनःशिलातिलककल्पनफलकपोलचुम्बनं लज्जालुकापि मयार्यपुत्रस्यैकदा रमप्रतिषिद्धमासीदिति त्वयैव कथितवचनाभिज्ञानं धारयन्ती किं तेऽहं सत्यं त्रिजटास्मि। अथवाहमपि ते माया।

-अद्भुतदर्पणम् अंक 5, पृष्ठ-62

और आश्वासन प्रदान करती है क्योंकि त्रिजटा की ऐसी ही जाता है[1] ।

इन दोनों का सीता के प्रति पूर्ण स्नेह तथा सदाशयत्व का परिचय दशम अंक के उस प्रसंग में भी मिलता है, जहां मय के षडयन्त्र के कारण सीता के अग्निप्रवेश की स्थिति को देखकर वे दोनों मूर्च्छित हो जाती हैं । यह मूर्च्छा उस सुखद प्रसंग के साथ भंग होती है, जब स्वयं राजा विभीषण सीता के सकुशल अग्निदेव के द्वारा सौंपे जाने के पश्चात् उन दोनों को धैर्य बंधाते हैं[2] । इनका सीता के प्रति निस्पृह प्रेम सीता के पूर्णमनोरथ होने पर हर्षध्वनि के साथ प्रस्फुटित हो उठता है[3]।

सीता भी त्रिजटा और सरमा से बहुत स्नेह करती हैं । अयोध्या के लिये प्रस्थान करते समय वे उन दोनों को भी प्रसन्नता और आग्रह के

- -

1. त्रिजटा - [उत्थाय ।] सखि सरमे, त्वमेवात्र रावणप्रभवनाटकवस्तुके मैकावलना प्राग्वृत्तान्तमारभ्य दर्शनीयेऽत्र मायात्मके पीठमर्दिका भूत्वा तेषु तेषु रसान्तरेषु पर्यवस्थापय प्रियसखीं वैदेहीम् ।

—अद्भुतदर्पणम् अंक 7, पृष्ठ-85

2. विभीषणः - [दृष्ट्वा] कथं प्रमुग्धे त्रिजटा सरमा च ।
आश्वसिहि त्रिजटे त्वं त्वमपि च सरमे समाश्वसिहि ।
किमिह महोत्सवपूर्णे प्रकृतजायां प्रमोहेन ।।

—वही 10/16

3. त्रिजटासरमे - [आश्वस्य सविस्मयं सकरुणं च ।] सखि जानकि, कथं दहनं प्रविष्टासि । आवामपि तत्रैव प्रविशावः । कथं तातेनैवाग्निदेवेन जानक्युत्सङ्गे परिलाल्यते । अथवा - - - - - - ।

—वही अंक 10, पृष्ठ - 140

साथ अपने समीप बैठा लेती हैं । इस प्रकार सीता के मनोरथसिद्धि में ही त्रिजटा और सरमा की प्रसन्नता भी निहित है[1]। इस तरह अद्भुतदर्पणम् नाटक में प्रासंगिक कथा के दूसरे भेद प्रकरी के रूप में त्रिजटा और सरमा का कथावृत्त ही सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है ।

अद्भुतदर्पणम् में अर्थोपक्षेपक

विष्कम्भक

प्रथम विष्कम्भक- नाटक के प्रथम विष्कम्भक का प्रयोग द्वितीय अंक में हुआ है । इसके पूर्व प्रथम अंक में माया के द्वारा सुग्रीव के सेवक दधिमुख का रूप धारण किये हुए, मायावी राक्षस शम्बर के प्रति शंकालु होकर, राम उसे जाम्बवान् के हाथ में सौंप देते हैं कि उसकी सत्यता का प्रमाण विभीषण से प्राप्त करें ।

इसी प्रसंग को द्वितीय अंक के प्रारम्भ में विष्कम्भक के अन्तर्गत बढ़ाया गया है । इसमें शम्बर की उक्ति से ज्ञात होता है कि श्रीराम के द्वारा भेजे गए पत्र को पढ़ने के लिये उसका हाथ मुक्त किया ही गया था कि वास्तविक दधिमुख वहां पहुंच गया और उसे जाम्बवान् के हाथों में पकड़ाकर शम्बर स्वयं तिरोहित होकर मुक्त हो गया है । वास्तविक दधिमुख के वार्तालाप से जाम्बवान् भी भ्रमित हो जाते हैं । इसी बीच शम्बर माया के द्वारा विभीषण का रूप धारण कर पुनः जाम्बवान् को ठगने की बात सोचता है और इसी प्रसंग में वह यह भी निर्णय लेता है कि वह राम को भ्रमित कर, उनके आगामी कार्यक्रम में बाधा डालकर विलम्ब करा देगा ।

---

1. त्रिजटासरमे - (विमानारोहणं रूपयन्त्यौ दृष्ट्वा सहर्षम् ।) दिष्ट्या दृष्टा सम्पूर्णमनोरथा प्रियसखी जानकी ।

इस प्रकार इस विष्कम्भक का उद्देश्य मायावी शम्बर को मुक्ति प्रदान कराना है। यहाँ यह भी सूचित होता है कि शम्बर राम के कार्यक्रम में विलम्ब उत्पन्न करने का उपक्रम करेगा। इसी आधार पर द्वितीय अंक की कथा का स्वरूप तैयार किया गया है, जिसके अन्तर्गत शम्बर पहले दधिमुख तत्पश्चात् अंगद का रूप धारण कर अपनी बातों से श्रीराम तथा लक्ष्मण को भ्रमित कर देता है। इसी बीच मेघनाद ... प्राप्ति की साधना सम्पन्न कर लेता है।

द्वितीय विष्कम्भक. चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में दूसरे विष्कम्भक की योजना की गई है। इसमें वस्तुतः अनेक कार्यों की सूचनामात्र दी गई है, जैसे जाम्बवान् और दधिमुख को यह पूर्ण विश्वास हो गया है कि वे दधि-मुख का वेश धारण करने वाले राक्षस के द्वारा वंचित कर लिये गये थे और यहाँ तक कि उस राक्षस ने विभीषण बनकर दधिमुख के वध का भी उपक्रम किया था। इसी प्रसंग में जाम्बवान् की इस चिन्ता को भी व्यक्त किया गया है कि निश्चित ही शम्बर श्रीराम के पास जाकर कोई गड़बड़ी कर रहा होगा। अतः वहाँ शीघ्र पहुंचना है।

इधर दधिमुख को भी सुग्रीव की चिन्ता है। जाम्बवान् के द्वारा सूचना प्राप्त होती है कि अद्भुतदर्पण नामक मणि, रणक्षेत्र के मैदान में आकर गिरी, जिसके अद्भुत प्रभाव को जानकर विभीषण ने उसे श्रीराम के पास पहुंचा दिया है। यहाँ जाम्बवान् के द्वारा ही यह सूचना भी प्राप्त होती है कि महाराज रामदेव लंका के उत्तर गोपुर में पहुंच गये हैं तथा रावण को प्रताडित कर सुग्रीव भी उनके पास चले गये हैं।

तृतीय विष्कम्भक. पंचम अंक के प्रारम्भ में कवि ने तृतीय विष्कम्भक की व्यवस्था की है। इसके अन्तर्गत माल्यवान् और मय का संवाद प्रस्तुत किया गया है। यहाँ श्रीराम के विष्णु का अवतार होने की विशिष्ट सूचना दी

गई है। इस सन्दर्भ में माल्यवान् की मान्यता है कि संयुग में [illegible] जैसे भयंकर आयुध को भी जिसने तृण के समान नष्ट कर दिया है, वह राम साधारण मनुष्य नहीं अपितु मनुष्यरूपधारी कोई विशेष तत्त्व है[1]। वह राम की समस्त प्रक्रियाओं एवं विगत [illegible] से भी यह सिद्ध करता है कि वे विष्णु के अवतार ही हैं। यही नहीं माल्यवान् यहां तक आश्वस्त है कि विष्णु चार रूपों में विभक्त होकर तो [illegible] हुए ही हैं, साथ ही लंका के सर्वनाश के लिये सीता के रूप में उनका ही पांचवां अंश रावण को विमोहित किये हुए है[2]।

इसी विष्कम्भक में माल्यवान् द्वारा यह भी सूचना दी गई है कि मात्र सीता प्रत्यावर्तन की बात कहने पर ही, [illegible] कहकर विभीषण को नहीं निकाला गया है, अपितु उनके निस्तारण में राजनैतिक, आन्तरिक परिस्थितियां भी कारण हैं[3]।

---

1. [illegible] दिविषदा-
   मपि प्रायो [illegible] सहनमेव प्रतिविधिः।
   [illegible]देतन्नागास्त्रं तृणमिव विधूतं यदि तदा
   वदामो रामाख्यं ननु किमपि तत्त्वं नरवपुः॥
   -अद्भुतदर्पणम् 5/3

2. एकश्चतुर्धा जातो यस्तस्यांशः पंचमो ह्ययम्।
   सर्वनाशाय सीतेति सम्मोहयति रावणम्॥
   -वही 5/11

3. रक्षःश्रीयुवराजभावसमता निष्पन्नयात्रया
   तस्मिन्निन्द्रजिता मुहुः प्रकटितं यद्वैरमत्पूर्जितम्।
   तद्गूढं परिवर्धयन्दशमुखस्तैस्तैर्मयोपक्रमे-
   र्बन्धुक्षोभभिया विहाय नियमं व्युत्थानमत्मै हत॥
   -वही 5/15

तत्पश्चात् कुछ युद्ध की सूचनाएं भी इस विष्कम्भक में दी गई हैं, जैसे - प्रहस्त का वध हो चुका है अतः रावण युद्ध की तैयारी कर रहा है। उसके आदेश पर कुम्भकर्ण को जगाया जाना है। दूसरी ओर त्रिजटा आदि राक्षसियों के द्वारा प्रमदवन में सीता की रक्षा में सावधानी बरती जानी है। कुमार मेघनाद गूढ़मन्त्र सन्धान में लगे हुए हैं और अतिकायप्रमुख कुमारवर्ग युद्ध की तैयारी में हैं।

इस विष्कम्भक में अद्भुतदर्पण मणि की भी चर्चा है। यहां माल्यवान् अत्यन्त खेदपूर्वक यह बताता है कि सुग्रीव के द्वारा, अकस्मात् आक्रमण से गिरे हुए रावण के मुकुटों में से यह मणि गिर गई, जिसे सम्पाति ने विभीषण को दिखाया तथा उन्होंने उस मणि को श्रीराम के हाथ में सौंप दिया[1]। यहीं पर रावण के पक्ष में किस प्रकार परिस्थितिवश पराजय की संभावना के कारण निराशा व्याप्त है, इसे भी माल्यवान् व्यक्त करता है। मय की उक्ति से यह ज्ञात होता है कि विश्वामित्र के द्वारा दिव्यास्त्र तथा ऋषि अगस्त्य से धनुष श्रीराम को प्राप्त हुए हैं। यहीं पर यह भी सूचना देकर कि महाराज लंकेश्वर का प्रिय अनुचर विद्युज्जिह्व समर से आ रहा है, विष्कम्भक समाप्त हो जाता है।

<u>दशम अंक में विष्कम्भक की सन्देहास्पद स्थिति :-</u>

निर्णयसागर प्रेस द्वारा ख्रिस्ताब्द 1938 में काव्यमाला 55 के

- -

1. आकस्मिकप्लुतकपीन्द्रपदाभिघात -
   निर्धूतरावणकिरीटतटच्युतेषु।
   आशावपातिषु मणिष्वयमेक एव
   संपातिना स्वयमदर्शि विभीषणाय ।।
   तेन चापि परिज्ञातमहिमामणिरद्भुतः।

अन्तर्गत प्रकाशित अद्भुतदर्पणम् नाटक की प्रति में दशम अंक के अन्तर्गत, अंक के प्रारम्भ में ही मय तथा शूर्पणखा का संवाद प्रस्तुत किया गया है । इस संवाद प्रकरण में सर्वप्रथम मय के द्वारा, रावणवध के पश्चात् मारे गए राक्षसों के प्रति खेद प्रकट करते हुए तथा इसके प्रतिकारस्वरूप कुछ न कर पाने की स्थिति में स्वयं के जीवन को व्यर्थ बताया गया है । मय समस्त राक्षसजाति एवं रावण के विनाश का एकमात्र कारण सीता को मानता है । अतः वह सीता से प्रतिशोध लेने के लिये सीता के विरुद्ध ही कोई प्रतिक्रिया करना चाहता है । इस कार्य में शूर्पणखा उसकी सहायिका है । शूर्पणखा से उसे सूचना प्राप्त होती है कि चिरकाल तक शत्रुगृह में निवास करने के कारण सीता के प्रति राम का मन मन्दराग है । इस सूचना के आधार पर मय अपना षड्यन्त्र तैयार करता है, जिसके अन्तर्गत वह स्वयं माया से राम बनकर राम और सीता के मिलन से पूर्व ही सीता के सम्मुख जाकर सीतापरित्याग की घोषणा करने की बात कहता है । उसकी योजना यह है कि राम द्वारा अपना परित्याग हुआ जानकर सीता या तो अग्नि में अथवा समुद्र में प्रवेश कर जायेंगी ।

इसी वार्तालाप के अन्तर्गत नाटककार लंका के महाविनाश की कारण शूर्पणखा को भी बताना चाहता है । इसलिये परिहास में ही सही मय शूर्पणखा से कहता है कि यदि वह दण्डकारण्य में राम तथा लक्ष्मण के प्रति अत्यधिक कामुक न हुई होती तो यह विनाश भी न हुआ होता[1] ।

---

1. मयः – (सपरिहासम्) वत्से, किं बहुना

   रामो वा त्वां वृषस्यन्तीं लक्ष्मणो वा भजेत चेत् ।
   न सीतापहृतास्य स्यान्न च स्याद्रक्षसां वधः ।।

   –अद्भुतदर्पणम् 10/6

इस प्रकरण में सीता के अग्नि प्रवेश का पूर्वरूप व्यक्त किया गया है, तदनन्तर नाटक में सीता के अग्निप्रवेश की सूचना नेपथ्य के द्वारा दी जाती है । प्रारम्भ से लेकर इस वृत्तान्तपर्यन्त नाटक में शूर्पणखा एवं मय को रंगमंच पर उपस्थित ही दिखाया गया है । यहाँ तक कि मय, सीता के अग्निप्रवेश एवं अग्नि से अप्रभावित रहने की समीक्षा भी करता है और अपने कृत्य में असफल होकर शूर्पणखा के साथ विभीषण के पक्ष में हो जाने की बात भी कहता है । इन संवादों में मय, शूर्पणखा से स्पष्ट कहता है कि वह स्वयं राम बनकर जनसभा में सीता का परित्याग कर देगा[1], ऐसी स्थिति में नेपथ्य से सीता के अग्निप्रवेश की सूचना से पूर्व, नाटकीय परम्परा के अनुसार मय और शूर्पणखा को अपने वार्तालाप के उपरान्त रंगमंच से बाहर निकल जाना चाहिए था, तत्पश्चात् जब नेपथ्य में सीता के अग्निप्रवेश की सूचना दी जा रही है, उस समय जिस प्रकार सरमा और त्रिजटा का प्रवेश बताया गया है, उसी प्रकार अग्निप्रवेश की प्रतिक्रिया व्यक्त करने वाले शूर्पणखा एवं मय को भी रंगमंच पर पुनः प्रवेश की प्रक्रिया द्वारा प्रस्तुत किया जाना ही उचित प्रतीत होता है । किन्तु यहाँ इस प्रक्रिया का प्रयोग नहीं किया गया है तथा सम्पूर्ण संवादप्रकरण में मय तथा शूर्पणखा रंगमंच पर उपस्थित ही रहते हैं ।

इस प्रकरण में वृत्त एवं वर्तिष्यमाण अनेक वृत्तान्तों की

---

1. मयः --------

अहं रामो भूत्वा जनसदसि सीतामुपगतां
परित्यक्ष्याम्येनां परभवनवासं प्रकटयन् ।
ततः सा रोषान्धा नवमसहमाना परिभवं
प्रवेक्ष्यत्यम्भोधिं दहनमथवा शोकविवशा ।।

—अद्भुतदर्पणम् 10/8

संक्षिप्त सूचना मध्यम पात्रों द्वारा दी गई है । अतः यह अंश विष्कम्भक के रूप में माना जाना चाहिए था, किन्तु ऐसा न होने से यहां विष्कम्भक की स्थिति सन्देहास्पद प्रतीत होती है ।

अंकास्य

अर्थोपक्षेपक का एक अन्य रूप अंकास्य, नवम अंक की समाप्ति एवं दशम अंक के प्रारम्भ होने की स्थिति में पाया जाता है । नवम अंक में लंका और निकुम्भिला के संवादपरक दृश्यों के अन्तर्गत जहां लंका की शान्ति व्यवस्था, विभीषण के राज्याभिषेक तथा सीता के श्रीराम के समीप पहुंचाये जाने की प्रक्रिया आदि की सूचनाएं दी जा रही हैं, वहीं लंका अचानक मय की चर्चा छेड़ देती है कि अपनी पुत्री मन्दोदरी की दुर्दशा से खिन्न मय न जाने क्या कर रहा हो[1] । लंका की इसी उत्सुकता के साथ नवम अंक समाप्त हो जाता है । इसी स्थिति में दशम अंका का प्रारम्भ मय की चिन्ता से होता है ।

दशम अंक के प्रारम्भ में मय लंका के विनाश से दुःखी है और प्रतिकारस्वरूप कुछ न कर पाने के कारण अपने जीवन को धिक्कारता है[2] ।

- -

1. लंका - ﴾विचिन्त्य﴿
अबालवृद्धमनुनीतमिहाद्य पश्याम्याश्वासितं जनमनेन विभीषणेन ।
मन्दोदरीं दुहितरं तु विलोक्य खिन्नो नो वेद्मि किंनु मय एष करिष्यतीति ।।

—अद्भुतदर्पणम् 9/21

2. मयः - ﴾सास्रम्﴿ अहो, कथमकाण्डप्रलयो रामेण राक्षसानाम् ।
सर्वे हा बत राक्षसा विनिहताः स्त्रीबालवृद्धान्विता
मुक्ताः केऽपि महोदरप्रभृतयो जात्यानया त्याजिताः ।
तत्तस्मिन्ननिधास्यतः प्रतिविधिं यं कंचिदेव मे

-

वह प्रतिशोध लेने के लिये सीता की हत्या का षडयन्त्र भी बनाता है । इस प्रकार दशम अंक के कथानक का नवम अंक में संकेत होने से यहां अंकास्य नामक अर्थोपक्षेपक की स्थिति मान्य है ।

<u>अंकावतार</u>

इस नाटक में अंकावतार की प्रक्रिया कई अंकों में प्राप्त होती है, जिनमें दृश्य तथा पूर्वअंक की समाप्ति पर भी समाप्त न होने के कारण, आगामी अंक में अवतीर्ण हो जाती है । ऐसी स्थिति द्वितीय अंक की समाप्ति तथा तृतीय अंक के प्रारम्भ में उपस्थित हुई है । यहां द्वितीय अंक के अन्त में लक्ष्मण स्वगत कथन करते हैं कि अब मैं शीघ्र ही बिना किसी विघ्न के आर्य को उत्तर गोपुर प्रदेश की ओर ले चलता हूं तथा वे श्रीराम को मार्ग दिखाते हैं[1] । इसी प्रसंग को तृतीय अंक में आगे बढ़ाया गया है जहां श्रीराम पुनः आगे बढ़कर त्रिकूट पर्वत पर पहुंचते हुए प्रदर्शित किये गये हैं[2] ।

नाटक में दूसरा अंकावतार पंचम अंक की समाप्ति तथा षष्ठ अंक के प्रारम्भ में प्राप्त होता है । पंचम अंक में त्रिजटा और सरमा सीता को

- -

1. लक्ष्मणः - (स्वगतम्) अपि नाम पुनरविघ्नितमेव झटित्युत्तरगोपुरोद्देशमार्यमुपानयेयम् । (प्रकाशम्) । इत इतस्तावदार्यः ।
   रामः - तद्वत्स, त्वरिततरं संभावयावः । (इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)
   - अद्भुतदर्पणम् अंक 2 पृष्ठ 3।

2. लक्ष्मणः - (स्वगतम् ।)(सहर्षोत्साहम् ।) नन्वसाविदानीमार्यः ।
   मन्दं पदानि हि ददत्प्रतिपत्तिशून्या-
   न्यादीपितो हृदि रुषा मुहुरुत्कयेव ।
   क्षुद्रैरनुक्षणकदर्थितयापि गत्या
   प्राप्तव्यदेशमभिराडिव नीत एव ।।
   - वही अंक 4, पृष्ठ 3।

भावनात्मिका दिखाने का उपक्रम करती हैं, जहां अन्त में सरमा कहती है कि इस दारुपर्वत की आड़ में सीता हो जाएं ताकि उन्हें दर्शनीय दिखा दूं, जब तक कि वहां कोई नहीं आता। इसी प्रकार छठे अंक के प्रारम्भ में इसी वार्तासूत्र को नेपथ्य द्वारा आगे बढ़ाकर कहा जाता है कि हे जानकी अब तुम निश्चिन्त होकर देखो, मैं तुम्हें स्वामी रावण का विजय महोत्सव दिखाती हूं, जब तक कि शूर्पणखा अन्यत्र गई है[1]। इस प्रकार पंचम अंक में विरमित कथाविषय को, षष्ठ अंक के प्रारम्भ में आगे बढ़ा दिया गया है। अतः इन दोनों अंकों में अंकावतार अर्थोपक्षेपक ही है।

तीसरा अंकावतार षष्ठ अंक की समाप्ति तथा सप्तम अंक

---

1. सरमा - तदित एव दारुपर्वततिरोधाने शिंशपावृक्षान्तरिता भूत्वा पश्यतु जानकी। दर्शयामि यदस्या दर्शनीयं यावन्न कोऽप्यन्यो जनोऽत्रागच्छति।

   त्रिजटा - एवमेतत्।

   सरमा - सखि जानकि, तत्रैवोपसर्पामः।

   -अद्भुतदर्पणम् अंक-5, पृष्ठ-64

2. {नेपथ्ये}

   सखि जानकि, अवहिता प्रेक्षस्व तावत्। भर्तुं रावणस्य विजयमहोत्सवं तव दर्शयामि। यावच्छूर्पणखान्यतो गच्छति।

   -वही अंक-6, पृष्ठ-65

के प्रारम्भ में उपलब्ध होता है । यहाँ अद्भुतदर्पण मणि के द्वारा राम और लक्ष्मण, अशोकवनिका में विचरण करने वाले रावण और महोदर के वार्तालाप को सुनते हैं,। रावण के उत्तेजित वार्तालाप को सुनकर लक्ष्मण क्रोधित होते हुये कहते हैं कि आर्य, चलिये हम लोग भी बाणों से काटकर, सामने गिराए हुए कुम्भकर्ण एवं मेघनाद के मस्तकों के द्वारा, इस अन्तःपुरविहारी रावण को युद्ध का समाचार प्रदान करें [1] । इसके पश्चात् सप्तम अंक के प्रारम्भ में लक्ष्मण का प्रवेश, राम के साथ उपरोक्त वाक्यावली को दुहराते हुए होता है[2]। अतः यहाँ पर भी अंकावतार अर्थोपक्षेपक प्रयुक्त है ।

चतुर्थ अंकावतार की उपस्थिति, सप्तम अंक की समाप्ति और अष्टम अंक के प्रारम्भ में देखी जा सकती है । यहाँ अद्भुतदर्पण मणि के माध्यम से, मायानाटिका के प्रसंग में, महोदर तथा रावण के संवाद को सुनकर उत्तेजित लक्ष्मण युद्धसमाचार को सूचित करने के लिये, पूर्वअंकावतार की भाँति ही कुम्भकर्ण एवं मेघनाद के काटे हुए सिरों के द्वारा अन्तःपुरविहारी रावण को युद्ध का समाचार देने की बात कहते हैं । यह छन्द के माध्यम से कहा गया वाक्य सप्तम अंक की समाप्ति

---

1. लक्ष्मणः – आर्य, तदावामपि शरनिकृत्तपुरःपातिताभ्यां कुम्भकर्ण-मेघनादयोः शिरोभ्यामावेदयावः समरवृत्तान्तमन्तःपुरविहारिणो लंकेश्वरस्य ।

   रामः – यथा रोचते वत्साय । –अद्भुतदर्पणम् अंक 6, पृष्ठ–81

2. लक्ष्मणः – आर्य, नन्दावामपि शरनिकृत्तपुरःपातिताभ्यां कुम्भकर्ण-मेघनादयोः शिरोभ्यामावेदयावः समरवृत्तान्तमन्तःपुरविहारिणो लंकेश्वरस्य ।

   रामः – यथा रोचते वत्साय । –वही अंक 7, पृष्ठ–81

और अष्टम अंक के प्रारम्भ में प्रविष्ट होते हुए लक्ष्मण के द्वारा समान रूप से कहा गया है[1]। अतः यहाँ भी अंकावतार अर्थोपक्षेपक है।

चूलिका

यह अर्थोपक्षेपक उन दशाओं में प्रयुक्त होता है, जब किसी स्थिति में किसी दृश्य को दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं होता। इसमें नेपथ्य के माध्यम से सूच्य वस्तु की सूचना मात्र दे दी जाती है। इस प्रकार के नेपथ्य में प्रस्तुत किये जाने वाले अनेक सूच्य कथाद्वश्यों का प्रयोग इस नाटक में समुचित रूप से किया गया है। नेपथ्य से सूचना की इस प्रक्रिया को ही चूलिका कहा जाता है।

परिस्थितिवश इस नाटक में अनेक स्थान पर चूलिका का प्रयोग किया गया है। ऐसी भी स्थिति आती है, जब कोई पात्र रंगमंच पर प्रवेश करने से पूर्व ही, प्रस्तुत किये जाने वाले विषय की चर्चा नेपथ्य में कर देता है। जैसे इस नाटक के प्रथम अंक में ही नेपथ्य से स्वर उभरता है कि इसके पश्चात् अग्नि से भस्म कर देने का आदेश दिया गया है[2]। इसे सुनकर मंच पर उपस्थित राम पूछते हैं

---

1. प्रकृतलक्ष्मणः - -------

पुरः शरोत्कृत्तनिपातिताभ्यां द्राक्कुम्भकर्णेन्द्रजितोः शिरोभ्याम्।
अन्तःपुरस्वैरविहारभाजे निवेदयावो रणकर्म राज्ञे ॥

-अद्भुतदर्पणम् अंक 7, पृष्ठ 104, श्लोक-37

लक्ष्मणः - -------

पुरः शरोत्कृत्तनिपातिताभ्यां द्राक्कुम्भकर्णेन्द्रजितोः शिरोभ्याम्।
अन्तःपुरस्वैरविहारभाजे निवेदयावो रणकर्म राज्ञे ॥

-वही 8/1 पृष्ठ 104

2. {नेपथ्ये}

ततः परमग्निसंक्रान्तिरादिष्टा।

कि क्या स्थिति है, तब सम्पाती स्पष्ट करते हैं कि पिछले दिनों मेघनाद ने विभीषण का घर जला देने का आदेश दिया था तथा प्रतीत होता है कि उसी की चर्चा करते हुए अमात्य सम्पाती आ रहे हैं। तत्पश्चात् अमात्य सम्पाती का प्रवेश होता है।

नाट्यशास्त्रीय नियमों के अनुसार युद्धदृश्यों तथा मृत्यु आदि के दृश्यों का रंगमंच पर साक्षात् प्रदर्शन निषिद्ध है अतः ऐसे दृश्यों को भी चूलिका के माध्यम से उपस्थित किया जाता है। इसका प्रयोग नाटक के युद्धदृश्यों में भलीप्रकार किया गया है, जैसे अष्टम अंक में कुम्भकर्ण एवं मेघनाद के युद्धों का नेपथ्य द्वारा वर्णन[1], पुनः नेपथ्य के माध्यम से ही उनके वधदृश्यों का सूचित किया जाना[2]

- -

1. (नेपथ्ये।)

पादाघातैरुदीतैरनुकलमसनिकम्पकुम्भकर्णभि-
र्निश्वासैरप्युदात्तगत्याग तिभिरम्भितारभ्यस्त्याग नभिः।
दृक्पातैर्दिग्विधूतैरनुद्विममवशोत्फूलितोल्कासहस्रै-
रंगैः स्वैर्दुर्निमित्तान्ययमतिगुणयन्कुम्भकर्णोऽभ्युपैति॥

—अद्भुतदर्पणम् 8/38

2. (पुनर्नेपथ्ये।)

अम्भोधौ मन्दराद्रिद्वयमथनदशामूरुयुग्मेन तन्व-
न्सेतुत्रैविध्यमेतत्पयति विरचयन्दारिताभ्यां भुजाभ्याम्।
मूर्ध्ना किंच त्रिकूटं गिरिमपि च नगेन्द्राक्यतुष्कूटभावं
श्रीरामदिव्यत्रिबाणव्यतिकरवशतो हन्यते कुम्भकर्णः॥

—वही 8/40

इसी प्रकार से नवम अंक में रावण युद्ध एवं रावणमृत्यु की सूचना आदि ।

इन नेपथ्य प्रयोगों के अतिरिक्त नाटक के अन्तर्गत विभिन्न दृश्यों के सूचनार्थ अनेक स्थानों पर चूलिका का यथेष्ट प्रयोग किया गया है । इसमें रावणवध के उपरान्त युद्ध की समाप्ति और लंका में सर्वत्र शान्ति-व्यवस्था की स्थापना की सूचना[1] सीता को श्रीराम के समीप ले जाने के उपक्रम की सूचना, विभीषण के राज्याभिषेक, सीता के अग्निप्रवेश[2], अग्निदेव द्वारा सीता को सुरक्षित समर्पित किया जाना आदि सूचनाएं उल्लेखनीय हैं ।

इस प्रकार पूरे नाटक में परिवर्तमान नेपथ्य के रूप में चूलिका अर्थोपक्षेपक का भरपूर प्रयोग किया गया है ।

प्रवेशक

अर्थोपक्षेपक के पंचम भेद प्रवेशक का प्रयोग नाटक के किसी भी दृश्य की सूचना के लिये नहीं किया गया है ।

- -

1. (नेपथ्ये ।)

भो भो हरियूथपाः, समादिशन्ति भवतः तत्रभवन्तो रामदेवपादाः ।
लंकारोधात्स्पृष्टीनां विरमतु पृतना राक्षसेषु प्रहारः
सज्जोऽपि त्यज्यतां तैक्ष्ण्यजितदलिताः प्रहृताः सान्त्वनीयाः ।
स्कन्धावारे पुरे वा भवतु च परितः संचरो निर्विरोधो
लंका यातु प्रसादं पुनरपि च यथा मन्थामुक्ता ब्धिवेला ।।

-अद्भुतदर्पणम् 9/15

2. (नेपथ्ये ।)

अहो बत देवी सीता
मदान्धरक्षोगृहवासदोषाशंकानुषक्तेन रघूद्वहेन ।
त्यक्ता समक्षं महतो जनस्य त्यजत्यहो देहमियं हुताशे ।।

अद्भुतदर्पणम् नाटक की संवाद योजना

नाटकों की संवाद योजना में, श्राव्य, अश्राव्य एवं नियतश्राव्य नामक जो तीन प्रक्रियाएं अपनाई जाती हैं, इनमें सर्वप्रमुख है श्राव्य संवाद । इसे प्रकाशम् शब्द के द्वारा भी अभिहित किया जाता है, जो अन्य नाटकों की भांति इस नाटक में भी ऐसे सभी प्रसंगों में प्रयुक्त हुए हैं, जहां रंगमंच पर सभी के सुनने योग्य संवाद होते हैं ।

दूसरी स्थिति है अश्राव्य संवादों की जिन्हें स्वगतम् भी कहा जाता है । सामान्यतया नाटकों में यह संवाद प्रक्रिया विशेष परिस्थितियों में ही प्रयुक्त होती है । इस नाटक में भी अनेक दृश्यों में, पात्र जब अपने संवादी के प्रति कुछ कहने से पूर्व कोई चिन्तन करना चाहता है, उस समय उस विचारणीय स्थिति को दर्शकों पर व्यक्त करने के लिये स्वगतम् के अन्तर्गत अश्राव्य संवाद का प्रयोग किया गया है । इस नाटक में शम्बर के संवाद प्रकरण में इस प्रकार के संवादों का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है, जिसे विशेष रूप से तृतीय एवं चतुर्थ अंक में देखा जा सकता है । अन्यत्र सभी अंकों में किसी न किसी स्थान पर प्रत्येक पात्र के संवादों में स्वगतम् का प्रयोग हुआ है । वस्तुतः यह नाटकीय कला का महत्त्वपूर्ण अंग है, जिसका प्रयोग संवाद प्रकरणों में लगभग सभी पात्र परिस्थितिवश करते हैं ।

तीसरे हैं, नियतश्राव्य संवाद । इसमें पात्र अपने संवादी के साथ वार्ता करते हुए कभी-कभी उससे बचकर कुछ कहता है । इस संवाद प्रक्रिया के भी दो भेद हैं, 1. जनान्तिक तथा 2. अपवारित ।

नियतश्राव्य संवाद का प्रथम भेद है जनान्तिक । इस प्रक्रिया में रंगमंच पर वार्ता करते हुए कोई पात्र अपने साथियों में से कुछ को बचाकर अपने ही किसी साथी से कोई वार्ता करता है, तो उस स्थिति में जनान्तिक का प्रयोग होता है । क्योंकि यह परिस्थिति नाटक में कहीं नहीं आई है

अतः अद्भुतदर्पणम् में जनान्तिक का प्रयोग नहीं किया गया है ।

इस प्रकार के संवाद का द्वितीय भेद है- अपवारित । इसका प्रयोग अद्भुतदर्पणम् में हुआ तो है किन्तु कुछ ही स्थानों पर । जैसे कि एक प्रकरण में प्रथम अंक के अन्तर्गत दधिमुख का मायारूप बनाए हुए शम्बर के प्रति शंकित होने पर, राम और जाम्बवान् शम्बर को बचाकर परस्पर वार्ता करते हैं, चूंकि शम्बर रंगमंच पर उपस्थित है अतः यह संवाद प्रक्रिया अपवारित के द्वारा ही सम्पन्न की गई है[1]। इसी प्रकार षष्ठ अंक के अन्तर्गत रावण तथा महोदर के संवाद में दो स्थानों पर इस प्रक्रिया का प्रयोग है[2] ।

आकाशभाषित

नाटकों में संवाद की एक अन्य प्रक्रिया भी उपलब्ध होती है, जिसे आकाशभाषित कहते हैं । अद्भुतदर्पणम् में इसका प्रयोग नहीं

---

1. जाम्बवान् - (अपवार्य ।) देव, यथायमयथातथेंगित; तथा मन्ये मायागृहीतवेषो राक्षस इति ।

   रामः - (दृष्ट्वा ।)(अपवार्य ।) साधु, निपुणं दृष्टम् ।

   -अद्भुतदर्पणम् अंक 1, पृष्ठ-17

2. महोदरः -(अपवार्य।) विधुज्जिह्वशतेनापि त्रिजटाशरमयोर्नियुततो वापि । सीताभिजयमकार्ये कर्षति यौवने प्रदर्शयामि ।।

   महोदरः - (अपवार्य ।) कथं मया तिमिरचन्द्रिकातभेदः संपादनीयः ।

   -अद्भुतदर्पणम् अंक-6, पृष्ठ 69, 77

किया गया है ।

इस प्रकार नाटक के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि नाटककार ने, परिस्थितिवश संवाद की जो प्रक्रिया स्वाभाविक ही सामने आगई, मात्र उसी का सामान्य रूप से प्रयोग किया है । केवल नाट्य-शास्त्र के पाण्डित्य का प्रदर्शन करने के लिए ही उनका प्रयोग करना कवि को अभीष्ट नहीं था ।

चतुर्थ अध्याय

पात्र विवेचन

1. नायक के लक्षण । नायकभेद - धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित, धीरप्रशान्त नायक ।

2. अन्य पात्र - नायक के सहायक तथा प्रतिनायक का विवेचन ।

3. नायिका का स्वरूप, नायिकाभेद ।

4. अद्भुतदर्पणम् नाटक के पात्र तथा चरित्र-चित्रण - पुरुषपात्र - राम, लक्ष्मण, रावण, विदूषक महोदर, शम्बर, जाम्बवान्, माल्यवान् तथा मय ।

5. स्त्री पात्र - सीता, त्रिजटा, सरमा, लंका तथा निकुम्भिला ।

चतुर्थ अध्याय

पात्र विवेचन

श्रव्यकाव्य की अपेक्षा , रंगमंच पर सामाजिक सहृदयों के सम्मुख साक्षात् रूप से प्रस्तुत किये जाने के कारण, दृश्यकाव्य का सर्वाधिक महत्त्व है । रंगशाला में उपस्थित दर्शकों के हृदय में रसों की पूर्ण अनुभूति नाटक के दृश्यों के द्वारा हो और वे पूर्ण समय आनन्द एवं मनोरंजन की स्थिति में निमग्न रहें, इसके लिये नाटक में दृश्यों को सरस एवं सजीव प्रस्तुत करना नाटककार के लिये परमावश्यक है । इसके लिये यह भी आवश्यक है कि वह नाटक में प्रस्तुत किये जाने वाले पात्रों के प्रति उन सभी अपेक्षाओं की पूर्ति करे जो दर्शक को, नाटक के प्रति सम्मोहित रखने के लिये आवश्यक हों ।

नाट्यशास्त्रियों ने नाट्यविधा में पात्रों के इस महत्त्व को समझते हुए उनका नाटक के लक्षण ग्रन्थों में विशद विवेचन किया है । यही नहीं आचार्यों ने नेता को रूपक के भेदक तीन तत्त्वों में द्वितीय स्थान दिया है । नेता शब्द के साथ नायक का सारा परिकर आ जाता है । नायक, नायक के सहायक, नायिका, नायिका की सखियां तथा प्रतिनायक एवं उसके सहयोगी, सभी नेता के अंग माने जाते हैं ।

नायक के लक्षण

नाटकादि रूपकों के इतिवृत्त के नायक में कुछ मूलभूत गुणों की सत्ता अनिवार्य है । इस विषय में नाट्यशास्त्र के आचार्यों ने विस्तृत

लक्षणों का निरूपण किया है । एक प्रमुख लक्षणकार, आचार्य विश्वनाथ महापात्र ने साहित्यदर्पण में नायक का जो लक्षण दिया है, उसमें उन्होंने नायक की निम्न विशेषताओं को महत्त्व दिया है:- वह त्याग की भावना से ओतप्रोत हो, शौर्यसम्पन्न, कुलीन एवं लक्ष्मीवान् हो, सुदर्शन व्यक्तित्व का स्वामी, रूप और यौवन से सम्पन्न, उत्साहवान्, तथा कलाओं में दक्ष हो, उसके प्रति समाज का अनुराग प्रदर्शित हो साथ ही उसका तेजस्वी, विद्वान् एवं शीलवान होना भी अनिवार्य माना गया है [1]। दशरूपककार आचार्य धनंजय ने भी कुछ भिन्नता लिये हुए लगभग ऐसी ही परिभाषा दी है । उनके अनुसार नायक विनम्र, मधुर, त्यागी, चतुर, प्रियवादी, जनप्रिय, पवित्र मन वाला, वाग्मीकुशल, कुलीन वंश में उत्पन्न, मन आदि से स्थिर, युवा, बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा, कला तथा मान से युक्त एवं शूर, दृढ, तेजस्वी, शास्त्रज्ञाता तथा धार्मिक होना चाहिए[2] ।

नायक के भेद

नाट्यशास्त्र के आचार्यों ने नायक को चार प्रकार का माना है । यह भेद नायक की प्रकृति के आधार पर किया गया है । वे चार

- -

1. त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही ।
   दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान्नेता ।।
   -साहित्यदर्पण: 3/30

2. नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः ।
   रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा ।।
   बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः ।
   शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः ।।
   -दशरूपकम् 1/2

भेद हैं - 1. धीरोदात्त 2. धीरोद्धत 3. धीरललित 4. धीरप्रशान्त[1]।

1. धीरोदात्त. धीरोदात्त नायक, नायक के सम्पूर्ण आदर्शों से युक्त होता है। आत्मश्लाघी न होना, महासत्त्वसम्पन्न अर्थात् हर्ष, शोक आदि से अप्रभावित, स्थिर बुद्धि, अपने गर्व को विनयाच्छन्न रखना, दृढ़व्रती होना आदि कुछ ऐसी विशेषताएं हैं, जो नायक को धीरोदात्त नायक का रूप प्रदान करती हैं। राम, दुष्यन्त आदि इसी कोटि के नायक हैं[2]।

2. धीरोद्धत नायक जैसा कि इस नाम से ही स्पष्ट हो रहा है, यह नायक उद्धत प्रकृति का होता है। यह शौर्यादि मदसम्पन्न, असहनशील, समय-समय पर प्रचण्ड रूप धारण करने वाला, आत्मश्लाघी, माया के प्रभाव का प्रदर्शन करने वाला, आवश्यकतानुसार छद्म करने वाला होता है[3]। लक्ष्मण, भीम आदि इसी प्रकृति के नायक हैं।

3. धीरललित नायक धीरललित की परिभाषा करते हुए पण्डित विश्वनाथ तथा आचार्य धनंजय ने उसे चिन्तामुक्त नायक माना है। अर्थात् राजा जिसने

- -

1. धीरोदात्तो धीरोद्धतस्तथा धीरललितश्च।
   धीरप्रशान्त इत्ययमुक्तः प्रथमश्चतुर्भेदः॥
   - साहित्यदर्पण: 3/31

2. अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः।
   स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः।
   - वही 3/32

3. मायापरः प्रचण्डश्चपलोऽहंकारदर्पभूयिष्ठः।
   आत्मश्लाघानिरतो धीरैर्धीरोद्धतः कथितः॥
   - वही 3/33

अपने राज्य के योगक्षेम का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व सचिव आदि पर निवेशित कर, स्वयं को ललित कलाओं, भोगप्रधान सुखों तथा शृंगारिक क्रियाओं में आसक्त कर लिया हो [1]। इस प्रकार के नायक प्रायः नाटिकाओं में हुआ करते हैं। रत्नावली नाटिका का नायक उदयन इसी श्रेणी का नायक है।

4. धीरप्रशान्त इस प्रकार का नायक शान्त प्रकृति का होता है। शान्त प्रकृति प्रायः ब्राह्मणों अथवा वैश्यों की ही होती है अतः यह नायक इन्हीं वर्णों का होता है। दया, विनय एवं दान आदि सामान्य उदात्त गुणों के साथ यह कलाप्रिय भी होता है[2]। रूपक के भेद प्रकरण का नायक धीरप्रशान्त नायक हुआ करता है। ऐसे नायकों की प्रस्तुति के उत्कृष्ट उदाहरण मालती-माधव नाटक का नायक "माधव" तथा मृच्छकटिकम् का नायक "चारुदत्त" है।

प्रत्येक रूपक का नेता इनमें से किसी एक प्रकार का होता है। इन चारों प्रकार के नायकों के प्रारम्भ में जो धीर विशेषण लगाया गया है, उससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय परम्परा के अनुसार नाटकों के प्रमुख पात्र नायक में, धैर्य का होना सर्वथा अनिवार्य है। यही गुण उसे फलप्राप्ति तक पहुंचाने में सफल होता है।

नाटक की परिकल्पना में आचार्यों ने नायक की शृंगारावस्था के व्यवहार के आधार पर चार अन्य भेद भी निरूपित किये हैं, ये भेद हैं- 1. अनुकूल 2- दक्षिण 3. शठ और 4. धृष्ट। इस प्रकार प्रत्येक

---

1. निश्चिन्तो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात्।

- साहित्यदर्पण: 3/34

निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः॥

- दशरूपकम् 2/3

2. सामान्य गुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिकः।

- वही 2/4

के चार भेद होकर, सोलह प्रकार के नायक भेद हो जाते हैं[1]।

1. <u>अनुकूल</u> जो नायक एक ही नायिका के प्रति आसक्त रहता है, वह अनुकूल नायक है[2]।

2. <u>दक्षिण</u> दक्षिण नायक वह है जो अनेक नायिकाओं के प्रति आसक्त होने पर भी ज्येष्ठा नायिका के प्रति सहृदय रहता है[3]।

3. <u>शठ</u> शठ नायक वह है जो ज्येष्ठा नायिका का अपकार तो करता है, किन्तु छिप-छिपकर[4]।

4. <u>धृष्ट</u> जिस नायक के अंगों पर अन्य नायिका के मिलन के चिन्ह स्पष्ट प्रकट होते हों, तथापि वह अयथार्थ कहे, भर्त्सना किये जाने पर भी लज्जित न हो वह धृष्ट नायक कहलाता है[5]।

---

1. एकस्या एभिर्दक्षिणधृष्टानुकूलशठकपि भिस्तु षोडशधा ।

-साहित्यदर्पण: 3/35

2. एकस्यामेव नायिकायामासक्तोऽनुकूलनायक: ।

-वही 3/37 {वृत्ति}

3. एष त्वनेकमहिलासु समरागो दक्षिण: कथित: ।।

-वही 3/35

4. -शठोऽयमेकत्र बद्धभावो य: ।

दर्शितबहिरनुरागो विप्रियमन्यत्र गूढमाचरति ।।

-वही 3/37

5. कृतागा अपि नि:शंकस्तर्जितोऽपि न लज्जित: ।

दृष्टदोषोऽपि मिथ्यावाक्कथितो धृष्टनायक: ।।

-वही 3/36

नायकों की अनुकूल आदि अवस्थाएं श्रृंगार रस में ही होती हैं। इस प्रकार धीरोदात्त आदि नायकों के दक्षिण, धृष्ट, अनुकूल और शठ रूप से 16 प्रकार होते हैं। कभी-कभी यह भी देखने में आता है कि कथाप्रबन्ध की परिस्थितियों के अनुसार एक ही नायक की कई अवस्थाएं पाई जाती हैं, जैसे - प्रारम्भ में वह ज्येष्ठा नायिका के प्रति अनुकूल होता है अतः निष्ठावान् होने से वह अनुकूल नायक की श्रेणी में होता है किन्तु तदनन्तर वह कनिष्ठा नायिका से प्रेमव्यापार करते हुए जब ज्येष्ठा के प्रति भी सहृदय रहता है तो वह दाक्षिण नायक होता है। इसी प्रकार वह किन्हीं परिस्थितियों में कभी शठ अथवा धृष्ट श्रेणी का भी प्रतीत होता है। इस स्थिति में उस प्रधान पात्र के प्रति, यह देखते हुए कि नाटक में उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं आचरण किस प्रकार का है, उसका स्थान निर्धारित किया जाता है।

इन सोलह प्रकार के नायकों के भी नाट्याचार्यों ने उत्तम, मध्यम तथा अधम रूप से तीन-तीन और भेद करते हुए 48 भेद निरूपित किये हैं[1]। इन प्रत्येक प्रकार के नायकों में आठ प्रकार के सात्त्विक गुणों, शोभा, विलास, माधुर्य, गाम्भीर्य, स्थैर्य, तेज, ललित्य तथा औदार्य का होना आवश्यक है।

---

1. एषां च त्रैविध्यादुत्तममध्याधमत्वेन।
   उक्ता नायकभेदाश्चत्वारिंशत्तथाऽष्टौ च ॥
   - साहित्यदर्पणः 3/38

2. शोभा विलासो माधुर्यं गाम्भीर्यं स्थैर्यतेजसी।
   ललितौदार्यमित्यष्टौ सात्त्विकाः पौरुषा गुणाः ॥
   दशरूपकम् 2/10

अन्य पात्र

इतिवृत्त का मुख्य पात्र तो नायक ही होता है, किन्तु उसके परिकर का भी कथावस्तु को रस एवं भाव से परिपूर्ण कर रोचक बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान होता है । इनमें कुछ पात्र तो नायक के सहयोगी होते हैं, जो फलप्राप्ति में नायक की सहायता करते हैं, किन्तु कुछ पात्र ऐसे भी होते हैं जो फलप्राप्ति में विघ्न उत्पन्न करते हैं । इनमें प्रतिनायक मुख्य होता है ।

नायक के सहायक

नाटक में नायक के कई साथी एवं सहायक उपनिबद्ध किये जाते हैं, किन्तु इनमें पताकानायक पीठमर्द सर्वप्रमुख सहायक होता है । यह नायक की फलप्राप्ति में साक्षात् सहयोग देता है । इसके गुणों का वर्णन करते हुए दशरूपककार कहते हैं कि पताकानायक चतुर तथा बुद्धिमान होता है, साथ ही वह प्रधान नायक का अनुचर तथा भक्त होता है । वह प्रधान नायक की अपेक्षा कुछ न्यून गुणों वाला होता है[1]। आचार्य विश्वनाथ भी लगभग इसी प्रकार की परिभाषा करते हुए कहते हैं कि नायक के बहुदूरव्यापी प्रासंगिक इतिवृत्त में, नायक के सामान्य गुणों से कुछ न्यून गुणों वाला "पीठमर्द" नायक का सहायक होता है[2] । वास्तव में पताका प्रासंगिक इतिवृत्त के नायक को ही पीठमर्द कहा जाता है ।

---

1. पताकानायकस्त्वन्यः पीठमर्दो विचक्षणः ।
   तस्यैवानुचरो भक्तः किंचिदूनश्च तद्गुणैः ।।

   —दशरूपकम् 2/8

2. दूरानुवर्तिनी स्यात्तस्य प्रासंगिकेतिवृत्ते तु ।
   किंचित्तद्गुणहीनः सहाय एवास्य पीठमर्दाख्यः ।।

   —साहित्यदर्पणः 3/39

जैसे - रामकथा में सुग्रीव तथा विभीषण पताकानायक हैं अतः ये ही पीठमर्द हैं ।

इसके अतिरिक्त नायक के विभिन्न कार्यों की सिद्धि के लिये, अन्य बहुत से सहायकों की योजना भी नाटकों में की जाती है, यथा - कार्यसहायक, दण्डसहायक, श्रृंगारसहायक तथा धर्मसहायक एवं अन्तःपुर सहायक आदि ।

(क) कार्यसहायक कार्यसहायक के विषय में साहित्यदर्पणकार का मत है कि राजा के कार्यों के विचार में मन्त्री सहायक होता है । यहीं वे "अर्थास्तन्त्रावापादयः" कहकर उन कार्यों को भी स्पष्ट कर देते हैं[1] । तन्त्र का अर्थ है, अपने स्वाधीन देश में किया जाने वाला कोई भी कार्य, इसी प्रकार अवाप से तात्पर्य है, शत्रु के राज्य में किया जाने वाला कोई भी कार्य ।

नायक के अर्थचिन्तन में सहायक का वर्णन, दशरूपक में भी साहित्यदर्पण के समान ही है । यहां कहा गया है कि नायक की अर्थ-चिन्ता इत्यादि में मन्त्री या वह स्वयं अथवा मन्त्री और वह दोनों ही सहायक होते हैं । धीरललित नायक की सिद्धि मन्त्री द्वारा होती है और अन्य नायकों की सिद्धि मन्त्री तथा स्वयं के द्वारा होती है[2] ।

---

1. मन्त्रीस्यादर्थानां चिन्तायां

-साहित्यदर्पणः 3/43

2. मन्त्री स्वयं वोभयं वापि सखातस्यार्थचिन्तने ।।
मन्त्रिणा ललितः शेषाः मन्त्रिस्वायत्तसिद्धयः ।

-दशरूपकम् 2/42, 43

धनिक का मत है कि इसमें कोई नियम नहीं है[1] ।

(ख) दण्डसहायक दुष्टों का दमन करना ही दण्ड कहलाता है, इस प्रकार दुष्टदमन में सहायक दण्डसहायक होते हैं । नायक के दण्डसहायकों का वर्णन दशरूपकम् में इस प्रकार किया गया है- मित्र, राजकुमार, वन विभाग के कर्मचारी अथवा अरण्यवासी, सामन्त तथा सैनिक दण्ड में सहायक होते हैं । साहित्यदर्पण में भी इसी लक्षण का अनुसरण किया गया है[2]।

(ग) शृंगार सहायक नायक के शृंगारिक कार्यकलापों में विदूषक तथा विट उसके सहायक होते हैं । ये प्रायः नायक के गुप्त प्रेमव्यवहार में भी उसके सहायक होते हैं, साथ ही अपनी विभिन्न क्रियाओं से विरही नायक का मनोरंजन भी करते हैं । इन दोनों में भी विदूषकों का नाटक में मुख्य स्थान है[1] ।

1. विदूषक विदूषक संस्कृत नाटकों का एक महत्वपूर्ण पात्र है । वैसे तो वह नाटक में अपनी उक्तियों के द्वारा हास्य तथा व्यंग्य की रचना कर सामाजिकों के मनोरंजन का साधन बनता है, किन्तु उसका कार्य इससे कहीं अधिक गम्भीर है । वह वस्तुतः राजा के कार्यों का आलोचक भी होता है । उसकी उक्ति तीक्ष्ण होती हैं ।

- -

1. अनियमेन मन्त्रिणा स्वेन वोभयेन वाऽङ्गीकृतसिद्धयः इति ।

-दशरूपकम् अवलोक टीका 2/43

2. दण्डे सुहृत्कुमाराटविकाः सामन्तसैनिकाद्याश्च ।

-साहित्यदर्पणः 3/45

सुहृत्कुमाराटविका दण्डे सामन्तसैनिकाः ।

-दशरूपकम् 2/44

दशरूपकम् में इस पात्र का लक्षण बहुत संक्षिप्त है । इसके अनुसार विदूषक हास्य उत्पन्न करने वाला होता है[1]। किन्तु नाट्य-शास्त्र में विदूषक का लक्षण अधिक स्पष्ट है । यहां कहा गया है कि वामन, दन्तुर, द्विजिह्व, विकृतमुख, खल्वाट तथा पिंगलाक्ष विदूषक की रचना करनी चाहिए[2] ।

साहित्यदर्पण में इसे ततोऽधिक स्पष्ट कर दिया गया है । तदनुसार कुसुम, वसन्त आदि नामवाला, अपने कार्य, शरीर एवं वेष-भाषा आदि के द्वारा हास्य उत्पन्न करने वाला, कलहप्रिय, अपने कर्म हास्यादि को जानने वाला विदूषक होता है[3] ।

इसके अतिरिक्त संस्कृत नाटकों में विदूषक नायक का भृत्य नहीं, अपितु मित्र होता है । वह जाति से ब्राह्मण तथा अपनी मोदक-प्रियता व उदरभरण कौशल के लिये भी विख्यात है ।

2. <u>विट</u>. विदूषक के अतिरिक्त विट भी नायक का नर्मसुहृत् होता है । साहित्यदर्पण में विट का लक्षण करते हुए कहा गया है - सम्यक् भोग के द्वारा नष्ट कर दी है सम्पत्ति जिसने ऐसा, धूर्त, नृत्यगीतादि कलाओं

- -

1. हास्यकृच्च विदूषकः । - दशरूपकम् 2/9

2. वामनो दन्तुरः कुब्जो द्विजिह्वो विकृताननः ।
   खल्वाटः पिंगलाक्षश्च स विधेयो विदूषकः ।।
   - नाट्यशास्त्र 35/57

3. कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः ।
   हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः ।।
   - साहित्यदर्पणः 3/42

के एक अंश को जानने वाला, वेश्यालय में होने वाले उपचारों में कुशल, वाणी में कुशल, मधुरभाषी तथा वेश्याओं की गोष्ठी में समादृत पुरुष "विट" कहलाता है[1] ।

दशरूपकम् में विट का अत्यन्त सामान्य लक्षण किया गया है । इसके अनुसार नायक की उपयोगी गीतादि विधाओं में किसी एक विधा का ज्ञाता विट होता है[2] । इस प्रकार नायक के अनुरक्त, परिहास करने में निपुण, कुपित कामिनियों के मान को भंग करने वाले, शुद्ध, विदूषक तथा विट के अतिरिक्त चेट, माली, धोबी, तमोली, गन्धी आदि गौण पात्र भी नायक के सहायक होते हैं[3]।

(घ) धर्म सहायक नायक के धार्मिक कार्यों में सहयोग करने वाले पात्रों की योजना भी नाटकों में की जाती है । इसी-लिये नाट्याचार्यों ने इन पात्रों के लक्षणों को भी निरूपित किया है । इस विषय में दशरूपककार धनंजय का मत है कि यज्ञ करने वाले ऋत्विक, पुरोहित, तपस्वी और

- -

1. संभोगहीनसंपादिटस्तु धूर्तः कलैकदेशज्ञः ।
   वेशोपचारकुशलो वाग्मी मधुरोऽथ बहुमतो गोष्ठ्याम् ।।
   -साहित्यदर्पणम् 3/41

2. एकविद्यो विटः - - -
   गीतादिविधानां नायकोपयोगिनीनामेकस्या विधाया वेदिता विटः ।
   -दशरूपकम् 2/9 धनिक कृत वृत्ति

3. श्रृंगारेऽस्य सहाया विटचेटविदूषकाद्याः स्युः ।
   भक्ता नर्मसु निपुणः कुपितवधूमानभंजनाः शुद्धाः ।।
   आदिशब्दान्मालाकाररजकताम्बूलिकगान्धिकादयः ।
   -साहित्यदर्पणः 3/40,वृत्ति

ब्रह्मज्ञानी, नायक के धार्मिक अनुष्ठानों में सहायक होते हैं[1] ।

आचार्य विश्वनाथ के द्वारा किया गया लक्षण भी दशरूपकम् के अनुसार ही है । उन्होंने ब्रह्मविद् का अर्थ वेदविद् अथवा आत्मविद् किया है[2]।

(च) <u>अन्तःपुर सहायक</u> नायक की आवश्यकतानुसार, उसके अन्तःपुर से सम्बन्धित कार्यों के संचालन में सहयोग प्रदान करने वाले कुछ अन्य पात्रों की व्यवस्था भी नाटकों में की गई है । इनमें वर्षवर, किरात, मूक, वामन, म्लेच्छ, आभीर तथा शकार आदि मुख्य हैं । ये अन्तःपुर में अपने-अपने कार्यों में उपयोगी होते हैं[3]।

आचार्य विश्वनाथ ने इन सहायकों के उल्लेख के साथ ही शकार के लक्षणों का भी वर्णन किया है । इस वर्णन के अनुसार शकार मूर्ख और घमण्डी होता है । वह नीच कुलोत्पन्न, ऐश्वर्यसम्पन्न तथा राजा की अविवाहिता पत्नी का भाई होता है[4] ।

इस प्रकार नाटकों में विभिन्न कार्यों में यथायोग्य सहायकों की नियुक्ति की जाती है । इसी प्रसंग में साहित्यदर्पणकार ने निसृष्टार्थ

- -

1. ऋत्विक्पुरोहितौ धर्मे तपस्विब्रह्मवादिनः ।।

 -दशरूपकम् 2/43

2. ब्रह्मविदो वेदविदः आत्मविदो वा । - साहित्यदर्पणः 3/45,वृत्ति

3. अन्तःपुरे वर्षवराः किराता मूकवामनाः ।।

 म्लेच्छाभीरशकाराद्याः स्वस्वकार्योपयोगिनः ।

 -दशरूपकम् 2/44, 45

4. मदमूर्खताभिमानी दुष्कुलतैश्वर्यसंयुक्तः ।

 सोऽयमनूढाभ्राता राज्ञः श्यालः शकार इत्युक्तः ।।

 - साहित्यदर्पणः 3/44

मितार्थ तथा संदेशहारक नामक दूतों का भी नायक के सहायक के अन्तर्गत कथन किया गया है[1] ।

ये पात्र भी उत्तम, मध्यम तथा अधम के भेद से तीन-तीन प्रकार के होते हैं । दशरूपकम् के टीकाकार धनिक के अनुसार इन पात्रों की उत्तमता आदि का निर्धारण गुणों की संख्या की अधिकता और न्यूनता के आधार पर नहीं होता, अपितु गुणों के उत्कर्ष के न्यूनाधिक्य से होता है[2] ।

इसके अतिरिक्त उत्तम, मध्यम तथा अधम पात्रों की एक अन्य व्यवस्था भी है । इस विषय में साहित्यदर्पणकार का कथन है कि पीठमर्दादि को उत्तम,{ आदि शब्द से मन्त्री, पुरोहितादिकों का गृहण होता है } विट तथा विदूषक को मध्यम तथा शकार, चेट आदि अधम सहायक हैं[3]।

---

1. निसृष्टार्थो मितार्थश्च तथा संदेशहारकः ।
   कार्यप्रेष्यस्त्रिधा दूतो दूत्यश्चापि तथाविधाः।।
   -साहित्यदर्पणः 3/47

2. ज्येष्ठमध्याधमत्वेन सर्वेषां च त्रिरूपता ।।
   तारतम्याद्यथोक्तानां गुणानां चोत्तमादिता ।
   एवं प्रागुक्तानां नायकनायिकादूतदूतीमन्त्रिपुरोहितादीनामुत्तममध्यमाधमभावेन एवं त्रिरूपता, उत्तमादिभावश्च न गुणसंख्योपचयापचयेन किं तर्हि गुणातिशयतारतम्येन । -दशरूपकम् 2/45, 46 वृत्ति सहित

3. उत्तमाः पीठमर्दाद्याः मध्यो विटविदूषकौ ।
   तथा शकारचेटाद्या अधमाः परिकीर्तिताः ।।
   -साहित्यदर्पणः 3/46

इस प्रकार रूपक में सपरिच्छद नायक की योजना करनी चाहिये, ऐसा नाट्याचार्यों का मत है । नायक एवं नायिका के सहायकों का वर्णन करना रूपकों की परम्परा रही है, विशेषतः राज-परिच्छद का वर्णन करना । इसी हेतु नाट्यशास्त्र से लेकर प्रायः सभी नाट्यलक्षणग्रन्थों में सपरिकर नायक का विवेचन किया गया है ।

प्रतिनायक

नायक का चरित्र निखारने के लिये रूपक में प्रतिनायक की भी योजना की जाती है । प्रतिनायक, नायक की फलप्राप्ति में विघ्न उत्पन्न करने वाला, उसका शत्रु होता है । वह लोभी, धीरोद्धत, घमण्डी, पापी तथा व्यसनी होता है । जैसे राम तथा युधिष्ठिर के शत्रु क्रमशः रावण तथा दुर्योधन हैं[1] ।

नायिका

दृश्यकाव्यों में प्रधान पात्र के रूप में जितना महत्त्व नायक का होता है, नायिका भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण मानी जाती है । शृंगार-रसप्रधान नाटकों अथवा उपरूपक के भेद नाटिका में ये विशेष महत्त्वपूर्ण हो जाती है । वस्तुतः शृंगाररसप्रधान दृश्यों में नायिका, नायक के उद्दीपन विभाव के रूप में प्रस्तुत होती है, अतः नाटकों की मनोरंजकता को बढ़ाने एवं दर्शकों को नाटक के प्रति और अधिक आकर्षित करने के लिये, नाटककार इस पात्र को अपनी कला से सदैव जीवन्त बनाने का प्रयास करते रहे हैं । अभिज्ञानशाकुन्तलम् की शकुन्तला, रत्नावली नाटिका की "सागरिका" तथा

---

1. लुब्धो धीरोद्धतः स्तब्धः पापकृद्व्यसनी रिपुः ।।
   तस्य नायकस्येत्थंभूतः प्रतिपक्षनायको भवति । यथा रामयुधिष्ठिरयोः

स्वप्नवासवदत्तम् की वासवदत्ता, ऐसे ही जीवन्त चरित्र हैं जो नाटक की समस्त गतिविधियों को अपने ही परिदृश्य में संचालित करते हैं ।

नाट्यविधा में नायिका को अनेक अवस्थाओं में प्रस्तुत किया गया है । वस्तुतः, नारी समाज का एक ऐसा अविच्छिन्न अंग है, जिसके अभाव में किसी समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती । वह पुरुष का अर्द्धांग होते हुए भी संवेदना प्रधान होने के कारण अपने जीवन की अनेक परिस्थितियों को अनेक रूपों में भोगती है । क्योंकि दृश्यकाव्य सामाजिकों के जीवन के एक अविच्छिन्न दृश्य का ही निरूपण करता है अतः उसमें नायिका के रूप में नारीपात्र की विभिन्न अवस्थाओं का रंगमंच पर भी प्रस्तुतीकरण किया जाता है । अपने जीवन की अनुभूतियों के आधार पर ही सामाजिक उन दृश्यों में अपनी भावनाओं को एकीकृत करते हुए उसका आस्वादन करते हैं ।

नायिका की शृंगारिक अवस्थाओं के आधार पर, नाट्यशास्त्रियों ने उसके अनेक भेद निरूपित किये हैं । सर्वप्रथम नायिका को तीन प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है, 1. स्वकीया 2. अन्यायाया परकीया 3. सामान्या[1] । इन्हीं के अन्तर्गत उसकी विभिन्न अवस्थाओं का चित्रण किया जाता है ।

स्वकीया

1. स्वकीया स्वकीया नायिका, नायक की परिणीता पत्नी होती है । यह नायिका शील तथा सरलता से युक्त, पतिपरायणा, कुटिलतारहित, लज्जावती तथा पतिसेवा में निपुण होती है । यह नायिका भी मुग्धा

- -

1. स्वाऽन्या साधारणस्त्रीति तद्गुणा नायिका त्रिधा ।

-दशरूपकम् 2/15

मध्या तथा प्रगल्भा के भेद से तीन प्रकार की मानी गई हैं[1]।

(क) <u>मुग्धा</u> मुग्धा नायिका नवयौवना, प्रेमकलाओं से अज्ञात तथा संकुचित सी, नायक के प्रतिकूल आचरण करने पर भी क्रोध न करने वाली तथा अत्यन्त लज्जाशीला होती है[2]।

(ख) <u>मध्या</u> जिसमें तारुण्य उद्भूत हो चुका है तथा नायक के प्रतिकूल आचरण करने पर क्रुद्ध होने वाली मध्या स्वीया नायिका होती है[3]। दशरूपककार ने इस नायिका के धीरा, अधीरा तथा धीराधीरा ये तीन रूप माने हैं। धीरामध्या नायिका प्रतिकूल आचरण करने वाले नायक को श्लिष्ट वाक्यों द्वारा उपालम्भ देती है, अधीरा कटु शब्दों का प्रयोग करती है तथा धीराधीरा नायिका अश्रुपूर्वक व्यंग्यपूरित वचनों से नायक को उपालम्भ देती है[4]।

साहित्यदर्पणकार ने इसी नायिका का विचित्रसुरता, प्ररूढस्मरा, प्ररूढयौवना, ईषत्प्रगल्भवचना तथा मध्यमव्रीडिता के रूप में

- -

1. मुग्धा मध्या प्रगल्भेति स्वीया शीलार्जवादियुक् ।।
   शीलं सुवृत्तम्, पतिव्रता कुटिला लज्जावती पुरुषोपचारनिपुणा स्वीया नायिका । —दशरूपकम् 2/15 वृत्ति सहित
2. मुग्धा नववयः कामा रतौ वामा मृदुः क्रुधि ।
   —वही 2/16
3. मध्योद्यद्यौवनानंगा मोहान्तसुरतक्षमा ।।
   —वही 2/16
4. धीरा सोत्प्रासवक्रोक्त्या मध्या साश्रु कृतागसम् ।
   खेदयेद् दयितं कोपादधीरा परुषाक्षरम् ।
   —वही 2/17

लक्षण किया है[1]।

(ग) <u>प्रौढा या प्रगल्भा</u> प्रगल्भा नायिका गाढ़ यौवन वाली, कामोन्मत्त तथा कृतापराध प्रिय के प्रति अत्यन्त कठोर होती है[2]। यह नायिका भी धीरा, अधीरा तथा धीराधीरा के भेद से तीन प्रकार की होती है। धीरा-प्रौढा नायिका, पति के अपराध करने पर भी कुछ नहीं कहती, मात्र उदासीन वृत्ति धारण कर लेती है। और इस प्रकार अपना क्रोध व्यक्त करती है। अधीराप्रौढा नायिका पति को क्रोधपूर्वक कटुवचन सुनाने के साथ ही कभी-कभी उसे प्रताडित भी करती है। धीराधीरा प्रौढा नायिका व्यंग्योक्तियों के द्वारा अपना क्रोध व्यक्त करती है[3]।

इन भेदों के साथ ही मध्या तथा प्रौढा के तीन-तीन भेदों का फिर से, ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा के रूप में वर्गीकरण किया जाता है। ज्येष्ठा नायिका नायक की पहली पत्नी तथा कनिष्ठा उसकी नवीन प्रेमिका होती है

---

1. मध्या विचित्रसुरता प्ररूढस्मरयौवना ।
   ईषत्प्रगल्भवचना मध्यमव्रीडिता मता ।।

   -साहित्यदर्पण: 3/59

2. यौवनान्धा स्मरोन्मत्ता प्रगल्भा दयितांगके ।
   विलीयमानेवानन्दाद्रतारम्भेऽप्यचेतना ।।

   -दशरूपकम् 2/18

3. सावहित्थादरोदास्ते रतौ धीरेतरा क्रुधा ।
   सन्तर्ज्य ताडयेद् मध्या मध्याधीरेव तं वदेत् ।

   -वही 2/19

इस प्रकार मुग्धा से भिन्न नायिकाओं के बारह भेद हो जाते हैं[1]। रत्नावली नाटिका की ज्येष्ठा नायिका वासवदत्ता तथा कनिष्ठा नायिका सागरिका, इस प्रकार की नायिकाओं की उत्तम उदाहरण हैं।

2. परकीया परकीया को अन्या भी कहा जाता है। अन्या, किसी की कन्या अथवा परिणीता पत्नी हो सकती है। नीतिविरुद्ध होने के कारण विवाहितापरकीया को कभी भी नायिका का स्थान नहीं दिया जाता। कन्या के अनुराग को कवि प्रधान अथवा अप्रधान रस का आधार बना सकता है[2]। अभिज्ञानशाकुन्तलम् की शकुन्तला तथा रत्नावली की सागरिका ऐसी ही नायिकाएं हैं[3]।

3. सामान्या इसे साधारण स्त्री भी कहा जाता है। सामान्या गणिका ही होती है। यह कलाप्रवीणा, प्रगल्भा तथा सामान्यतया धूर्तता से युक्त भी होती है। वह छिपकर प्रेम करने वाले, सुखपूर्वक धन प्राप्त करने वाले, अज्ञानी, स्वच्छन्द, अहंकारी और पण्डक आदि,यदि धनसम्पन्न हों तो, के अनुरक्त की भांति प्रसन्न करती है तथा धनरहित होने पर उन्हें माता के द्वारा निष्कासित कर देती है[4]।

---

1. मध्याप्रगल्भाभेदानां प्रत्येकं ज्येष्ठाकनिष्ठात्वभेदेन द्वादश भेदा भवन्ति। मुग्धा त्वेकस्यैव। -दशरूपकम् 2/20 वृत्ति
2. अन्यस्त्री कन्यकोढा च नान्योढाङ्गिरसे क्वचित्॥
   कन्यानुरागमिच्छातः कुर्यादंगांगीसंश्रयम्। -वही 2/20, 21
3. स्याद्वेश्या सामान्यनायिका॥
   निर्गुणानपि न द्वेष्टि न रज्यति गुणिष्वपि।
   वित्तमात्रं समालोक्य सा रागं दर्शयेद्बहिः॥

...शेष अग्रिम पृष्ठ पर

कई रूपकों में विशेषत: प्रकरण, प्रकरणिका तथा भाण में गणिका मुख्य नायिका के रूप में भी प्रस्तुत की जाती है । मृच्छकटिकम् प्रकरण की नायिका, "वसन्तसेना" यद्यपि सामान्या ही है तथापि गणिका होते हुए भी उसमें गणिकाओं के अवगुण दृष्टिगोचर नहीं होते । सम्भवत: इसी आधार पर आचार्य विश्वनाथ ने किसी-किसी को सत्यानुरागिणी कहा है[1]।

नायिका की अवस्थाएं

नायिकाओं का एक अन्य वर्गीकरण भी नाट्याचार्यों ने किया है, जिसके अन्तर्गत उसकी दशाएं अथवा श्रृंगारिक अवस्थाएं वर्णित हैं । इसके अनुसार नायिकाओं की आठ अवस्थाएं होती हैं - 1. स्वाधीनपतिका 2. वासकसज्जा 3. विरहोत्कण्ठिता 4. खण्डिता 5. कलहान्तरिता 6. विप्रलब्धा 7. प्रोषितप्रिया तथा 8. अभिसारिका[1]।

1. स्वाधीनपतिका दशरूपकम् के अनुसार जिस नायिका का पति उसके समीप तथा उसके अनुकूल रहता है एवं जो सदैव प्रसन्न रहती है वह स्वाधीन-पतिका नायिका होती है[2]।

- -

कामंगीकृतमपि परिक्षीणधनं नरम् ।
मात्रा निःसारयेदेषा पुनःसंधानकांक्षया ।।
तस्कराः पण्डका मूर्खा सुखप्राप्तधनास्तथा ।
लिंगिनश्छन्नकामाद्या अस्याः प्रायेण वल्लभाः ।।
एषापि मदनायत्ता क्वापि सत्यानुरागिणी ।
रक्तायां वा विरक्तायां रतमस्यां सुदुर्लभम् ।। - साहित्यदर्पणः 3/67, 68
68, 70, 71

2. अवस्थाभिर्भवन्त्यष्टावेताः षोडश भेदिताः ।
स्वाधीनभर्तृका तद्वत्खण्डिताऽथाभिसारिका ।।
कलहान्तरिता विप्रलब्धा प्रोषितभर्तृका ।

2. <u>वासकसज्जा</u> प्रिय के आगमन की आशा में जो हर्ष के साथ स्वयं का श्रृंगार करती है, उसे वासकसज्जा नायिका कहते हैं।[1]।

3. <u>विरहोत्कण्ठिता</u> निरपराध होने पर भी प्रियतम के विलम्ब करने पर आशा और निराशा के बीच आन्दोलित रहने वाली नायिका विरहोत्कण्ठिता कहलाती है[2]।

4. <u>खण्डिता</u> नायक को अन्य नायिका के सहवासचिन्हों से युक्त देख-कर ईर्ष्या से कलुषित एवं क्रुद्ध होने वाली नायिका खण्डिता नायिका होती है[3]।

5. <u>कलहान्तारिता</u> अपराधी नायक को क्रोध से तिरस्कृत करने के पश्चात् पश्चाताप का अनुभव करने वाली नायिका कलहान्तरिता होती है [4]।

.....हृष्टा स्वाधीन भर्तृका । – दशरूपकम् 2/24

1. कुरुते मण्डनं यस्याः सज्जिते वासवेश्मनि ।
   सा तु वासकसज्जा स्याद्विदितप्रियसंगमा ।। –साहित्यदर्पणः 3/85

2. आगन्तुं कृतचित्तोऽपि दैवान्नायाति यत्प्रियः ।
   तदनागमदुःखार्ता विरहोत्कण्ठिता तु सा ।।– वही 3/86

3. पार्श्वमेति प्रिया यस्या अन्यसंयोगचिन्हितः ।
   सा खण्डितेति कथिता धीरैरीर्ष्याकषायिता ।।– वही 3/75

4. कलहान्तरिता मर्षाद्विधूतेऽनुशयार्तियुक् ।
   –दशरूपकम् 2/26

   चाटुकारमपि प्राणनाथं रोषादपास्य या ।
   पश्चात्तापमवाप्नोति कलहान्तरिता तु सा ।।
   – साहित्यदर्पणः 3/82

6. <u>विप्रलब्धा</u> प्रिय के निश्चित समय पर न आने के कारण, अत्यन्त अपमानित होने वाली नायिका विप्रलब्धा कहलाती है[1]।

7. <u>प्रोषितप्रिया</u> जिसका प्रियतम किसी कार्यवश विदेश गया होता है,वह नायिका प्रोषित-प्रिया कही जाती है[2]।

8. <u>अभिसारिका</u> जो नायिका स्वयं को सज्जित कर, या तो स्वयं ही नायक से मिलने जाती है अथवा दूती आदि के द्वारा उसे अपने पास बुला लेती है, वह अभिसारिका नायिका कहलाती है[3]।

<u>नायिका के गुण</u>

नायक के गुणों की भाँति ही नायिका में भी गुणों की स्थिति मानी गई है। नायिका के ये गुण अलंकार कहे जाते हैं। ये गणना में बीस हैं। इन बीस अलंकारों में प्रथम तीन शारिरिक, उसके पश्चात् सात अयत्नज तथा बाकी दस स्वभावज हैं। ये गुण हैं -
1. भाव, 2. हाव 3. हेला, 4. शोभा, 5. कान्ति, 6. दीप्ति, 7. माधुर्य, 8. प्रगल्भता, 9. औदार्य, 10. धैर्य, 11. लीला, 12. विलास

---

1. प्रियः कृत्वापि संकेतं यस्या नायाति संनिधिम्।
विप्रलब्धा तु सा ज्ञेया नितान्तमवमानिता ।।
-साहित्यदर्पणः 3/83

2. नानाकार्यवशाद्यस्या दूरदेशं गतः पतिः।
सा मनोभवदुःखार्ता भवेत्प्रोषितभर्तृका ।।
- वही 3/84

3. कामार्ताऽभिसरेत्कान्तं सारयेद्वाऽभिसारिका।
-दशरूपकम् 2/27

अभिसारयते कान्तं या मन्मथवशंवदा।

13. विच्छित्ति, 14. विभ्रम, 15. किलकिंचित, 16. मोट्टायित
17. कुट्टमित, 18. विव्वोक, 19. ललित, 20. विहृत[1]।

इन नायिकाओं के साथ ही नायिकाओं की सहायिकाओं का वर्णन भी नाट्यलक्षण ग्रन्थों में पाया जाता है। ये नायिका की सखियां अथवा दूतियां कही जाती हैं। इन सहायिकाओं के माध्यम से ही नायिका प्रायः अपने मनोगत भावों को नायक तक पहुंचाती है। इस विषय में साहित्यदर्पणकार का मत है कि सखी, नर्तकी, दासी, धात्री-कन्या, प्रतिवेशिनी, बाला, सन्यासिनी, कारू आदि दूतियां कहलाती हैं[2]।

---

1. यौवने सत्त्वजास्तासामष्टाविंशतिसंख्यकाः।
अलंकारास्तत्र भावहावहेलास्त्रयोऽङ्गजाः॥
शोभा कान्तिश्च दीप्तिश्च माधुर्यं च प्रगल्भता।
औदार्यं धैर्यमित्येते सप्तैव स्युरयत्नजाः॥
लीला विलासो विच्छित्तिर्विव्वोकः किलकिंचितम्।
मोट्टायितं कुट्टमितं विभ्रमो ललितं मदः॥
विहृतं तपनं मौग्ध्यं विक्षेपश्च कुतूहलम्।
हसितं चकितं केलिरित्यष्टादशसंख्यकाः॥
-साहित्यदर्पणः 3/89, 90,91,92

2. लेखप्रस्थापनैः स्निग्धैर्वीक्षितैर्मृदुभाषितैः॥
दूतीसम्प्रेषणैर्नार्या भावाभिव्यक्तिरिष्यते।
दूत्यः सखी नटी दासी धात्रेयी प्रतिवेशिनी॥
बाला प्रव्राजिका कारूः शिल्पिन्याद्याः स्वयं तथा।
- साहित्यदर्पणः 3/127,128,129

नाट्यग्रन्थों में केवल पात्रों का ही नहीं अपितु कौन सा पात्र किस तरह सम्बोधित करे और किसे सम्बोधित करे इसका भी विस्तृत विवेचन पाया जाता है। सामन्त आदि राजा को देव या स्वामिन् कहते हैं, राजा को ही पुरोहित या ब्राह्मण आयुष्मन् कहते हैं तथा निम्नकोटि के पात्र भट्ट कहते हैं। युवराज को स्वामी कहा जाता है तथा अन्य राजकुमारों को भद्रमुख। इसी तरह देवता तथा ऋषिगण भगवन् कहे जाते हैं तथा मन्त्री, ब्राह्मण एवं वृद्धजन आर्य नाम से सम्बोधित होते हैं। पत्नी, पति को आर्यपुत्र कहती है। विदूषक नायक को वयस्य कहता है, इसी प्रकार नायक भी उसे वयस्य अथवा नाम लेकर सम्बोधित करता है। इस प्रकार नाटकों का संविधान किया जाता है।

अद्‌भुतदर्पणम् नाटक के पात्र तथा चरित्रचित्रण

अद्‌भुतदर्पणम् नाटक के पात्र इतिहासप्रसिद्ध हैं । पात्रों के परम्पराप्राप्त चरित्र को ही, कवि महादेव ने अपनी दृष्टि से निखारने का प्रयत्न किया है । यह कवि की गम्भीर प्रवृत्ति का द्योतक है कि उन्होंने राम जैसे महासत्त्वशाली, गम्भीर चरित्रनायक को अपने नाटक का प्रधान पात्र बनाया । इस नाटक के सीमित कथानक के अन्तर्गत कवि ने वाल्मीकीय रामायण के, नाटक से सम्बन्धित कथांश के प्रायः समस्त पात्रों का उपयोग बड़ी ही सावधानी के साथ अपने नाटक के परिप्रेक्ष्य में किया है ।

नाटक का प्रारम्भ अंगद के दूत बनकर रावण की सभा में भेजे जाने की पूर्वपीठिका से होकर, रावण-विजयोपरान्त सीता प्राप्तिरूप फलप्राप्ति पर अवसान होता है । इस कथानक के मध्य में कथासूत्र को अविच्छिन्न एवं मनोरंजक बनाए रखने के लिये जितने सम्बन्धित पात्रों की आवश्यकता थी, उतने ही पात्रों को मंच पर उपस्थित किया गया है । यहां तक कि अंगद, हनुमान्, मेघनाद तथा कुम्भकर्ण जैसे पात्रों की उपस्थिति को भी आवश्यक न समझकर उनकी सूचनामात्र दे दी गई है । कुछ पात्रों का प्रयोग केवल कथा में चमत्कार, रोचकता एवं नवीनता लाने के लिये ही किया गया है । इस प्रकार के पात्रों में शम्बर, महोदर तथा लंका और निकुम्भिला मुख्य हैं ।

दैवीशक्ति तथा माया आदि के प्रयोग के कारण, नाटक कहीं-कहीं यथार्थभूमि से कटा हुआ सा प्रतीत होता है, किन्तु पात्रों के आकर्षक चरित्रचित्रण के कारण नाटक की रोचकता में कमी नहीं आई है । नाटक के नायक राम, पारलौकिक तत्त्व होने पर भी, भूमि पर अवतार लेने के कारण कहीं भी मानवीय संवेदनाओं से विलग नहीं हुए हैं । इसी प्रकार

अन्य पात्र भी नितान्त स्वाभाविक एवं प्रख्यात परम्परा के अनुरूप ही अंकित किये गए हैं । नाटक के सम्यक् अनुशीलन हेतु इसके मुख्य पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है ।

राम

अद्‌भुतदर्पणम् नाटक के कथानायक श्रीरामदेव,धीरोदात्त नायक हैं । नाटक के समस्त कथानक के वे केन्द्रबिन्दु हैं । पक्ष के ही नहीं अपितु प्रतिनायक पक्ष के भी समस्त पात्र इसी केन्द्रबिन्दु के चारों ओर घूमते से प्रतीत होते हैं । यद्यपि श्रीराम मर्यादापुरुषोत्तम, धीर, वीर, यशस्वी एवं न्यायप्रिय व्यक्तित्व के रूप में रामायण आदि अनेक ग्रन्थों में समुचित रूप से वर्णित हैं, तथापि अद्‌भुतदर्पणम् के नाटककार का, श्रीरामदेव जैसे आदर्श एवं बहुश्रुत पात्र को अपने नाटक का नायक बनाकर प्रस्तुत करना, उनकी विशेषताओं को नई भंगिमाओं के साथ समाज के सम्मुख प्रस्तुत करने का आकर्षण ही प्रतीत होता है ।

नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से धीरोदात्त नायक श्रीरामदेव, दिव्य एवं मानवीय दोनों ही रूपों में प्रस्तुत किये गए हैं । उनके दिव्यरूप की भावना उनके स्वयं के पक्ष के विपरीत,प्रतिपक्षी रावण के अनुयायी राक्षसों में अधिक प्रदर्शित हुई है । माल्यवान् तो श्रीराम को स्पष्ट ही विष्णु का अवतार मानता है[1]। दिव्य तत्त्व होते हुए भी श्रीराम पुराण एवं इतिहासप्रसिद्ध रघुवंशी राजकुमार हैं । लंका उनके लिये रघुपति शब्द का

---

1. कुन्ताघातपलायमानगरुडस्कन्धापवृत्तार्थया
मूर्त्या चक्रमुदीरयन्युधि यथारूपो मयालोकितः ।
मानुष्योचितमानया ननु तथारूपो यमालोक्यते
तद्व्यक्तं दनुकैकसीदितिसुतद्रोही स रामायते ।।

— अद्‌भुतदर्पणम् 5/7

प्रयोग भी करती है[1] । इन विशेषताओं से मण्डित होने के साथ ही श्रीरामदेव महासत्त्वसम्पन्न, अत्यन्त गम्भीर, क्षमावान्, अविकत्थन, पराक्रमी, धैर्यवान, न्यायप्रिय, अनुरागवान्, दृढ़व्रती, नीतिज्ञ एवं भावुक महापुरुष हैं । इन गुणों से विभूषित श्रीराम का संक्षिप्त चरित्रांकन इस प्रकार है –

इस नाटक में श्रीराम सर्वाधिक महासत्त्वसम्पन्न व्यक्तित्व के रूप में उभरकर सामने आये हैं । उनके इस रूप के अनेकशः उत्कृष्ट उदाहरण इस नाटक में प्राप्त होते हैं । श्रीराम अपने द्वारा की गई भूलों को स्वीकार करने में किंचितमात्र भी संकोच नहीं करते । शत्रु द्वारा भले ही छल से स्त्री का हरण कर लिया गया हो, किन्तु वे इसे अपना ही प्रमाद मानते हैं । इसी प्रकार राज्यभ्रष्ट होने में भी वे अपना ही दोष स्वीकार करते हैं[2]। लक्ष्मण के यह कहने पर कि दुष्ट ने चोरी से सीता का हरण कर लिया, वे इसे भी अपने दोष को आवृत्त

---

1. लंका – – – – – – – –

निकृन्तन्ग्रीवा अप्यसकृदकृतार्थो रघुपतिः ।

–अद्भुतदर्पणम् 9/14

2. एकस्त्रीपरिरक्षणेऽपि जडतामेतां प्रमादोत्तरां ।
येन प्रागपि जानतैव विधिना राज्यात्परिभ्रंशितम् ।
संप्राप्तेऽपि पराभवे कुलभवां प्राचामवाचामपि
व्रीडायै चिरदेहधारणमिदं संमन्यते केवलम् ।।

– वही 1/15

करने के लिये किया गया एक बहाना ही समझते हैं[1]।

श्रीराम की महामनस्विता इससे भी प्रकट होती है कि वे शत्रु के व्यवहार एवं क्रियाकलापों की प्रशंसा भी उन्मुक्त हृदय से करते हैं। अंगद के शत्रुपक्ष में प्रवेश की घटना के प्रति पूर्ण आश्वस्त हो जाने पर भी, अंगद को दण्डित करने का विचार करना तो दूर, वे उसके द्वारा समय पर लिये गये प्रतिशोध की प्रशंसा करने लगते हैं[2]। लक्ष्मण द्वारा मेघनाद के पराक्रम की उपेक्षा किये जाने पर, श्रीराम, मेघनाद के पराक्रम की भी प्रशंसा करते हैं। वे कहते हैं कि जिन युद्धसाधनों की सुरासुराधिपति भी अभिलाषा करते हैं, वे ही इन्द्रजित के द्वारा अर्जित आयोधन साधन उसके वीर्य को प्रदर्शित करते हैं तत्पश्चात्

---

1. रामः - वत्स, किमुच्यते चौर्यमिति। साधुरयं पन्थाः स्वदोष-
गोपनेषु। पश्य।
वैरोपदर्शितपथेषु मुहुः परेषां
सर्वप्रकाररचितेषु पराभवेषु।
मायेति चौर्यमिति वंचनमित्यशक्ते-
राच्छाद्यते सहज एव निजः प्रमादः ।।
-अद्भुतदर्पणम् 1/17

2. रामः - - - - । (सश्लाघम्।)
साधु रे बालिपुत्र साधु।
मथ्नासि सहजं शत्रुं स्वं चावर्जयसे कुलम्।
कण्टकांश्चोपमृद्नासि काले साधु प्रगल्भसे ।।
- वही 3/9

वे उन आयोधन उपादानों का भी प्रशंसात्मक वर्णन करते हैं[1]। इतना ही नहीं अपनी पत्नी का हरण करने वाले प्रधानशत्रु रावण के पराक्रम का उत्कर्ष वर्णित करने में भी वे कृपणता नहीं करते। लक्ष्मण के द्वारा रावण की वीरता का उपहास किये जाने पर वे कहते हैं, "वत्स ऐसी बात नहीं है, त्रैलोक्य विजय से उद्धत हुए रावण की बालि आदि के द्वारा पराजय तो, घुणाक्षर न्याय से कदाचित् ही हुई है[2]। इसी प्रकार रावण के द्वारा "स्वस्त्री संरक्षणाशक्त" कहे जाने पर भी श्रीराम को उस पर क्रोध नहीं आता अपितु वे उसके वाक्यों का समर्थन ही करते हैं[3]।

---

1. रामः – चिराय देवासुरलोकनार्थैर्मनोरथप्रार्थितदुर्लभानि ।
   उत्कर्षमायोधनसाधनानि शंसन्ति वीर्यार्जितमिन्द्रजेतुः ।।
   तथाहि पश्य ।
   घोरा दत्तवराः शरा विषधरास्तन्नास्त्रयोः कौशलं
   मायाविश्वविधायिनी दिवि रथः सांग्रामिकः कामगः ।
   तन्नैसर्गिकमूर्जितं भुजबलं सांगं तदस्त्रं विधे-
   रेष्वेकैकमलं जगन्ति मथितुं सर्वाणि चेत्किं पुनः ।। –अद्भुतदर्पणम् 4/11, 12
2. प्रकृतरामः – वत्स मा मैवम् । अस्य हि
   त्रैलोक्यविजयौद्धत्यनित्यदुर्ललितस्य सः ।
   घुणक्षतलिपिप्रख्यः कदाचित्कः पराभवः ।। –वही 7/17
3. रावणः – वयस्य महोदर,
   त्रैलोक्यसारहर्तारं को न जानाति रावणम् ।
   स्वस्त्रीसंरक्षणाशक्तश्चोरं मामेव मन्यते ।।
   प्रकृत लक्ष्मणः – आर्य, श्रुतं प्रलपितमस्य जाल्मस्य ।
   प्रकृत रामः – नन्विदमुपपद्यते लङ्केश्वरस्य ।

   –अद्भुतदर्पणम् 7/22 पृष्ठ 96

यही नहीं वे उसके विशृंखल स्वैराचार को भी शोभन ही कहते हैं[1]। श्रीराम, रावण, कुम्भकर्णादि की ही प्रशंसा नहीं करते अपितु रावणपक्ष के पलायमान राक्षसों की स्वामिभक्ति की भी प्रशंसा करते हैं[2] ।

यह श्रीराम की महासत्त्वता ही है, जिसके कारण उनका प्रधानशत्रु रावण भी उनके सौजन्य से प्रभावित हो जाता है[3] । इन कतिपय उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीराम महासत्त्वसम्पन्न व्यक्ति हैं, जो कि मित्र ही नहीं अपितु शत्रु के प्रति भी अत्यन्त उदार हैं । उनकी स्वोक्ति से यह भी ज्ञात होता है कि वे हर्ष अथवा शोक से भी अप्रभावित हैं । पिता की आज्ञा से, न तो उन्हें वन हीजाने में कोई कष्ट हुआ, न ही उनकी आज्ञा से राज्यग्रहण करने में कोई हर्ष हो रहा है । वे उस राज्य को भाइयों का ही उपभोग्य मानकर मात्र पालन करने हेतु, कर्तव्य भावना से ही राज्य ग्रहण करने के लिये तैयार होते हैं[4]। इस

---

1. शोभते राक्षसेन्द्रस्य स्वैराचारो विशृंखलः ।

   –अद्भुतदर्पणम् 7/29

2. स स्वामी स्वयमेव चेत्प्रविशति क्रोधाकुलः संगरं ।
   मुंचन्त्येव तद्‌गतः सुखमसून्न त्वेव तं पण्डिताः ।।

   – वही 7/13

3. रावणः – (सशिरः कम्पम् ।) किमुच्यते सौजन्यमिति । किंबहुना ।
   अनेन सौजन्येनायमर्थी यद्युपतिष्ठते ।
   सीतां विनान्यदखिलं दत्तमेव मया भवेत् ।।

   – वही 7/20

4. रामः – वनं वा राज्यं वा मम बहुमतं तातविहितं
   न तु त्रैलोक्यश्रीरपि भुजजिता मे बहुमता ।
   तदत्र भ्रातृणां तदिदमुपभोगोपकरणं
   समृद्धं वो राज्यं निखिलमनुपाल्यं खलु मया ।।

   – वही 10/22

प्रकार महाप्राण,महासत्त्वशाली श्रीराम का व्यक्तित्व प्रस्तुत नाटक में निखर कर सामने आता है । लक्ष्मण स्वयं उन्हें महासत्त्वसम्पन्न कहते हैं[1] । इसी प्रकार रावण भी उनकी महासत्त्वता से प्रभावित है[2] ।

इस नाटक के नायक श्रीराम अत्यन्त गम्भीर प्रकृति के भी व्यक्ति हैं । प्रिया के वियोगजन्य दुःख को भी हृदय में ही रखकर,वे स्वयं को ही उपालम्भ देते हैं । अपने मन में छिपे हुए दुःख एवं ग्लानि को वे तभी व्यक्त करते हैं, जब वे आश्वस्त हो जाते हैं कि उसके सुनने वाले उनके स्वजन ही हैं[3] । इसी प्रकार अन्यत्र भी अपने हार्दिक कष्टों के प्रति वे अतिगम्भीर रहे हैं । प्रिया का स्मरण हो आने पर वे अन्दर

---

1. विकृतलक्ष्मणः - आर्य, भो भोः, श्रूयतां मे विज्ञापनं महोदारतया महासत्त्वतया च मनागार्यस्य संभाव्यते चिररणावमर्दपरिश्रान्त इति रावणेऽपि कदाचिद्दाक्षिण्यमक्षुण्णवीरगोष्ठीविनोदकुतूहलं च ।
   -अद्भुतदर्पणम् अंक 8, पृष्ठ 110
2. विकृतरावणः - {दृष्ट्वा स्वगतम् ।} कथमयं मे न सारथिः किन्तु सारथिं विनिहत्य राम एव स्वयं मामवलम्बते । अहो महासत्त्वता राजपुत्रस्य ।   - वही अंक 8, पृष्ठ 112
3. रामः - {निश्वस्य ।} अस्तु तावत् । {परितोऽवलोक्य ।} नास्ति खल्वत्र बाह्यो जनः । यतो निःशंकमावेद्यते हृदयखेदः ।
   परेण भार्या प्रसभं हृतेति तत्र तस्य गेहे सुचिरं स्थितेति ।
   तत्प्राप्तियत्नोऽपि च संधिनेति रामस्य जीवनमरणान्यमूनि ।।
   - वही 1/14

ही अन्दर व्यथित होते हैं, किन्तु इस व्यथा का लेश भी किसी पर प्रकट नहीं करते[1]।

इसी प्रकार श्रीराम उत्तेजना के क्षणों में भी उत्तेजित न होकर संयम से काम लेकर, औचित्यानौचित्य का सम्यक् विचार करके ही कोई कार्य करते हैं। इसका उत्कृष्ट उदाहरण यह है कि श्रान्त-क्लान्त रावण का वे वध नहीं करते, अपितु रथ से गिरते हुए रावण को धनुष की कोटि का अवलम्बन भी दे देते हैं। वे रावण को लौट जाने के लिये तथा पुनः शक्ति अर्जित कर, युद्ध में आने के लिये कहते हैं। इस विवेकपूर्ण निर्णय का कारण यह है कि वे चिरकाल के पश्चात् उपलब्ध, महापराक्रमी शत्रु को भी शक्तिक्षीण अवस्था में नहीं मारना चाहते, जिससे उनके रणकौशल के विषय में कोई शंकास्पद अपवाद फैले[2]। इस प्रकार इन घटनाओं से उनके चरित्र की गम्भीरता स्पष्ट होती है।

श्रीराम अत्यन्त क्षमाशील महापुरुष हैं। वे उस शम्बर को भी प्राणदान दे देते हैं, जो न केवल उनके साथ छल करके उनके कार्य में विलम्ब उत्पन्न कर देता है, अपितु छल से दधिमुख का तथा अंगद का

- -

1. रामः - (स्वगतम्।) हा प्रिये जनकराजनन्दिनि, अथवा अये हृदय कथं प्रसंगादनुस्मृत्यैव तां विक्लवमसि। ननु प्रतिलभ्यतां सीता। अथ करिष्यते यथाकाममुपालम्भः।

-अद्भुतदर्पणम् अंक 1, पृष्ठ 9

2. संशान्ते भृगुनन्दने सुरपतेः सूनौ च याते दिवं
शस्त्राशस्त्रिविमर्दकल्पनकथाशून्ये जगन्मण्डले।
दिष्ट्या नन्वयमेक एव हि चिरादद्योपलब्धो रिपु-
स्तस्मिन्संप्रति दृष्टमात्रनिहते को वेद नः कौशलम्॥

- वही 8/32

वेश बनाकर अंगद की हत्या का षड्यन्त्र भी रचता है। उनकी यह क्षमाशीलता चरमसीमा पर पहुंच जाती है,जब परिश्रान्त रावण को न केवल छोड़ देते हैं, अपितु उसके मूर्च्छित हो जाने पर धनुष की कोटि का सहारा भी देते हैं[1]। इसी प्रकार रावण की मृत्यु के पश्चात् वे वानरसेना को लंका में राक्षसों पर प्रहार न करने का निर्देश देकर भी, अपने औदार्य का परिचय देते हैं[2]।

नाटक में श्रीराम महावीर एवं पराक्रमी के रूप में भी चित्रित हुए हैं। श्रीराम इतने प्रचण्ड पराक्रमी हैं कि उनके शौर्य से भयभीत, रावण का मन्त्री माल्यवान् उन्हें मनुष्य नहीं वरन् दैवीशक्ति अर्थात विष्णु का अवतार मानने को बाध्य हो जाता है[3]। उनके शौर्य

- -

1. विकृतलक्ष्मणः - - - - - - अहो महोदारतेयमार्यस्य
   विशिखेनैनमेकेन विद्धं हृदयमर्मणि।
   आलम्बते धनुष्कोट्या पतन्तं रावणं रथात्॥
   -अद्भुतदर्पणम् 8/14
2. भो भो हरियूथपाः, समादिशन्ति भवतः सवनिज रामदेवस्वामिपादाः।
   लंकारोधात्कपीनां विरमतु पृतना राक्षसेषु प्रहारः
   सज्जोऽपि त्यज्यतां तेष्वपजितचकिताः प्रद्रुताः सान्त्वनीयाः।
   स्कन्धावारे पुरे वा भवतु च परितः संचरो निर्निरोधो
   लंका यातु प्रसादं पुनरपि च यथा मन्थमुक्ताब्धिवेला॥
   - वही 9/15
3. माल्यवान् - सखे दानवराज, किमुच्यते नरयुगमिति। मा मैवं मंस्थाः। पश्य।
   अनस्तिप्रत्यस्त्रे पशुपदवशानां दिविषदा-
   मपि प्रायो ह्यस्मिन्बत सहनमेव प्रतिविधिः।
   तदेतन्नागास्त्रं तृणमिव विधूतं यदि तदा
   वदामो रामाख्यं ननु किमपि तत्त्वं नरवपुः॥ -अद्भुतदर्पणम् 5/3

की चरम परिणति तो यही है कि वे त्रैलोक्य विजयी रावण का भी वध कर देते हैं। इतना होने पर भी वे अपने शौर्य की कभी प्रशंसा नहीं करते। किन्तु शत्रु के शौर्य की सदैव प्रशंसा करते हैं।

श्रीराम के चरित्र में धैर्य की भी पराकाष्ठा है। वे इतने धैर्यवान हैं कि अपनी प्रिया का हरण करने वाले रावण के पास स्वयं दूत भेजकर सन्धि का प्रस्ताव भी करते हैं। फिर भी सीताहरण की अन्तर्वेदना उनके हृदय में गड़ी रही। इस अपयश का शल्य उन्हें कितना व्यग्र किये हुए है इसकी झलक केवल उनके भावों से ही लक्ष्मण भी पा जाते हैं[1]। किन्तु उनका धैर्य उन्हें कहीं भी कर्तव्य से विचलित नहीं होने देता।

अद्भुतदर्पण मणि के द्वारा रावण के अनुचित आचरण को देखकर, जब भी लक्ष्मण उसे मारने के लिये उत्साहित होते हैं, धैर्यवान राम उन्हें किसी न किसी प्रकार रोक ही देते हैं[2]। इसी प्रकार रणश्रान्त रावण को लौट जाने के लिये प्रेरित करना तो श्रीराम के धैर्य की पराकाष्ठा ही है।

---

1. मद्वक्त्रेऽपि यदा दधाति न पदं दृष्टिः समग्रं ह्रिया
   यद्वैयर्थ्यमिव व्यनक्ति विततश्वासः स्वगात्रेष्वपि।
   मूर्धा शश्वदकाण्डशुष्कहसितैर्यच्चागतः कम्पते
   तन्मन्ये परिवर्तते निशितमन्यकारशल्यं हृदि॥
   अद्भुतदर्पणम् 1/11

2. लक्ष्मणः – आर्य, कृतं कृतमेतेन चिरमुन्मत्तप्रलपितश्रवणेन। यावदस्य कण्ठकूटं भेत्स्यामि (शरमुद्धर्तुमिच्छति।)
   रामः – वत्स, नन्वयुध्यति तस्मिन्नसंबद्धे च किमायुधग्रहणेन।
   विरोषस्तस्तावदुन्मत्ते। – वही- अंक 6 पृष्ठ 70

एक न्यायप्रिय योद्धा एवं शासक के समस्त गुण श्रीराम में विद्यमान हैं। यह उनकी न्यायप्रियता ही है कि वे रावणवध के उपरान्त न केवल कपिवाहिनी को युद्धविराम का आदेश देते हैं तथा राक्षस हो या वानर सभी को उन्मुक्त विचरण के लिये अभय प्रदान करते हैं, अपितु सभी बन्दियों को मुक्त करने का भी आदेश देते हैं[1]।

अन्य गुणों के साथ ही प्रगाढ़ अनुराग भी श्रीराम के चरित्र की एक विशेषता है। पत्नी सीता के प्रति असीम अनुराग रखते हुए भी, उसे किसी पर प्रकट नहीं करते किन्तु मित्रों के प्रति उनका प्रेम सर्वत्र छलक उठता है। मित्र की आपत्ति से वे दुःखी तो होते ही हैं किन्तु मित्र का हितसम्पादन होने पर दुःख के क्षणों में भी उनका हर्ष सहज ही प्रकट हो जाता है। इसी प्रकार स्नेहवश विभीषण तथा सुग्रीव को सावधान रहने का समय-समय पर निर्देश दिया करते हैं[2]।

सुग्रीव के प्रसंग में उनके अनुराग की पराकाष्ठा दिखाई पड़ती है। सुग्रीव की मृत्यु का समाचार सुनकर तो वे व्याकुल ही हो उठते हैं।

- -

1. स्पर्धारब्धोऽपि सद्यः कपिपिशितभुजां संगरः शान्तिमेतु
   प्रीतिश्चान्योन्यमेषामविरतमयतामृद्धिमद्योऽभ्येषाम्।
   यो यो रुद्धः स सद्यः कपिषु निशिचरेष्वर्च्यतां मुच्यतां वा
   लंकाकिष्किन्धयोर्यद्दृधमतिरकरोदैकराज्यप्रसादम्॥

   -अद्भुतदर्पणम् 9/16

2. रामः - मद्वचनाद्वक्तव्यस्तत्रभवान्वयस्यविभीषणो वयस्यसुग्रीवश्च-
   सर्वथा अप्रमत्ताभ्यां परिभ्रमितव्यम् इति।
   धुर्यौ मनोरथस्य हि सुग्रीवविभीषणौ यतश्चरतः।
   स किलास्माकं पन्थाश्चक्राणामिव परिभ्रमताम्॥

   - वही 1/26

किन्तु यह भी उनके स्नेह की उत्कृष्टता ही है कि उनके हृदय में मित्र के अप्रिय समाचार को जानकर भी उससे मिलने के लिये हर्ष भाव स्वयं ही प्रस्फुटित हो जाता है[1] ।

श्रीराम एक उत्कृष्ट दृढ़व्रती महापुरुष हैं । उन्होंने रावण को मारने का संकल्प तो किया है, किन्तु न तो वे निःशस्त्र रावण पर शस्त्र उठाते हैं और न ही उसके श्रान्त होने पर उसका वध करते हैं । वे रावण के साथ महासंग्राम कर अपना व्रत पूर्ण करते हैं । लक्ष्मण की उक्ति भी उन्हें दृढ़व्रती सिद्ध करती है[2] ।

श्रीराम एक महान नीतिमान् महापुरुष हैं । वे न तो स्वयं ही नीतिविरुद्ध कोई कार्य करते हैं,न ही उत्तेजित लक्ष्मण को ही करने देते हैं । यह उनकी नीतिमत्ता ही है कि वे न तो बन्धन में पड़े शम्बर पर शस्त्र-प्रहार करने देते हैं और न ही अन्तःपुर में असावधान रावण पर ही शस्त्रप्रहार की आज्ञा देते हैं ।

इसी प्रकार एक स्थान पर अनल को भी वे नीति की सीख देते हुए कहते हैं कि हितैषी अनुचरों को राजा के कार्यों से सम्बन्धित सूचना देने के लिए समय की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये, विशेषतः युद्धादि के अवसर

- -

1. रामः – आभिः प्रवृत्तिभिरसाववसादितैव
   हन्त प्रियस्य सुहृदः पुनरीक्षणाशा ।
   किन्तु स्वयं भवति मे मनसः प्रसादो
   –अद्भुतदर्पणम् 3/28

2. लक्ष्मणः – – – – –
   प्रतिज्ञातः शस्त्रवधादपि भवता रावणवधः
   प्रतिज्ञानिर्वाहव्रतमपि च जानामि भवतः ।
   – वही 7/32

पर तो बिल्कुल नहीं[2]। इसी प्रकार रावणवध के पश्चात् युद्धशान्ति की घोषणा तथा बन्दियों की मुक्ति भी उनकी नीतिज्ञता की द्योतक है।

नाटक में श्रीराम भावनाप्रधान नायक हैं। सुग्रीव की हत्या का समाचार सुनकर उनकी भावुकता स्पष्ट परिलक्षित होती है। कभी हताश न होने वाले श्रीराम के हावभाव से भी विकलता प्रकट होने लगती है[2]। अन्यत्र भी, अशोकवनिका का दृश्य, अद्भुतदर्पण मणि के माध्यम से देखते हुए, सीता के दर्शनमात्र की आशा से ही, भावुक श्रीराम मूर्च्छित हो जाते हैं[3]।

इस प्रकार इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि मानवीय पक्ष में श्रीराम एक आदर्श पुरुष हैं। वे समाज की मर्यादाओं के प्रति जागरूक, धैर्यशील एवं साहसी और शौर्यवान व्यक्ति हैं। यद्यपि सीता का वियोग उनकी अन्तरात्मा को व्याकुल किये हुए है, तथापि वे अपने

- -

1. रामः - अयि भद्र,

   अर्थान्कार्यौपयिकानावेदयितुं हितैषिणां राज्ञः।
   नावसरः प्रतिपाल्यो विशेषतो विग्रहावतीर्णस्य ।।

   - अद्भुतदर्पणम् 1/18

2. रामः - - - - - (सावेगम्।) हा महाराज, हा मम प्रतिज्ञामहार्णवकर्णधार, हा मम त्रैलोक्यसाधनमहामात्य, हा मम दुर्जातबन्धो, हा सर्वप्रकाररामसमयवयस्य, वानरेन्द्र।

   तैस्तैस्ते साहसारम्भैर्वेपमानेन चेतसा।
   यत्तदाशंकितं पापं तस्य जज्ञे विनिश्चयः ।।

   (इति धनुरवलम्ब्य विह्वलस्तिष्ठति।)

   - वही अंक 2, पृष्ठ 26, श्लोक 17

3. रामः - (सवैक्लव्यम्।) वत्स, अपि दृष्टिगोचरा सा रामस्य जीवनाडी। (इति मुह्यति।) - वही अंक 6, पृष्ठ 73

लंकाभियान कार्य को पूरे उत्साह के साथ संचालित करते हैं । इस प्रकार अपने उद्देश्य की ओर निरन्तर आगे बढ़ते हुए, नायक के रूप में अपनी सफलता के चरम बिन्दु को प्राप्त कर लेते हैं ।

लक्ष्मण

लक्ष्मण, नाटक के दूसरे महत्त्वपूर्ण पात्र हैं । इन्हें नाटक का उपनायक भी कहा जा सकता है । सम्पूर्ण कथासूत्र में, लक्ष्मण श्रीराम के साथ अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध रहे हैं । नाटक का प्रारम्भ भी लक्ष्मण की उक्तियों के साथ ही हुआ है । शास्त्रीय दृष्टि से लक्ष्मण धीरोद्धत श्रेणी के नायक हैं ।

लक्ष्मण, श्रीराम के कनिष्ठ भ्राता हैं । किन्तु इनकी चारित्रिक विशेषताएं श्रीराम से सर्वथा भिन्न हैं । जहां श्रीराम अत्यन्त सौम्य एवं उदारमना हैं, वहीं लक्ष्मण अत्यन्त उद्धत एवं क्रोधी व्यक्तित्व के स्वामी हैं । यह सब होने पर भी लक्ष्मण का चरित्र बहुत ही व्यापक एवं प्रभावशाली व आकर्षक है । वे एक ओजस्वी, अदम्य पराक्रमी, विकत्थन किन्तु बुद्धिमान एवं धैर्यशील पुरुष के रूप में नाटक की पृष्ठभूमि पर अवतीर्ण होते हैं । नाटक में उनके दैवी शक्ति होने का संकेत भी प्राप्त होता है[1] । मय द्वारा कथित विष्णु के चार अंशों में लक्ष्मण का समावेश स्वयमेव हो जाता है[1]।

उनकी ओजस्विता का परिचय उनके सम्भाषणों से सर्वदा ही मिलता है । नाटक का प्रारम्भ ही उनकी ओजस्वी उक्तियों से होता है । यहां वे श्रीराम के द्वारा अंगद को सन्धि प्रस्ताव लेकर भेजे जाने की वार्ता से अत्यन्त क्षुब्ध हो उठते हैं । वे स्त्रीहरण प्रकरण पर सन्धि की बात को

---

1. माल्यवान् – एकश्चतुर्धा जातो यस्तस्यांशः पंचमोऽप्ययम् ।

—अद्भुतदर्पणम् 5/1।

सोचना भी मानी पुरुष के लिये अपमानजनक समझते हैं[1] । यही कारण है कि मेघनाद द्वारा लगाई गई अग्नि से, सुरक्षित विभीषण के परिवार के कुशलक्षेम को सुनकर हर्ष व्यक्त करने वाले, राम एवं उनके उपस्थित परिकर पर ओजस्वी व्यंग्य करने से भी वे नहीं चूकते[2] क्योंकि वे इस अपमान-जनक स्थिति में किसी भी कारण से हर्ष प्रकट करना उचित नहीं मानते ।

लक्ष्मण में प्रतिशोध की एक तीव्र ज्वाला धधकती हुई दिखाई देती है । सीता का अपहरण करने वाले तथा उनके प्रति अनुचित शब्दों का प्रयोग करने वाले, रावण के प्रति उनका आक्रोश इतना अधिक है कि येनकेन प्रकारेण वे सदैव उसके वध की ही अभिलाषा करते हैं । यह जानते

- -

1. लक्ष्मणः - - - - - - - - - - -

अन्यत्प्रस्तुतमद्य नूतनतया यत्किंचिदार्येण मे

मानी संधिकथां करोति हृदि कस्तादैरमूलं स्मरन् ।।

-अद्भुतदर्पणम् 1/10

2. लक्ष्मणः - (स्वगतम् ।) उपहसामि तावदेतान् । (उपसृत्य ।) आर्य, अभिवादये ।

- - - - - - - - - - - - -

लक्ष्मणः - (उपविश्य) कोऽयमिदानीमस्थाने हर्षोद्रेकः । महता खलु निमित्तेन भवितव्यम् ।

- - - - - - - - - - - -

लक्ष्मणः - तर्हि पृच्छामि ।

जीवग्राहमरिः किमद्य ससुतज्ञातिर्गृहीतो रणे

- - - - - - - - - -

क्षिप्ता सागरसंप्लवे हरिवरैरुन्मूल्य लंकैव किम् ।

- - - - - - - - - -

लक्ष्मणः - अहो मे युद्धाधिरोहिणी तृष्णा यदनालोचितप्रस्तावमन्यदन्यत्पृच्छामि । इदं तु कालोचितं हर्षकारणं भविष्यति । ....शेष अगिम पृष्ठ पर

हुए भी कि श्रीराम ने रावण के वध का संकल्प लिया है, रावण को देखते ही लक्ष्मण का हाथ बरबस ही धनुष की ओर चला जाता है[1] । श्रीराम की युद्ध के प्रति थोड़ी भी शिथिलता उन्हें सहन नहीं होती, इसलिये वे सदैव उन्हें युद्ध के प्रति प्रेरित करने का ही उद्योग करते रहते हैं । यही कारण है कि श्रीराम को उनके लक्ष्य के समीप अर्थात् रावण के मूल निवास, त्रिकूट शिखर पर स्थित लंका के उत्तर गोपुर की ओर लाकर वे अत्यन्त हर्ष का अनुभव करते हैं[2] ।

लक्ष्मण अपने चरित्र में भावुक कम किन्तु बुद्धिमान एवं धैर्यशील अधिक प्रतीत होते हैं । यद्यपि लक्ष्मण सुग्रीव की हत्या के समाचार से

तारेयोपहृतां कथंचिदपि नः संधिप्रसक्तिं चिरा-
दार्यामोक्षमृते तु राक्षसपतेः संमन्यते मन्त्रिणः ।।

-अद्भुतदर्पणम् 1/13, पृष्ठ 9

1. विकृतलक्ष्मणः - प्रतिज्ञातः शपथदपि भवतां रावणवधः
प्रतिज्ञानिर्वाहव्रतमपि च जानामि भवतः ।
तदप्यस्मिन्दृष्टे चिरसमरवांछापरवशौ
करौ चापे तूणावपि सरभसौ मे विचरतः ।।

- वही 7/32

2. लक्ष्मणः - (स्वगतम् । सहर्षोत्साहम् ।) नन्वता विदानीमार्य :
मन्दं पदानि हि ददत्प्रतिपत्तिशून्या-
न्यादीपितो हृदि रुषा मुहुरुत्कयेव ।
क्षुद्रैरनुक्षणकदर्थितयापि गत्या
प्राप्तव्यदेशमिभराडिव नीत एव ।।

- वही 3/1

दुःखी अवश्य होते हैं, किन्तु वे सहसा इस समाचार पर विश्वास नहीं करते और दृढ़ विश्वास तो उन्हें अन्त तक नहीं होता । शम्बर के द्वारा सुग्रीव के वध की मिथ्या सूचना दिये जाने पर, जब श्रीराम अत्यन्त व्यथित हो जाते हैं तब भी लक्ष्मण उन्हें समझाते हैं कि वे बिना विचार किये ही क्यों विकल हो रहे हैं[1] । सुग्रीव की मृत्युसूचना पर पूर्ण विश्वास कर, जहाँ श्रीराम अत्यन्त विह्वल हो उठते हैं, वहीं कुछ मोहित होते हुए भी लक्ष्मण प्रकृतस्थ ही रहते हैं । यहाँ तक कि परम मायावी शम्बर भी उनके धैर्य को देखकर विचलित सा हो जाता है[2] ।

लक्ष्मण के चरित्र में आत्मविश्वास भी दृष्टिगोचर होता है । उन्हें अपने बाहुबल पर पूर्ण विश्वास है, तभी तो वे इन्द्रजित जैसे मयावी एवं परमवीर के प्रति भी उपेक्षापूर्ण दृष्टिकोण ही रखते हैं[3] । श्रीराम द्वारा

---

1. लक्ष्मणः – आर्य कथमविचार्यैव विक्लवोऽसि ।
   ननु निश्चितमेतन्मायाविकल्पितमिति ।

   –अद्भुतदर्पणम् अंक 2 पृष्ठ 23

2. लक्ष्मणः – (स्वगतम् ।)
   असावपदिशन्किंचित्प्रस्तुवन्किंचिदद्भुतम् ।
   तस्मिन्निदर्शयन्किंचित्संमोहयति मामपि ।।
   (प्रकाशम् ।) आर्य, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।
   शम्बरः – (स्वगतम् ।) दिष्ट्यायं प्रमुग्ध एव राहतकः । सन्निहिता चेयं गुर्वी शिला । – – – – – कथं प्रकृतिस्थ एव लक्ष्मणहतकः । अहो निस्स्नेहनिष्ठुरं हृदयमस्य यदस्मिन्नपि महाशोकानलोष्मण्यत्रमेव न किंचिदपि विक्लिद्यते । अथवास्य बलवती मत्प्रत्यसंभावना ।

   – वही अंक 2, पृष्ठ 27

3. रामः – (आकर्ण्य ।) वत्स, समागतस्ते वीरगोष्ठीविनोदसंविभाग-चिरकालकांक्षितो राक्षसलोकयुवराजः ।
   लक्ष्मणः – आर्य, भवेदेवं यद्यसौ न पलायेत । – वही अंक 4 पृष्ठ 45

मेघनाद को क्षमा दिये जाने पर उन्हें बहुत कष्ट होता है[1] । उनका आत्मविश्वास असफल भी नहीं होता, अन्त में वे मेघनाद का वध कर ही देते हैं । इसके पूर्व वे कई बार मेघनाद तथा कुम्भकर्ण के शिरच्छेद की बात भी कहते हैं[2]।

युद्ध की अभिलाषा, उनकी इतनी प्रबल है कि कभी-कभी वे अपना औद्धत्य प्रदर्शित करने से भी नहीं चूकते[3] । उनकी आवेशपूर्ण उद्धत उक्तियों को सुनकर सीता भी उन्हें दुःप्रेक्षणीय कहती हैं । जहाँ श्रीराम अत्यन्त मृदु प्रकृति के हैं, वहीं लक्ष्मण के चरित्र में क्रोध का आवेग दृष्टिगोचर होता है । भ्राता की उदारता के विपरीत, वे शत्रु को दण्ड देने के लिये सदैव तत्पर रहते हैं । यदि राम ने लक्ष्मण को रोक न दिया होता तो वे निश्चित ही शम्बर का वध कर देते ।

- -

1. विकृतलक्ष्मणः - नूनमार्यस्यायमनपेक्षितास्मदायोधनसंविभाग-
   चिरबद्धसंरम्भः साहसव्यापारः । कष्टं कष्टम् ।
   एतेन स्वयमिन्द्र एव जगृहे वेत्त्येष नागास्त्रम-
   प्येकोऽप्येष सहस्त्रवत्प्रतिदिशं गूढश्चरत्यम्बरे ।
   इत्थं युद्धतृषातुरेण च मया दत्तो निषेधो करः
   काकान्वेषिकारस्पृशा स च रणादार्येण विद्रावितः ।।

   -अद्भुतदर्पणम् 7/7

2. पुरः शरोत्कृत्तनिपातिताभ्यां द्राक्कुम्भकर्णेन्द्रजितोः शिरोभ्याम् ।
   अन्तःपुरस्वैरविहारभाजे निवेदयावो रणकर्म राज्ञे ।।

   -वही 7/37, 8/1, 8/36

3. विकृतलक्ष्मणः - तदिदानीम्
   बाणौघव्यतिकरवह्निनिदह्यमाना-
   द्दूष्यामुह्यन्दशवदनः पुरादमुष्मात् ।
   निर्यातुं द्रुतमवशः स्वयं दवाग्नि-
   व्यालीढादिव गिरिकुंजतः शरारुः ।।

इसी प्रकार रण से पलायन करने वाले राक्षसों का वध करने से राम के द्वारा रोक दिये जाने पर, वे कुछ क्रोधित होकर कहते हैं कि आप कहते हैं कि पलायन करने वाले राक्षसों पर शस्त्रप्रहार मत करो, तो इनके कुलों का उन्मूलन किस प्रकार होगा[1] ।

लक्ष्मण के चरित्र का एक कोमल पक्ष भी है । वे एक सहृदय एवं प्रेमी भ्राता भी हैं । वे श्रीराम द्वारा, रावण के पास भेजे गये सन्धि प्रस्ताव से खिन्न होकर कुछ व्यंग्य वचन कह तो जाते हैं, किन्तु भ्राता का दुःख देखकर शीघ्र ही उन्हें अपनी गलती का अहसास भी हो ही जाता है[2]। श्रीराम की खिन्नता से बोझिल वातावरण में जब विभीषण का मन्त्री अनल, विषयान्तर करने की चेष्टा करता है तो लक्ष्मण उसे सौभाग्य मानकर प्रसन्न होते हैं ।

एक अन्य स्थान पर भी उनकी भ्रातृभक्ति का स्पष्ट निदर्शन

- -

1. विकृतलक्ष्मणः - (सविमर्शामर्षम् ।) आर्य, श्रूयताम् ।
   पलायितव्यं च रणे पलाशैः पलायमाने च धनुर्न धार्यम् ।
   उन्मूलनीयानि च तत्कुलानीत्यर्थो महान्विप्रतिषिद्ध एषः ।।
   -अद्भुतदर्पणम् 7/12
2. लक्ष्मणः - (स्वगतम् ।) कथं यदृच्छाविक्षिप्तेन चेतसा क्षणमिव समुत्प्लुततो निरन्तराबद्धसंवेगदारुणामामज्जलीलितमजानता मया पुनरपि परिघट्टितं हृदयशल्यमार्यस्य । (प्रकाशम्।) आर्य, नार्हसि महार्हमात्मानमस्थाने गर्हितुम् ।
   - वही अंक 1, पृष्ठ 10
3. लक्ष्मणः - (स्वगतम् ।) दिष्ट्या कथान्तरं प्रस्तुतममात्यानलेन ।
   - वही अंक 1 पृष्ठ 12

होता है । जब अद्भुतदर्पण मणि के द्वारा वे सीता की वार्ता सुनते हैं, जिसमें सीता, सरमा और त्रिजटा से कहती हैं कि इस प्रकार के समर कार्यों में आर्यपुत्र को, वत्स लक्ष्मण का अग्रज कहा जाना चाहिये, तब वे मन ही मन कहते हैं कि उन्हें न तो "दशरथपुत्र" और न ही "सुमित्रापुत्र" अभिधान उतना अच्छा लगता है जितना कि "रामानुज"[1]।

नाटक के अन्त में भी वे श्रीराम के राज्याभिषेकोत्सव के उपलक्ष्य में समस्त मित्रगणों को सस्त्रीक, सबान्धव आमन्त्रित करते हैं तथा उन्हें उत्सव में उपस्थित देखकर अत्यन्त हर्षित होते हैं, यह उनके चरित्र की मृदुता ही है[2] ।

सीता के प्रति भी उनका हृदय समस्त आशंकाओं से रहित है । मणि के द्वारा सीता का दर्शन करते ही वे वाष्प गदगद कण्ठ से उन्हें

- -

1. प्रकृतलक्ष्मणः - ‹स्वगतम् ।› मम हि
सुतोदशरथस्येति सुमित्रापुत्र इत्यपि ।
न तथा नामनी रूढे यथा रामानुजाभिधा ।।
-अद्भुतदर्पणम् 7/33

2. लक्ष्मणः - आर्य, एवमेतत् । ‹सबहुमानम् ।›
सस्त्रीकश्च विभीषणः सवनितैः सर्वैः समं राक्षसैः
सस्त्रीकश्च हरीश्वरः सवनितैः सर्वैः समं वानरैः ।
सस्त्रीकः सवधूजनैरपि गुहः सर्वैः समं बान्धवै-
रागच्छन्तु विलोकयन्तु च चिरादार्याभिषेकोत्सवम् ।।
‹दृष्ट्वा सविस्मयानन्दम् ।› कथं त्रिलोकीजन एव सवनितः सर्वोऽपि स्वयमार्याभिषेकमहोत्सवदिदृक्षालक्षितः संमिलति ।
- वही 10/29

प्रणाम निवेदित करते हैं।[1] महोदर जब भी सीता के चरित्र की उत्कृष्टता की ओर संकेत करता है, लक्ष्मण प्रसन्न होकर श्रीराम का ध्यान उस ओर अवश्य आकृष्ट करते हैं। इसी प्रकार सीता के प्रति अनुचित वचन उन्हें कदापि सह्य नहीं हैं। रावण के उनके प्रति प्रलाप को सुनकर तो लक्ष्मण कई बार स्वयं ही उसका वध करने के लिये उद्यत हो जाते हैं।

इस सम्पूर्ण विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि नाटक में लक्ष्मण का चरित्र बहुत ही प्रभावोत्पादक एवं भावोत्तेजक है। नाटक के सीमित कथानक में लक्ष्मण के परम्पराप्राप्त गुणों को ही कवि ने अपनी प्रतिभा के चमत्कार से नवोन्मेष प्रदान किया है। इस प्रकार यद्यपि लक्ष्मण नाटक में उपनायक की भूमिका में प्रस्तुत हुए हैं तथापि उनका प्रखर व्यक्तित्व सम्पूर्ण नाटक में व्याप्त है। उनकी ओजमयी वाणी का प्रस्फुरण नाटक के दर्शक या पाठक को निरन्तर रोमांचित करता रहता है। ये न केवल नाटक को गति प्रदान करते हैं, अपितु उसे जीवन्त रखने में भी अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करते हैं। यदि देखा जाय तो सम्पूर्ण नाटक में लक्ष्मण का व्यक्तित्व ही छाया हुआ है और कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होने लगता है कि इस नाटक में लक्ष्मण को ही नायक होना चाहिये था, यद्यपि इसके नायक तो श्रीरामदेव ही हैं।

यदि लक्ष्मण के वाक्यविन्यास, ओजस्वी चरित्र एवं उनके आवेगपूर्ण संवादों को देखा जाय अथवा नाटक के प्रारम्भ में ही उनके प्रवेश के समय के संवादों पर ध्यान दिया जाय तो यह पात्र वेणीसंहार नाटक के भीम से साम्य रखता प्रतीत होता है। वेणीसंहार में जिस प्रकार भीम युधिष्ठिर द्वारा प्रस्तावित दुर्योधन के साथ सन्धि का घोर विरोध करते हैं, ठीक उसी प्रकार लक्ष्मण भी राम के द्वारा तारेय के माध्यम से प्रस्तावित रावणके साथ सन्धि का विरोध व्यक्त करते हुए ही प्रवेश करते हैं। अन्य स्थानों पर

---

1. लक्ष्मणः ------ {सबाष्पम् ।} अम्ब वैदेहि, चिरादभिवतती पादकमलयोरयं लक्ष्मणस्य शिरसा प्रणामपर्यायः । {इति प्रणमति ।}

-अद्भुतदर्पणम् अंक 6, पृष्ठ 73

भी लक्ष्मण की विचारशैली एवं संवाद वेणीसंहार के भीम का अनुकरण करते प्रतीत होते हैं । अतः इससे यह भी स्पष्ट होता है कि इस नाटक पर वेणीसंहार का कुछ प्रभाव है ।

रावण

रावण

गर्व, औद्धत्य एवं दुष्टता के जीवन्त प्रतीक के रूप में रावण का चरित्रांकन बड़ा ही स्पष्ट बन पड़ा है । यह पात्र नाटक का प्रतिनायक है । यद्यपि सीताहरण का नाटकीय वृत्तान्त इस नाटक में अंकित नहीं है तथापि प्रसंगवश यह ज्ञात हो जाता है कि रावण ने छलपूर्वक जनस्थान से सीता का अपहरण कर लिया है तथा इसी कारण राम ने रावण सहित राक्षसकुल के उन्मू-लन का संकल्प किया है । इस प्रकार नायक का शत्रु होने के कारण रावण नाटक का प्रतिनायक है ।

रावण, समुद्र के मध्य में स्थित त्रिकूट पर्वत के शिखर पर निर्मित राक्षसों की नगरी लंका का राजा है । वह त्रैलोक्य विजयी, महावीर योद्धा है, किन्तु लोभी, स्वार्थी, अत्यन्त उद्धत एवं दुष्ट प्रकृति का व्यक्ति है ।

रावण के चरित्र की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है, उसमें आत्मविश्वास का अतिरेक । उसे अपने तथा अपने पुत्र एवं भ्राता के सामर्थ्य पर इतना अधिक विश्वास है कि राम जैसे सर्वसामर्थ्यवान शत्रु के द्वारा नगर को घेर लिये जाने पर भी वह अन्तःपुर में स्वैरविहार से बाज नहीं आता ।

लोभ एवं स्वार्थ, रावण के स्वभाव के अविभाज्य अवगुण हैं । पुत्र को युवराज बनाने के लोभ से ही स्वार्थी रावण छोटे भाई विभीषण को अवसर पाते ही अपमानित कर निष्कासित कर देता है । स्वयं उसका मन्त्री माल्यवान्

इस बात को स्वीकार करता है[1]। रावण, स्वार्थवश विभीषण को अपने राज्य का अंश देना तो दूर अन्य किसी स्थान पर भी उसे अभिषिक्त करना भी स्वीकार नहीं करता[2]।

नाटक में रावण का सर्वप्रथम प्रवेश षष्ठ अंक के प्रारम्भ में होता है, जबकि रावण के निर्देश पर विद्युज्जिह्व तथा शूर्पणखा के द्वारा राम के मायामय कटे हुए सिर के प्रदर्शन के कारण व्याकुल सीता की व्यथा को दूर करने के लिये, त्रिजटा और सरमा मायानाटिका के माध्यम से लंकायुद्धक्षेत्र के दृश्यों को साक्षात् प्रदर्शित करने का उद्योग प्रारम्भ करती है । इसी मायानाटिका को गुप्त रूप से रावण भी देखता है । वह इसे देखने के लिये केवल इस कारण से उत्साहित होता है क्योंकि उसकी समझ के अनुसार इस प्रकार सरमा और त्रिजटा किसी न किसी प्रकार जानकी को उसके पक्ष में कर लेंगी । इस प्रकरण में रावण की विलासिता का सर्वोच्च्य प्रदर्शन होता है । वह इतना अधिक विलासी है कि राम जैसे प्रबल शत्रु के लंका पर आक्रमण करने के पश्चात् भी, युद्ध के लिये उतना उत्सुक नहीं है जितना कि जानकी को किसी भी प्रकार अपने अनुकूल करने के लिये

---

1. माल्यवान् - - - - -

   रक्षःश्रीयुवराजभावसमतानिष्पन्नयासूयया

   तस्मिन्निन्द्रजिता मुहुः प्रकटितं यद्वैरमत्यूर्जितम् ।

   तद्गूढं परिवर्धयन्दशमुखस्तैस्तैर्भयोपक्रमै-

   र्बन्धुक्षोभभिया विहाय निधनं व्युत्थानमस्यै हत ।।

   - अद्भुतदर्पणम् 5/15

2. रावणः - नासाधु समर्थितं भवता ।

   स्थापितोऽपि क्वचिद्रक्षो राज्यहिंसां करिष्यति ।

   आर्थं हि तेन द्वैराज्यं राक्षसाधिपतेर्मम ।।

   - वही 6/4

व्याकुल है । सीता के लिये वह इतना अधिक विकल है कि वह महोदर से कहता है, "मैं राम के बाण को तो तृण के समान समझता हूं लेकिन कामदेव का बाण मुझे वज्रपात जैसा लगता है[1]।" मदनपीड़ा की व्याकुलता से वह इतना निर्बल हो गया है कि वह मानने लगता है कि उसे दो लोगों से युद्ध करना पड़ रहा है, एक राम से दूसरा काम से । राम को तो वह सुनिग्रह मानता भी है किन्तु कामवेग को निग्रह करने में स्वयं को असमर्थ पा रहा है[2]।

रावण के कामोन्माद की उस समय पराकाष्ठा प्रतीत होती है, जब वह सीता के मुख पर प्रसन्नता की पूर्ण आभा देखने के लिये अपना माया-मय कटा हुआ सिर भी सीता के सामने प्रस्तुत करने के लिये उद्यत हो जाता है[3]।

रावण मात्र कामोन्मादी ही नहीं है, दुष्टता और क्रूरता भी

---

1. रावणः - (परिक्रामन् । विचिन्त्य निःश्वस्य च ।) वयस्य महोदर,
   रामस्य बाणवेगं न चिन्तयेऽहं तृणावपातमिव ।
   कामस्य बाणवेगः कथं नु मयि वज्रपाततामयते ।।

   -अद्भुतदर्पणम् 6/20

2. रावणः - - - - - - -
   सीताकृतेऽभियुंजाते रामकामावुभौ च माम् ।
   सुनिग्रहस्तयोराद्यो मया दुर्निग्रहः परः ।।

   - वही 6/21

3. रावणः - - - - - - (प्रकाशम् ।) वयस्य, निशाम्यतामयं दशाननस्य
   मतसिद्धान्तः संग्रहेण ।
   मायया स्वशिरश्छेदमपि रोषैकल्पितम्
   दर्शयित्वापि सीताया द्रष्टव्या प्रसन्नता ।।

   - वही 7/34

उसमें कूट-कूटकर भरी है । वैतालिक जब, उसके द्वारा किये गये स्त्रियों के अपहरण, अत्याचार एवं क्रूरता आदि का स्तुतिपरक वर्णन करते हुए उसे कामोन्माद का अग्रणी बताते हैं तो रावण का हृदय गदगद हो जाता है । उसे ऐसा प्रतीत होता है, जैसे उसके जीवन के उन चरम विलाससुखों का किसी ने नवीनीकरण कर दिया हो[1] । उसकी इस उक्ति को सुनकर लक्ष्मण उसे पशुवत चेष्टा करने वाला कहते हैं[2] ।

उसकी दुष्टता इतने से ही शान्त नहीं होती है । वह रम्भा तथा रुदन करती हुई पुंजिकस्थला के साथ किये गये बलप्रयोग के अपने क्रूर कृत्यों को भी बड़ी सहजतापूर्वक सुनाता है[3]।

- -

1. स्वर्गस्त्रैणापहारी हरिदधिपकुलस्त्रीसहस्रापहर्ता
   हर्ता मर्त्यांगनानामहिपतिदनुजाधीशनारीविहारी ।
   रक्षःस्त्रीलक्षचित्तप्रमथनमदनो भिन्नधर्मार्थितुः
   कामव्यामोहदाहज्वरचिरपथिकग्रामणीरेष भाति ।।
   रावणः - सत्यमनेन वैतालिकवचनेन पुनरपि नवीकृताः स्मः ।

   -अद्भुतदर्पणम् 7/27

2. प्रकृतलक्ष्मणः - अहो निर्लज्जता राक्षसापशदस्य ।
   पशुप्रायविचेष्टोऽयं पौलस्त्यकुलपांसनः ।
   स्वयंकृतेन पापेन स्तूयमानेन मोदते ।।

   - वही 7/28

3. रावणः - (विदूषकस्य हस्तं हस्तेनास्फाल्य विकृतं विहस्य ।)
   अहो चिरानुभूतोऽपि तात्कालिक इव मदयति मे हृदयमद्यापि
   कलितमोदारम्भो रम्भाबलात्कारः ।

   - - - - - - -

   रावणः - - - - - - -
   बलाद्भुक्तां मया दृष्ट्वा रुदन्तीं पुंजिकस्थलाम् ।
   मा बलात्कुरु नारीरित्यन्वशान्मां पितामहः ।।

रावण बड़ी ही उद्धत प्रकृति का पुरुष है । उसके युद्ध में जाने पर जब वानर, उसके दर्शनमात्र से ही भागने लगते हैं, तब वह विकट हास्य के साथ गर्वपूर्ण स्वर में कहता है कि सप्तलोक की विजय से लेकर अब तक उसके एक बार आयुध सन्धान करने मात्र से युद्धक्रिया शान्त हो जाती है, इसलिये समस्त युद्धशक्ति तथा माया प्रयुक्त न होने के कारण उसमें ही कुण्ठित हुई जा रही है[1] । वह अपने औद्धत्य एवं गर्व के कारण राम को अत्यन्त सामान्य व्यक्ति समझता है तथा विकत्थना करता है कि वह राम पर मन्त्र, अभिचार, तन्त्र तथा भयानक अस्त्रों का प्रहार नहीं करेगा[2] । इसी प्रकार जब

---

1. विकृतरावणः - {विकटं विहस्य सर्वतोऽवलोक्य ।} हन्त, दाशरथिमन्वेषयतो मम दर्शनमात्रेणैव सर्वतो विभज्यते सनायकाः कपिवाहिनीसैनिकाः । ही ही ।

   आ तस्मान्मम सप्तलोकविजयादद्यापि युद्धक्रिया
   शाम्यत्येव यदेवमायुधसकृत्संधानमात्रादपि ।
   तत्सुत्राप्युचितप्रयोगविरहाभावेन नानुष्ठिता
   सा मायागमसंप्रदायपदवी मय्येव धिग्जीर्यति ।।

   - अद्भुतदर्पणम् 8/8

2. विकृतरावणः - यद्येवमभियोक्ता त्वमनरण्य इवासि माम् ।
   तद्विमर्दक्षमां भूमिं समेष्यावो यदीच्छसि ।।
   न माया नो कूटं न पुनरभिचारक्रमविधि-
   र्न मन्त्रो नो तन्त्रं जगदविदितो नास्त्रनिचयः ।
   त्वदभ्यस्तैरस्त्रैस्त्वदभिलषितैर्हेतिभिरपि
   प्रयच्छाम्याजिं ते यदि तव दिदृक्षास्ति हृदये ।।

   - वही 8/9, 10

वह राम के बाणों से घायल होकर मूर्च्छित हो जाता है, तब भी राम के सामर्थ्य की अवहेलना करता है तथा व्यंग्यपूर्वक उनके साथ दो ही भुजाओं से युद्ध करने की गर्वपूर्ण विकत्थना करता है[1]।

रावण में भले ही अवगुणों की परम सीमा हो किन्तु उसकी वीरता एवं बाहुबल को नकारा नहीं जा सकता। उसके बन्दीजनों के द्वारा की गई स्तुति से उसका पराक्रम स्पष्ट हो जाता है। यहां ज्ञात होता है कि उसने खेल ही खेल में कैलाशपर्वत को उठा लिया था। उसने पाताल से लेकर देवलोक तक की समस्त सार वस्तुओं का हरण कर लिया है व उसके दिव्य शस्त्रास्त्रों के विजय से समस्त भूमण्डल प्रकाशित हो रहा है[2]।

रावण के प्रधानशत्रु स्वयं श्रीराम भी उसके प्रति कही गई वैतालिक की इन उक्तियों का समर्थन करते हैं[3]। एक अन्य स्थान पर श्रीराम उसे त्रैलोक्य विजयोद्यत बताते हुए, किसी समय हुई उसकी पराजय को भी, घृणाकर

---

1. विकृतरावणः - तत्किमन्येन शस्त्रेण दशाननस्य।
   हेलोन्मूलितकैलासाः शेषास्तिष्ठन्तु मे भुजाः।
   द्विभुजं त्वामहं दोर्भ्यां द्वाभ्यामेवाभियोत्स्ये ।।

   -अद्भुतदर्पणम् 8/18

2. कैलासाचलकेलिचालनकलानिर्व्यूढदोर्विक्रमः।
   सर्वोर्वीविजयप्रकाशितमहाशस्त्रास्त्रसारोदयः।
   पातालामरलोकसारहरणप्रख्याततेजोमयो
   रक्षोलोकमहेश्वरो विजयते लोकेषु लंकेश्वरः ।।

   - वही 7/25

3. प्रकृतरामः - वत्स, दृष्ट एव हि लंकेश्वरस्य बन्दिस्तुतावपि पराक्रमवस्तुनो याथार्थ्यम्।

   - वही अंक 7, पृष्ठ 28

न्याय से ही पराजय मानते हैं ।

अन्यों के प्रति अनुदार होते हुए भी, रावण अपने पुत्र एवं भ्राता के प्रति अत्यन्त स्नेह रखता है । कुम्भकर्ण तथा मेघनाद के वध का वृत्तान्त सुनते ही वह मूर्च्छित हो जाता है । मूर्च्छा से जागृत होने पर एक बार तो वह न केवल राज्य अपितु सीता के प्रति भी विरक्त हो जाता है । यहां तक कि अपने जीवन के प्रति भी विरक्त हो जाता है[1]।

इस विरक्ति के पश्चात् भी रावण का शौर्य तथा युद्धविजय की आकांक्षा उसे एक बार पुनः राम के साथ अन्तिम युद्ध के लिये प्रेरित करती है । और वह अपनी समस्त सेना एवं मायावी शक्तियों तथा शस्त्रबल के साथ युद्ध में अवतीर्ण होता है । युद्धस्थल में अपने पराक्रम तथा मायावी शक्ति की पराकाष्ठा का प्रदर्शन करता है । यह जानते हुए भी कि कुम्भकर्ण और मेघनाद जैसे महान पराक्रमी भ्राता और पुत्र के वध के उपरान्त कदाचित उसकी विजय की संभावना में कहीं सन्देह हो सकता है, फिर भी निकुम्भिला और लंका के संवाद प्रकरण से यही प्रतीत होता है कि महारथी रावण मानो अपनी विजय के लिये ही अपनी समस्त शक्तियों का प्रयोग कर युद्ध कर रहा है ।

इस प्रकार अद्भुतदर्पणम् का प्रतिनायक रावण जहाँ एक ओर सीता के प्रति आसक्ति में अपना सब कुछ दांव पर लगाने को उद्यत है, वहीं युद्ध में भी अपने असामान्य अमानवीय शक्ति का प्रदर्शन करता है ।

---

1. रावणः - ---- किं राज्येन किमसुभिः किं न्वनया सीतया वा मे ।
 यन्मम सर्वप्राणौ यातौ वत्सौ विमुच्य मां क्वापि ।।
 - अद्भुतदर्पणम् 8/42

विदूषक (महोदर)

संस्कृत नाट्यसाहित्य में विदूषक नामक पात्र का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है । यह विलासी अथवा श्रृंगारप्रिय नायकों का मित्र तथा नर्म सचिव होता है । साधारणतः तो यह प्रतीत होता है कि वह नाटक में हास्यरस उत्पन्न करने का एक माध्यम है किन्तु वह बड़े ही काम का पात्र होता है । वह केवल हास्य का माध्यम नहीं वरन् अपनी सूझबूझ एवं वाक्चातुर्य के द्वारा नायक को विपत्तियों तथा विषम परिस्थितियों से भी बचाता है ।

अद्भुतदर्पणम् नाटक का विदूषक, नाट्यकर्त्ता की कल्पना की नितान्त नवीन सूझ है । चूंकि श्रीराम के सर्वसमर्थ दैवी, धीर, गम्भीर-व्यक्तित्व तथा एकपत्नी व्रत के कारण उनके सहचर के रूप में विदूषक जैसा पात्र उपयुक्त नहीं प्रतीत होता, इसलिये इतःपर्यन्त नाटककारों ने रामकथा-परक नाटकों में इस पात्र की रचना नहीं की थी । किन्तु कवि महादेव ने इस पात्र का खलनायक रावण के मित्र तथा प्रणयसचिव के रूप में सफलतापूर्वक प्रयोग कर एक नवीन कल्पना का सूत्रपात किया है ।

विदूषक नाटक की प्रस्तावना में नान्दी के पश्चात् सूत्रधार के साथ ही रंगमंच पर आता है । यहां पर इसे नान्दी, ब्राह्मणसेवा या मंगलविधान से कोई सरोकार नहीं, वह तो उसी की मंगलकामना करता है, जिसके माध्यम से उसे मोदकों की प्राप्ति हो रही हो[1]। जब सूत्रधार उससे कहता है कि उसे लंकेश्वर के नर्मसचिव की भूमिका नाटक में प्रस्तुत करनी है, इसीलिये मोदकों का उपहार दिया गया है, उस समय विदूषक नटों के उपर एक छोटे से वाक्य में ही जो कुछ कह जाता है, वह उक्ति सामाजिकों और सहृदयों के लिये अन्तर्वेदना दे

---

1. विदूषकः - तव नान्दी वा ब्राह्मणसेवा वा भवतु मंगलं किमपि ।
मम पुनर्मंगलमेतल्लब्धा मोदका अनेन ।।

जाती है । उसका यह वाक्य कि क्या आज नाचना है अथवा नटों का जीवन जीने वाले व्यक्तियों की ऐसी ही दुःखमय जीविका है, उस युग से लेकर वर्तमान युग तक के रंगकलाकारों की हृदयव्यथा का और उनके मनोभावों का सजीव चित्रण प्रस्तुत करता है[1] ।

नाटकों की परम्परा के अनुसार विदूषक ब्राह्मणवर्ग का होता है । इस नाटक में विदूषक रावण के नर्मसचिव महोदर की भूमिका में है अतः यह सिद्ध है कि वह राक्षस जाति का है । परम्परा का निर्वाह करने के लिये कवि ने उसे ब्रह्मराक्षस के रूप में प्रस्तुत किया है । एक स्थान पर विद्युज्जिह्व उसे ब्रह्मराक्षसकुल महोपाध्याय कहता है[2] तथा एक अन्य स्थान पर वह अपनी पत्नी कुण्डोदरी को ब्रह्मराक्षसी बताता है[3] ।

महोदर के माध्यम से कवि ने हास्यरस की व्यंजना बड़ी सफलतापूर्वक की है । पहले तो उसका भोजनभट्ट होना ही हास्य उत्पन्न करता है । मांसमोदकों से उदरभरण करना उसे नितान्त प्रिय है[4]। नाटक के प्रारम्भ में ही

---

1. विदूषकः - कथमद्य नर्तितव्यम् । अथवेदृशयेव दुर्जीविका शैलूषोपजीवकानाम् ।
 -अद्भुतदर्पणम् अंक 1, पृष्ठ 2

2. विद्युज्जिह्वः - दिष्ट्या समागत एवायमखिलब्रह्मराक्षसकुलमहोपाध्यायो महाराजलंकेश्वरस्य कामार्थतीर्थमर्मज्ञो नर्मसुहृन्महोदर - - - - - - - ।
 - वही अंक 5, पृष्ठ 55

3. महोदरः - - - - - - - -मम ब्रह्मराक्षसी कुण्डोदर्येव - - - ।
 - वही अंक 5 पृष्ठ 56

4. महोदरः - कथं मया प्रत्यग्रमांसमोदकैः परिपूरितपिचण्डकेन पवनतनयबाहुवेगपरिभग्नपादपसंकुलेऽत्र प्रमदवने सरभसमहिण्डितव्यम् ।
 - वही अंक 5, पृष्ठ 55

विदूषक की मोदकप्रियता परिलक्षित होकर हास्य उत्पन्न करती है। सूत्रधार के यह पूछने पर कि किसलिये रंगकार्य का आरम्भ किया जा रहा है, वह कहता है कि और किसलिये, मुझ महाब्राह्मण को मोदक प्राप्त कराने के लिये। इसी प्रकार प्रस्तावना के अन्त में वह अपनी भूमिकापर्यन्त यजमानों की अन्नसत्रशाला में विश्राम करने चला जाता है[1]।

एक अन्य स्थान पर भी उसका सम्भाषण हास्यरस को पुष्टि करता है। विद्युज्जिह्व के द्वारा यह कहे जाने पर कि अशोकवाटिका में किसी पुरुष का जाना निषिद्ध है, इसलिये वह जाकर शूर्पणखा को बुला लाये, तब क्रोधित होकर महोदर का यह कहना कि क्या वह पुरुष नहीं है तथा अपने पौरुष का प्रमाण देने के लिये वह जिन उक्तियों का प्रयोग करता है वे दर्शकों को हास्यरस से सराबोर कर देती हैं[2]।

महोदर रावण का प्रणयसखा भी है। रावण के द्वारा अपहृता स्त्रियों को वह ही रावण के अनुकूल बनाता है[3]। रावण के प्रणयव्यापार में

- -

1. विदूषकः - हुं, किंनिमित्त इति। मम खलु महाब्राह्मणस्य मोदकोपायन-पूर्वं रंगसभाजनं कर्तुमिति।

-अद्भुतदर्पणम् अंक 1, पृष्ठ 3

2. विदूषकः - स्वस्ति भवते। तत् इत एव कावेरीपरिसरे यजमानानामन्न-सत्रशालांप्रविश्य विश्राम्यामि।

- वही अंक 1, पृष्ठ 6

3. महोदरः - (सरोषम्।) अरेरे अमात्यापसद, कथं ते अहं न पुरुषः। अथवा किं त्वमेतज्जानासि। प्रतिसंवत्सरं प्रसूता मम ब्रह्मराक्षसी कुण्डोदर्येव जानाति मम पुरुषत्वम्।

- वही अंक 5, पृष्ठ 56

महोदर निरन्तर सहयोग देता है, यही कारण है कि लंकेश्वर उसे सीता को अपने प्रति आकर्षित करने के लिये नियुक्त करता है[1]।

नाटकीय वस्तु के विकास में महोदर का व्यापक सहयोग है। वह लंकेश्वर का नर्मसचिव ही नहीं एक सच्चा मित्र भी है। रावण के उद्धत एवं क्रोधी स्वभाव के कारण यद्यपि वह खुलकर रावण को समझा तो नहीं पाता किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से अवश्य ही यह स्पष्ट कर देता है कि सीता को लौटाये बिना उसका कल्याण सम्भव नहीं है। रावण स्वयं भी यह स्वीकार करता है कि महोदर से अच्छा उसका कोई मित्र नहीं है[2]।

महोदर यद्यपि राक्षसकुलोत्पन्न एवं रावण का सखा है, तथापि वह सीता के सतीत्व का भी प्रशंसक है[3]। महोदर की उक्तियों से ही नाटक में सीताचरित्र को स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार नाटक के कथानक में रोचकता लाने में विदूषक महोदर का बहुत बड़ा योगदान है।

- -

1. महोदरः – ननु मयैव सर्वमिदं साधितं तव स्त्रीसहस्रसंवननम्।
रावणः – अत एव त्वमिहापि कर्मणि नियुक्तोऽसि।

–अद्भुतदर्पणम् अंक 6, पृष्ठ 77

2. रावणः – (सश्लाघम्।) सखे महोदर, न केवलं महाकामतन्त्रेषु मे सचिवोऽसि। अपि तु महाराज्यतन्त्रेऽपि।

– वही अंक 6, पृष्ठ 67

3. महोदरः – (अपवार्य।)
विद्युज्जिह्वशतेनापि त्रिजटाभीमयोर्नियुततो वापि।
सीताभिजयमकार्यं करोमीति यौवने प्रदर्शयामि॥

– वही 6/7

महोदरः – भो वयस्य, सीतारक्त उन्मत्तोऽसि। सीतावेषाभिरेवास्माभिर्मोहनीय इति सर्वाभिर्मन्दोदरीप्रमुखाभिरन्तःपुरभामिनीभिरेकैकीभिर्गृहीतुमारब्धः सीताया वेषः कयापि तासु गृहीतुं न शक्यो जातः।

अन्य पुरुष पात्र

शम्बर

यह नाटक का, यद्यपि एक गौण पात्र ही है किन्तु इसकी उपस्थिति से नाटक के कथानक को एक नवीन गति एवं विशिष्टता प्राप्त हुई है। यह रावण-पक्ष का एक अत्यन्त मायावी राक्षस है, जो वेशपरिवर्तन करने एवं अभिनय करने में अत्यन्त दक्ष है। जहाँ वह अपने इस कौशल से शत्रुपक्ष को भ्रमित कर देता है, वहीं उसके स्वगत कथन से यह भी ज्ञात होता है कि इसी वेशपरिवर्तन की कला के द्वारा अपने स्वामी रावण का वह मनोरंजन भी करता है[1]। शम्बर की एक अन्य विशेषता है उसकी चालाकी। उसकी इस चतुराई का स्पष्ट निदर्शन तब होता है जब वह जाम्बवान् के द्वारा पकड़कर विभीषण के पास ले जाया जा रहा होता है। इस स्थान पर जाम्बवान् का ध्यान श्रीराम के द्वारा भेजे गये पत्र को पढ़ने में बंटते ही, वह अचानक सामने आए दधिमुख को पकड़ाकर स्वयं तिरोहित हो जाता है[2]। इसके अतिरिक्त प्रथम अंक से लेकर चतुर्थ अंक तक उसके चातुर्य एवं सतर्कता के अनेक प्रसंग दृष्टिगोचर होते हैं, तभी तो न केवल श्रीराम जैसे धैर्यवान अपितु लक्ष्मण जैसे शंकाशील एवं सतर्क व्यक्ति भी भ्रमित हो जाते हैं। यह शम्बर की सतर्कता ही है जिससे वह कभी दधिमुख, कभी विभीषण तो कभी अंगद का रूप धारणकर, श्रीराम, लक्ष्मण, जाम्बवान् एवं दधिमुख को निरन्तर धोखा देता रहता है

---

1. शम्बरः - (---- अस्ति वैदेहीविरहातुरस्य महाराजलंकेश्वरस्य परिहासविनोदनाय प्रागेव धृतोऽयं मे वानरवेषः ।

   - अद्भुतदर्पणम् अंक । पृष्ठ 13

2. शम्बर : (सहर्षोद्रेकम्।) दिष्ट्या खलु दाशरथिप्रहितं कार्यलिखमवमुक्तमत्पाणि-रादाय हस्ताभ्यामवहितेन चेतसा यावदनुवाचयति तावदकस्मात्संनिपतितं सुग्रीवपरिचारकं दधिमुखमेव झटिति गोचरीकृत्य तिरोभवता मया वंचितोऽयं जरद्भल्लूकः । = वही अंक 2 पृष्ठ 17, 18

शम्बर के चरित्रांकन में कवि ने उसके स्वामिभक्त रूप को भी प्रकाशित किया है । वह अपने स्वामी मेघनाद के अभिचार यज्ञ को निर्विघ्न पूर्ण कराने के लिए, अपने प्राणों की चिन्ता न करता हुआ अकेला ही शत्रुसेना में अव्यवस्था फैलाने के लिये विभिन्न प्रयत्न करता है । जब वह पकड़ा जाता है तब भी उसे अपने पकड़े जाने की कोई चिन्ता नहीं है, अपितु उसे इस बात का सन्तोष है कि उसके स्वामी का यज्ञ निर्विघ्न पूर्ण हुआ[1] ।

इस प्रकार नाटक में इस पात्र का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है । इसके माध्यम से कवि ने, न केवल कथानक में एक विशिष्ट रोचकता का आधान किया है, अपितु श्रीराम की मित्र के प्रति सहज संवेदना को भी अभिव्यक्ति दी है । इसके प्रसंग के द्वारा लक्ष्मण के धैर्य एवं सतर्कता को भी उभारा गया है ।

जाम्बवान्

यद्यपि इतिहासप्रसिद्ध यह है कि जाम्बवान् का राम-रावण युद्ध में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है, किन्तु इस नाटक के सीमित कथानक में इस पात्र की उपस्थिति अपेक्षाकृत कम महत्त्वपूर्ण रही है । तथापि इस पात्र के द्वारा दर्शक एवं पाठक को अनेक महत्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त होती हैं, ।जैसे विभीषण के मन्त्री सम्पाती का यह कथन कि मेघनाद ने विभीषण के घर को जला देने की आज्ञा दी है, इसकी सूचना श्रीराम को जाम्बवान् ही पहले देते हैं, ।इसी प्रकार वानरवेश में राक्षस,सेना में विचरण कर सकते हैं इसकी सम्भावना भी सर्वप्रथम जाम्बवान् ही व्यक्त करते हैं[2]।

- -

1. शम्बरः - ﴾स्वगतं विमृश्य ।﴿ बद्धेऽपि मयि शक्यमिदानीं यातुधानैरुच्छ्वसितुं यदेष निर्वर्तितकाद्रवेयावाहनः कुमारमेघनादः सिद्धिवटमूलादुत्थितः स्वयमभ्य-मित्रीणश्च संवृत्तः । -अद्भुतदर्पणम् अंक 4, पृष्ठ 44

2. जाम्बवान् - देव, कदाचिद्वानरवेषेण राक्षसा विचरेयुः ।

- वही अंक 1, पृष्ठ 14

तथा सुग्रीव के द्वारा फेंके गए रावण के मुकुट से छिटककर गिरी हुई अद्भुतदर्पण नामक मणि, विभीषण के द्वारा श्रीराम को दे दी गई है इसकी सूचना भी जाम्बवान् ही देते हैं ।

इनके भी कुछ चारित्रिक गुण नाटक के अध्ययन से स्पष्ट होते हैं । जाम्बवान् अत्यन्त बुद्धिमान, विचारशील एवं नीतिज्ञ के रूप में प्रदर्शित हैं । जाम्बवान् की बुद्धिमत्ता का अनुमान इतने से ही लगाया जा सकता है कि वे ही सर्वप्रथम यह सम्भावना व्यक्त करते हैं कि वानरवेश में राक्षस भी विचरण कर सकते हैं । उनकी इस बात को सुनकर तो एक बार मायावी शम्बर भी शंकित हो उठता है कि कहीं वह पहचान तो नहीं लिया गया । यही नहीं शम्बर के द्वारा अंगद के शत्रुपक्ष में प्रवेश के वृत्तान्त को सुनकर, वे शम्बर के मायावेश धारण करने वाले राक्षस होने का जो सन्देह व्यक्त करते हैं, वह भी उनकी बुद्धिमत्ता का ही परिचायक है[1] ।

नाटक में जाम्बवान् एक विचारशील व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत हुए हैं । उनकी यह विचारशीलता अनेक स्थानों पर परिलक्षित होती है । एक स्थान पर जब विभीषण का रूप धारणकर मायावी शम्बर उन्हें दधिमुख का वध करने के लिये कहता है तो विवेकशील जाम्बवान् श्रीराम की आज्ञा की प्रतीक्षा में दधिमुख का वध नहीं करते । इस प्रकार दधिमुख मृत्यु के मुख में जाने से बच जाता है[2]।

इसी प्रकार दधिमुख का वेश धारण करने वाला शम्बर, अंगद के

---

1. जाम्बवान् - (अपवार्य ।) देव, यथायमयथातथेंगितः, तथा मन्ये मायागृहीतवेषो राक्षस इति । -अद्भुतदर्पणम् अंक 1, पृष्ठ 17

2. दधिमुखः - उपकृतं मन्त्वार्येण ।
   वधाय रक्षः प्रहितोऽप्यार्यो रोषेण केवलम् ।
   प्रतीक्षमाणो रामाज्ञां प्राणान्नरक्षितवान्मम ।।
   - वही 4/3

शत्रुपक्ष में प्रवेश का मिथ्या वृत्तान्त कहता है तथा उसे सुनकर लक्ष्मण क्रोधित हो जाते हैं, उस समय एकमात्र जाम्बवान् ही विचार करते हैं कि राक्षसों में छल बहुत अधिक होता है, यह जो कुछ भी कह रहा है वह असत्य ही प्रतीत होता है[1]। इस प्रकार अन्य कई प्रसंगों में उनकी विवेकी मति का परिचय मिलता है ।

श्रीराम के ये वयोवृद्ध मन्त्री, बुद्धिमान ही नहीं, नीतिज्ञ भी हैं । वे गुप्तचरों को अपने तथा शत्रु दोनों की पक्षों का मर्म ज्ञात करने के लिये कहते हैं[2] यद्यपि वे सुरक्षा कारणों से निरन्तर शंकित रहते हैं किन्तु वे इस प्रवृत्ति को उचित नहीं समझते[3]।

इसी प्रकार श्रीराम के गुणवर्णन के माध्यम से वे एक उत्तम राजा की पहचान भी बताते हैं । वे कहते हैं कि श्रीराम क्षुब्ध नहीं होते, हित में निरन्तर संलग्न रहते हैं, मित्रों पर विश्वास करते हैं, शंका का त्याग कर उन्हें अपना विश्वासपात्र बना लेते हैं । बिना निश्चय किये कोई कार्य नहीं करते और न ही मन्त्रणा किये बिना कोई निश्चय करते हैं । इस प्रकार बल से प्राप्त स्वामित्व को भी वे अपना अंग बना लेते हैं[4]।

---

1. जाम्बवान् - (विमृश्य ।) बहुच्छलानि रक्षांसि यत्किंचित्प्रथयन्ति तदनृतमिव प्रतिभाति । -अद्भुतदर्पणम् अंक । पृष्ठ 16
2. जाम्बवान् - भद्रौ, विचार्यतां सर्वमपि स्वेषु परेषु वा मर्म ।
   - वही अंक 1, पृष्ठ 15
3. जाम्बवान् - (विचिन्त्य । निश्वस्य ।) भद्र, एवमष्टादशस्वपि तीर्थेषु आवश्यकशंकानुषंगादखिन्नदेष्यादं भवति राजकार्यैकतन्त्रो मन्त्रिजनः ।
   - वही अंक 2, पृष्ठ 20
4. क्षौदन्न क्षमते हिताय घटते मित्रेषु दत्ते मनः
   शंकास्थानविकल्पनिर्विकुरुते विश्वास्यतामात्मनः ।
   नानिश्चित्य करोति नापि कुरुते मन्त्रैर्विना निश्चयं -
   स्वातन्त्र्यैकफलं बलोर्जितमपि स्वाम्यं नयत्यंगताम् ।। -वही 2/5

इस प्रकार जाम्बवान् के चरित्र में एक मन्त्री के लिये आवश्यक समस्त गुण विद्यमान हैं ।

माल्यवान् तथा मय

माल्यवान् तथा मय, ये दोनों ही रावणपक्ष के पात्र हैं । इनमें माल्यवान् अत्यन्त संवेदनशील तथा भीरु प्रकृति का है । इस पात्र का अवतरण कवि ने श्रीराम की भगवत्ता का प्रतिपादन करने के लिये किया है । माल्यवान्, क्योंकि रावण का नाना है अतः वयोवृद्ध होने से उसे देव-दानव युद्ध के अनेक पूर्वप्रसंगों का स्मरण है । उसे श्रीराम के विषय में भी अनेक घटनाएं ज्ञात हैं, इन्हीं के आधार पर वह श्रीराम को विष्णु तथा सीताजी को भी विष्णु का ही एक अंश बताता है[1]।

माल्यवान् राक्षस जाति के प्रति अत्यन्त संवेदनशील है । उनका विनाश उसे दुःखी कर देता है और वह कष्टपूर्वक कह उठता है कि इस देह में प्राणों का स्फुरण क्षणिक है, ऐसा प्रायः कहा जाता है किन्तु देवपीडित इस राक्षसजाति में यह सत्य ही है[2]।

इसके अतिरिक्त माल्यवान् अत्यन्त भीरु प्रकृति का भी है ।

---

1. माल्यवान् - सुप्रसिद्धमेतत् । तथा च श्रूयताम् ।
   एकश्चतुर्धा जातो यस्तस्यांशः पंचमो ह्ययम् ।
   सर्वनाशाय सीतेति सम्मोहयति रावणम् ।।
   -अद्भुतदर्पणम् 5/1।

2. माल्यवान् - (निःश्वस्य ।) भोः, कष्टं कष्टम् ।
   इह देहिषु विस्फुरणं क्षणिकमिति प्रायशो वादः ।
   तदिदं दैवहतेषु प्रत्यक्षं राक्षसेष्वेव ।।
   - वही 5/1

श्रीराम के दैवी गुणों से जब उसे उनका विष्णु रूप होना निश्चित हो जाता है[1] तो वह, देव-दानव युद्ध का स्मरण कर उठता है। उस महाविनाश को याद करके ही माल्यवान् मूर्च्छित हो जाता है। वह केवल प्रतिपक्षी राम से ही नहीं डरता अपितु रावण से भी भयभीत रहता है। वह रावण के क्रोध के कारण उसे उचित सलाह भी नहीं दे पाता। मय के यह कहने पर कि मातामह, आपने क्या कभी महाराज दशानन को समझाने की चेष्टा की, तब वह कहता है कि आप दानवराज की उद्धत प्रकृति को जानते तो हैं ही, वह तो एक बार कहने पर सुनते ही नहीं, दो बार कहने पर मुख टेढ़ा करल लेते हैं और बार-बार विज्ञापित करने पर तो भौहें टेढ़ी करके देखते हैं[2]।

दूरदर्शी माल्यवान्, यह जानते हुए भी कि सीता लंका के लिये साक्षात् मृत्यु है कुछ कर नहीं सकता, मात्र एक विरक्त हंसी हंसकर रह जाता है[3]।

---

1. देवोऽसाविति शैवचापदलने सामान्यतो योऽभव-
   त्क्षत्रारेर्विजये पुनः परिमितो विष्णुः शिवो वेति यः।
   सोऽयं दाशरथौ हठोपनमतस्ताक्ष्र्यस्य साक्षात्सतः
   साचिव्ये सति हन्त विष्णुरिति मे तर्कः प्रसादं गतः।।
   -अद्भुतदर्पणम् 5/4
2. माल्यवान् - सखे दानवराज, जानासि खलु रावणस्य साहसिक-
   लक्ष्मामाजानसिद्धामत्युद्धतां प्रकृतिम्।
   अश्रुतिः सकृदुक्तेऽर्थे द्विरुक्ते मुखजिह्मता।
   भूयो विज्ञाप्यमाने तु भग्नभ्रुकुटिवीक्षितम्।। - वही 5/12
3. माल्यवान् - (श्रुत्वा। सनिर्वेदं विहस्य।) सखे दानवराज, श्रुतः किल ते
   जामातुरादेशः। (निःश्वस्य।)
   मृत्युरेषा हि लंकाया मिथिलाधिपतेः सुता।
   प्रसह्य दशकण्ठेन भवने परिपाल्यते।। - वही 5/21

माल्यवान् के साथ ही कवि ने मय नामक पात्र को भी प्रस्तुत किया है। यह परम मायावी राक्षस है, इसका ज्ञान प्रथम अंक में ही हो जाता है जहां विभीषण के द्वारा, लंका में श्रेष्ठ मायाप्रवीणों के एकत्रीकरण की सूचना श्रीराम के पास भेजी जाती है[1]। माल्यवान् ही रावण को परम अद्भुत, अद्भुतदर्पणनामक मणि देता है जो दैवयोग से श्रीराम के हाथ लग जाती है। यह पात्र रावण का श्वसुर है तथा सदैव उसका ही समर्थन करता है। प्रारम्भ में तो वह श्रीराम को मनुष्य ही समझता है किन्तु माल्यवान् के समझाने पर वह भी उनके देवत्व को मान लेता है। वह एक निपुण मायावी है किन्तु समस्त माया की स्थिति श्रीहरि में ही मानता है[2]।

इस पात्र के माध्यम से भी कवि ने विष्णु के अनेक अवतारों की चर्चा नाटक में की है। मय कहता है कि वराह रूप धारणकर हरि ने हिरण्याक्ष का वध किया, नृसिंहावतार ग्रहण कर हिरण्यकशिपु का दलन किया, वामन का रूप धारणकर बलि को पाताल में बांध दिया, वह एकमात्र अदिति पुत्रों का पक्षपाती हमारा क्या नहीं करेगा[3]। इसी प्रकार समुद्रमन्थन के समय विष्णु के द्वारा किये

---

1. अनलः - मायाप्रायं योद्धव्यमिति तदर्थं च मयशम्बरविद्युज्जिह्वप्रमुखमानीयते परैरादिमायाविकुलम्। - अद्भुतदर्पणम् अंक 1, पृ. 12
2. मयः - - - -। माया मायेति वृथा महतीयं दुष्प्रसिद्धिरस्मासु।
   नारायणे निविष्टं ननु मायातत्त्वसर्वस्वम्॥
   - वही 5/8
3. वराहाकारः सन्यदकृत हिरण्याक्षदलनं
   नृसिंहः संहारं यददित हिरण्यस्य कशिपोः।
   बलिं पातालान्तस्तमसि रुरुधे वामनतया
   स किं वा नो कुर्याददितिसुतपक्षपतितः॥
   - वही 5/9

गए पक्षपात का भी उसे स्मरण हो आता है ।

यद्यपि मय, रावण का श्वसुर है किन्तु वह चाहता है कि रावण को समझाया जाय । इसीलिये वह माल्यवान् से पूछता है कि क्या उन्होंने रावण को अनुदर्शित करने का प्रयत्न किया[1]।

मय यद्यपि श्रीराम के सामर्थ्य से पूर्णतया अभिज्ञ है तथापि वह रावण का प्रबल पक्षपाती है । नाटक के अन्त में उसका यह पक्षपात स्पष्ट रूप से सामने आता है । रावण की मृत्यु से क्षुब्ध होकर प्रतिशोध की भावना से, वह स्वयं राम का मायावी रूप धारण करता है तथा सीताके मिलन से पूर्व ही सीता पर परगृहवास का लांछन लगाकर उन्हें अग्निप्रवेश के लिये बाध्य कर देता है[2]।

इस प्रकार मय के द्वारा कवि ने जहाँ श्रीराम की भगवत्ता आदि का प्रतिपादन किया है वहीं सीता के अग्निप्रवेश की कथा को एक नवीन स्वरूप प्रदान किया है । मय के द्वारा षड्यन्त्र रचकर सीता को अग्नि में प्रवेश करने के लिये बाध्य करने का प्रसंग रखकर कवि ने श्रीराम के चरित्र की रक्षा करते हुए नाटकीय परम्परा का निर्वाह किया है ।

- -

1. मयः - उपपद्यते । तत्किमयमर्थो महाराजदशाननाय कदाचिदनुदर्शितो मातामहेन ।

- अद्भुतदर्पणम् अंक 5, पृष्ठ 50

2. मयः - - - - - - -

अहं रामोभूत्वा जनसदसि सीतामुपगतां
परित्यक्ष्याम्येनां परभवनवासं प्रकटयन् ।
ततः सा रोषान्धा नवमसहमाना परिभवं
प्रवेक्ष्यत्यम्भोधिं दहनमथवा शोकविवशा ।।

- वही 10/8

स्त्री पात्र

सीता

नाटक के स्त्री पात्रों में सीता का स्थान सर्वप्रमुख है। समस्त रामचरित्र में जहां कहीं भी श्रीराम नायक के रूप में प्रस्तुत हुए हैं, वहीं राम को सफल नायक बनाने में उनकी पत्नी सीता का चरित्र भी केन्द्रबिन्दु रहा है। अद्भुतदर्पणम् नाटक में रामकथा, यद्यपि लंकाभियान तक ही सीमित है तथापि इसमें सीता का चरित्र अपनी सम्पूर्ण उदात्तता के साथ अंकित हुआ है। नाटक का समस्त कथानक लंका के युद्धक्षेत्र के रूप में ही प्रस्तुत किया गया है, जिसके एक छोर पर हैं श्रीराम और दूसरे छोर पर जानकी। इन दोनों बिन्दुओं का मिलन ही समस्त नाटक की परिणति है।

जहां श्रीराम का पूरा लंकाभियान ही जानकी की प्राप्ति के लिये है, वहीं जानकी का एक-एक पल राम के मिलन की प्रतीक्षा में है। उनका चरित्र बड़ा ही कोमल है। वे वास्तव में अत्यन्त मृदु एवं पतिप्राणा मुग्धा नायिका के रूप में नाटक के दृश्यपटल पर अंकित हैं। इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण यह है कि जिस समय शूर्पणखा अशोकवाटिका में श्रीराम का मायामय कटा हुआ शीर्ष तथा धनुष दिखाती है, तो सीता तत्काल मूर्च्छित हो जाती हैं[1]। कुछ समय पश्चात् उन्हें जैसे ही कुछ संज्ञा प्राप्त होती है, वे उन्मादिनी सी होकर जीवन से निराश, राम के सिर और धनुष को लेकर चट्टान से कूदकर आत्महत्या का विचार करती हैं, किन्तु सिर व धनुष को न देखकर पुनः संज्ञाशून्य हो जाती हैं[2]।

---

1. शूर्पणखा - (ससंभ्रममुपसृत्य। सहर्षम्।) ---- भग्नस्ते रामसमागममनोरथः सखि, एताभ्याम्। (इति च्छिन्नं शिरो धनुश्च दर्शयति।)
   सीता - (दृष्ट्वा।) हा हतास्मि मन्दभागिनी। (इति मुह्यति।)-पृष्ठ -58
2. सीता - (नयने शनैरुन्मील्य।) तदिदमेव भर्तुः शीर्षं धनुश्च परिरभ्यास्मा-द्दारुपर्वतादात्मानमवपूय निर्वृता भविष्यामि। (धनुश्च शिरश्च परामृशन्ती।

पातिव्रत्य की तो वे साक्षात् प्रतिमा हैं। ऐसी पतिव्रता का वर्णन मिलना भी नितान्त दुर्लभ है, जिसके सतीत्व के प्रभाव से परम मायावी रावण चाहकर भी राम का रूप धारण करने में असमर्थ रहा। यहां तक कि रावण के अन्तःपुर की स्त्रियों ने जब सीता का रूप बनाकर रावण को प्रभावित करने का विचार किया तो वे भी अपने उद्योग में सर्वथा असफल रहीं[1]। स्वयं कवि महादेव ने उनके पतिव्रत गुण को लोकोत्तर कहा है[2]। रावण का मित्र महोदर भी उनके तथा रावण के संयोग को तिमिर-चन्द्रिका के संयोगवत असंभव बताता है[3]।

सीता के चरित्र में जितना औदात्य है, उतना ही लालित्य भी। वे एक अत्यन्त लज्जाशीला एवं मान करने में कोमल मुग्धा नायिका के रूप में चित्रित हुई हैं। राम के कटे हुए शिर और धनुष को न पाकर सीता जब पुनः मूर्च्छित हो जाती हैं और त्रिजटा तथा सरमा के द्वारा आश्वासन देने पर भी जब उनकी मूर्च्छा भंग नहीं होती, तब व्याकुल होकर उनकी अन्तरंग सखी त्रिजटा अभिज्ञानस्वरूप एक प्रसंग की चर्चा उनके कान में करती है। इसमें उन वार्ताओं

(पुनर्मुह्यति) -अद्भुतदर्पणम् पृष्ठ - 62

1. रावणः - (निश्वस्य।) वंचिताः पतिरूपेण मया तास्ताः पतिव्रताः।
यया हि मायया सास्यां मम कुण्ठीभवत्यहो ।।

महोदरः - भो वयस्य, सीतारक्त उन्मत्तोऽसि। सीतावेषाभिरेवास्माभिर्मोहनीय इति सर्वाभिर्मन्दोदरीप्रमुखाभिरन्तःपुरभामिनीभिरेकैकीभूय ईहितुमारब्धः सीताया वेषः क्यापि तासु गृहीतुं न शक्यो जातः।

-अद्भुतदर्पणम् अंक 7, पृष्ठ 83

2. सीतायाश्च यथा पतिव्रतगुणो लोकोत्तरो दृश्यते।
-वही ग्रन्थकर्तुः प्रशस्तिः पृष्ठ 144

3. महोदरः - (अपवार्य।) कथं मया तिमिरचन्द्रिकासंभेदः संपादनीयः।
- वहीं अंक 6, पृष्ठ 77

को सुनाती है जिसमें सीता ने त्रिजटा को श्रीराम के साथ व्यतीत किये गये कतिपय स्नेहिल अन्तरंग क्षणों के विषय में बताया था । यहीं पर जानकी के मुग्धा नायिका का स्वभाव परिलक्षित हो जाता है । इस परम विषाद की घड़ी में भी, अपने हृदय में संजोये उन मधुर क्षणों की स्मृति कराए जाने पर अत्यन्त लज्जालु होती हुई सीता विश्वास के साथ त्रिजटा का आलिंगन कर लेती है[1] ।

इसी प्रकार नायक को उपालम्भ देने में भी सीता मुग्धा नायिका के अनुरूप बहुत अधिक कोमल हैं । मायानाटिका के माध्यम से सीता जब यह देखती हैं कि राम ने केवल रणकुतूहलवश ही रावण को जीवित जाने दिया है, तो वे उपालम्भ सा देती हुई सखियों से कहती हैं," आर्य, युद्ध के प्रति तो कुतूहली हैं किन्तु सीता के प्रति नहीं[2]।" एक अन्य स्थान पर भी वे लक्ष्मण की उत्कट युद्धाभिलाषा देखकर यह कहते हुए कि इस प्रकार के समर कार्यों में, वत्स लक्ष्मण का अग्रज इस प्रकार का सम्बोधन आर्यपुत्र के लिये किया जाना चाहिए, वे अपना गूढ़ उपालम्भ भी देती हैं जिसे अद्भुतदर्पण मणि के माध्यम से देखने वाले श्रीराम तत्काल समझ लेते हैं[3] ।

- -

1. त्रिजटा – ननु मनःशिलातिलककल्पनफलककपोलचुम्बनं लज्जालुकयापि मयार्यपुत्रस्यैकवारमप्रतिषिद्धमासीदिति त्वयैव कथितवचनाभिज्ञानं धारयन्ती किं तेऽहं सत्यं त्रिजटास्मि । अथवाहमपि ते माया ।
   सीता – (समाश्वस्य सलज्जं त्रिजटामालिंग्य ।) प्रियसखि, किमिति मां लज्जालुकां भूयोऽपि लज्जयसि । – अद्भुतदर्पणम् अंक 5, पृ. 62
2. सीता – सखि सरमे, रणकुतूहल्यार्यपुत्रः । न पुनः सीतापेक्षाकुतूहली ।
   – वही अंक 8 पृष्ठ 119
3. सीता – सखि, मा खलु मा खल्वेवं भण । किं त्वीदृशेषु समरकार्येषु वत्सलक्ष्मणाग्रज आर्यपुत्रो भणितव्यः ।
   प्रकृतरामः – (स्वगतम् ।) अहो प्रियायाश्चिरादुपालम्भः ।
   – वही अंक 7 पृष्ठ 102

सीता में आक्रोश की भावना भी स्पष्ट परिलक्षित होती है। रावण के द्वारा किये गये अपने अपहरणरूपी अपमान तथा प्रिय से वियुक्त कराने के कृत्यों का प्रतिशोध वे शीघ्रातिशीघ्र रावण की मृत्यु के रूप में चाहती हैं। इस विषय में तनिक सा भी विलम्ब उन्हें सह्य नहीं है। राम के द्वारा रावण को जीवित छोड़ दिया जाना उन्हें व्याकुल कर जाता है। यद्यपि वे जानती हैं कि सत्यसंध श्रीराम रावण का वध अवश्य करेंगे, तथापि इस कार्य में होने वाले विलम्ब से वे व्यग्र हो उठती हैं। कई स्थानों पर उनकी व्यग्रता, त्रिजटा और सरमा से वार्तालाप करते हुए प्रकट हो जाती है। क्योंकि लक्ष्मण युद्ध के प्रति अत्यन्त उत्सुक है तथा निरन्तर राम को युद्ध में नियुक्त करने का प्रयत्न करते रहते हैं अतः उनकी ओजस्वी उक्तियों को सुनकर सीता उनके पराक्रम की श्लाघा तो करती ही हैं, साथ ही अत्यन्त संतुष्ट भी होती हैं[1]। जब लक्ष्मण, रावण के केश पकड़कर तथा उसे बांधकर किष्किन्धा की गुफा में डाल देने की बात कहते हैं तो सीता कहती हैं, पुत्र शीघ्रता करो शीघ्रता करो[2]।

---

1. सीता – {सहर्षम् ।} सखि सरमे, ईदृशेन वत्सलक्ष्मणस्य रोषावेशेन प्रमार्जित इव मे हृदयमन्युः ।

   सीता – सखि, कोपावेशदुष्प्रेक्षणीयस्यापि वत्सलक्ष्मणस्यैष आदेशो मां सुखापयति ।

   –अद्भुतदर्पणम् अंक 7 पृष्ठ 88, 96

2. विकृतलक्ष्मणः – – – – –

   नन्वेष द्रवति स्वयं दशमुखः पश्चादनुद्रुत्य तं

   गृह्णीत द्रुतमार्यसायकशिखाकृत्तावशिष्टे कचे ।

   तेनेमं क्षतजावसेचनजटीभूतेन बद्ध्वा दृढं

   किष्किन्धाकुहरेषु शम्बरसखं युंजीत कारासु च ।।

   सीता – {सहर्षम् ।} वत्स लक्ष्मण, त्वरस्व त्वरस्व । – वही अंक 8 पृ. 118

सीता में आत्मसम्मान की भावना भी अपने चरमोत्कर्ष पर है । इस बात को मय भली प्रकार समझता है । इसीलिये तो वह माया से श्रीराम का रूप धारण कर, सीता के चरित्र पर परगृहवास का लांछन लगाकर उन्हें मृत्यु का वरण करने के लिये विवश करने का षडयन्त्र रचता है तथा अपने इस कृत्य में सफल भी होता है । आत्मसम्मानी सीता इस नवीन अपमान को सहन नहीं कर पातीं और अग्नि में प्रवेश कर जाती हैं । किन्तु यह उनके लोकोत्तर पातिव्रत का ही प्रभाव है कि अग्निदेव की दाहकता भी शान्त हो जाती है तथा स्वयं अग्निदेव उन्हें श्रीराम को प्रदान करते हैं[1] ।

इस नाटक में कवि ने सीता को दैवी शक्ति के रूप में उल्लिखित किया है । उन्होंने सीता को अयोनिजा तथा भगवती लक्ष्मी का अवतार

- -

1. मयः - मम त्वेवं प्रतिभाति । श्रूयतां यत्करिष्यते ।
   अहं रामो भूत्वा जनसदसि सीतामुपगतां
   परित्यक्ष्याम्येनां परभवनवासं प्रकटयन् ।
   ततः सा रोषान्धा नवमसहमाना परिभवं
   प्रवेक्ष्यत्यम्भोधिं दहनमथवा शोकविवशा ।।

   (नेपथ्ये ।)

   अहो बत देवी सीता
   मदान्धरक्षोगृहवासदोषशंकानुषक्तेन रघूद्वहेन ।
   त्यक्ता समक्षं महतो जनस्य त्यजत्यहो देहमियं हुताशे ।।
   रामः - - - - - - - -
   दिष्टोयं तदपि त्रिलोकजनताचित्तस्थितिं रक्षितुं
   सध्वस्मिन्दहनं गता स्वयमियं तेनैव मे दीयते ।।

   -अद्भुतदर्पणम् 10/8, 9, 13

माना है[1] ।

दैवी शक्ति होते हुए भी सीता पार्थिव संवेदनात्मक अनुभूतियों से सतत सम्बद्ध रही हैं । उनकी लज्जा, उनका पतिप्रेम, उनकी वेदना तथा उनका आत्मसम्मान आदि तो मानवोचित हैं ही, इसके अतिरिक्त आपत्तिकाल की अन्तरंग सखियों के प्रति उनका प्रगाढ़ एवं निश्छल स्नेह भी इन्हीं मानवीय भावनाओं का चरम अवसान है । एक लम्बे अन्तराल के पश्चात् पति से मिलन के परम सुखद क्षणों में भी वे त्रिजटा और सरमा को विस्मृत नहीं करती हैं तथा पुष्पक विमान में उन्हें आग्रहपूर्वक अपने समीप बैठाकर अयोध्या ले जाती हैं[2] ।

युद्ध की विभीषिका में भी कवि ने अपनी प्रौढ़ कल्पनाशक्ति के द्वारा, सीता की अत्यल्प उपस्थिति को भी अत्यन्त प्रभावशाली बना दिया है । सीता के उन समस्त गुणों को, जिनका वर्णन स्वयं आदिकवि तथा पूर्ववर्ती साहित्यकारों को अभीष्ट था, कवि ने अपनी प्रतिभा के द्वारा बड़ी ही सहजतापूर्वक समग्र रूप में उद्भासित करने का प्रयत्न किया है तथा पूर्ण सफल भी रहे हैं ।

---

1. कुमारीयं कन्या प्रथममथ दुग्धाब्धितनया
   विदेहानां नेतुस्तदनु यजनक्षेत्रजनिता ।
   अनन्या ते विष्णोस्त्रिजगदवनायावतरणे -
   ष्वनु त्वामप्येषा स्वयमवतरत्येव नियता ।।
   -अद्भुतदर्पणम् 10/15
2. सीता - (सस्मितं सादरम् ।) हला, अत्रोपविशत ।
   - वही अंक-10, पृष्ठ-143

त्रिजटा तथा सरमा

त्रिजटा तथा सरमा, यद्यपि रावणपक्ष की राक्षसियां हैं तथापि ये दोनों सीता की अन्तरंग सखियां भी हैं। इन दोनों की नाटक के कथासूत्र की प्रगति में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। ये दोनों नारीपात्र, रामकथा के आदि-स्रोत वाल्मीकीय रामायण में भी विद्यमान हैं। आदिकवि ने भी इन दोनों को सीता की हितैषिणियों के रूप में ही चित्रित किया है। इसी परम्परा को ग्रहण कर महाकवि महादेव ने, इन दोनों के माध्यम से सर्वथा नवीन कथासूत्र की कल्पना की है।

इस नाटक में ये दोनों राक्षसियां सीता की परमहितसाधिका हैं। त्रिजटा तो सीता की आज्ञा से राम एवं रावण के मध्य होने वाले महासंग्राम को देखने भी जाती है। उसके आने में विलम्ब होते देखकर सीता व्याकुल हो जाती हैं। यह देख सरमा उन्हें आश्वस्त करने के लिये स्वयं भी समर-वृत्तान्त ज्ञात करने चली जाती है[1]।

यद्यपि इन दोनों पात्रों का अवतरण रंगमंच पर सर्वप्रथम पंचम अंक में होता है, वहां से इन दोनों की स्थिति निरन्तर अष्टम अंक तक है तथापि त्रिजटा का प्रसंग नाटक के प्रथम अंक में भी आया है। वहां यह श्रीराम के मित्र एवं सहयोगी, विभीषण की सहायिका के रूप में वर्णित है। जब विभीषण का अमात्य संपाती यह बताता है कि उसने त्रिजटा के मुख से यह जानकर कि विभीषण के घर को मेघनाद ने भस्मीभूत कर दिये जाने का आदेश दिया है, वह विभीषण के

---

1. सीता – सखि सरमे, अद्यापि नागता प्रियसखी त्रिजटा।
   सरमा – ननु रामरावणयोरन्योन्यघटिते संग्रामे जयपराजयौ दृष्ट्वा खलु तयागन्तव्यम्। यदि ते त्वरयत्यात्मा समरवृत्तान्तं परिज्ञातुं तदहं गत्वा तां गृहीत्वा त्वरितमागच्छामि। त्वं विश्रब्धा भूत्वा मुहूर्तं प्रतिपालय।
   –अद्भुतदर्पणम् अंक 5, पृष्ठ–57

परिवार को सुरक्षित पहुंचाकर आ रहा है, इस समय यह ज्ञात होता है कि त्रिजटा की सहानुभूति विभीषण के साथ ही है[1]।

सीता के प्रति निस्पृह स्नेह रखने वाली ये दोनों राक्षसियां, सीता को आश्वस्त करने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहती हैं। सरमा के आग्रह पर त्रिजटा, सीता को युद्ध का दृश्य माया के द्वारा प्रत्यक्ष दिखाने के लिए भी तैयार हो जाती है। इस प्रकार मायानाटिका के माध्यम से त्रिजटा सीता को युद्ध का दृश्य प्रत्यक्ष दिखाती है। इस नाटिका में सरमा पीठमर्दिका बनकर निरन्तर सीता को विभिन्न रसों में पर्यवस्थित करती रहती है। ये दोनों सीता के प्रति इतनी अधिक अनुरागयुक्त हैं कि अपने स्वामी रावण की आज्ञा के विरुद्ध न केवल सीता की सहायता करती हैं, अपितु राम द्वारा रावण का वध न किये जाने से त्रिजटा को भी दुःख होता है[2]।

इस नाटक में इन दोनों नारी पात्रों का अवतरण कवि ने वास्तव में साभिप्राय किया है। इन दोनों के द्वारा कवि ने गर्भांक नाटक की कल्पना मायानाटिका के रूप में की है। इस नाटिका के माध्यम से जहां युद्ध-वृत्तान्त को रोचक बनाया गया है, वहीं सीताचरित्र की उदात्तता को भी स्पष्ट किया गया है। इसके अतिरिक्त त्रिजटा और सरमा का चरित्र नाटक को प्रवाहशील बनाने में भी प्रभावी भूमिका का निर्वाह करता है।

---

1. संपातिः - सखे अनल, तत्रच दुरात्मनो मेघनादस्य व्यवसितं त्रिजटा-मुखादाकर्ण्य सद्य एव देवस्य कुटुम्बकमादाय गूढेन पथा मैनाकेनिवेश्य निवृत्त-वानस्मि।

   -अद्भुतदर्पणम् अंक 1, पृष्ठ 8

2. त्रिजटा - किमेतेन हताशस्य विचारेण यो हस्तलग्नोऽपि राजपुत्रेण न समापितः, किंत्वद्य जीवेति मुक्तः।

   - वही अंक 8, पृष्ठ 122

लंका तथा निकुम्भिला

ये दोनो पात्र वास्तव में अमूर्त प्रत्यय हैं, क्योंकि लंका रावण की राजधानी तथा निकुम्भिला मेघनाद की तपस्थली है। किन्तु कवि ने इनकी नारीपात्रों के रूप में सर्जना कर, एक अद्भुत नाट्यरस की सृष्टि की है। इन दोनों को कवि ने लंका की प्रजा के प्रतीक-रूप में वर्णित किया है। जिस प्रकार प्रजा में सदैव दो विरोधी भावनाएं विद्यमान रहती हैं, उसी प्रकार लंका तथा निकुम्भिला भी दो विरोधी भावों के प्रतीक हैं।

लंका अत्यन्त सौम्य प्रकृति की है तथा परिस्थितियों से समझौता करने की पक्षपाती है। यही नहीं वह अत्यन्त बुद्धिमान भी है। अपने स्वामी मेघनाद एवं रावण के वध से क्षुब्ध निकुम्भिला को सान्त्वना देते हुए, उसे भी राजा के अनुकूल स्वयं को परिवर्तित कर लेने का उपदेश देती है[1]। लंका स्वभावतः अत्यन्त विनम्र भी है। वह मिथिला, किष्किन्धा आदि नगरियों के साथ सखी भाव का व्यवहार करना चाहती है तथा अयोध्या की तो दासी बनना भी स्वीकार कर लेती है[2]।

निकुम्भिला को कवि ने प्रजा के उस वर्ग की प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया है जो अपने स्वामी के प्रति पूर्ण अनुरक्त है। निकुम्भिला अपने स्वामी मेघनाद के वध से तो दुःखी है ही, किन्तु रावणवध का समाचार सुनकर

- -

1. लंका - अतःपरमावाभ्यामपि इतरैरपि राक्षसकुलैः "यथा राजा तथा प्रजाः" इति नीतिमनुसृत्य सौम्यन्तरैरेव भवितव्यम्। त्वया घोराभिचारभूमिभावं परित्यज्य महायज्ञक्षेत्रभावश्चिरादुररीकर्तव्यः।

   -अद्भुतदर्पणम् अंक 9 पृष्ठ 127

2. लंका - मया च मिथिलाकिष्किन्धाप्रभृतिभिर्नगरीभिः सह सखीभावमवलम्ब्य तत्रभवत्याः स्वयमयोध्यायास्तेन तेन सारवस्तूपहारेण किंकरीभावश्चिरादुरी-

तो मूर्च्छित ही हो जाती है । किन्तु अन्त में सामान्य प्रजा के समान वह भी अन्य कोई उपाय न देखकर विभीषण के प्रति समर्पित हो जाती है[1]। इस प्रकार इन दोनों पात्रों के माध्यम से कवि ने सामान्य राजनीति तथा प्रजा की स्थिति को स्पष्ट किया है ।

इन पात्रों के अतिरिक्त कवि ने विभीषण, सुग्रीव, दधिमुख, विद्युज्जिह्व तथा शूर्पणखा आदि पात्रों को भी यथावसर प्रस्तुत किया है । इन पात्रों का विस्तृत चित्रांकन कवि ने नहीं किया है किन्तु नाटक मे इनकी भूमिका से इतना अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि विभीषण और सुग्रीव, श्रीराम के प्रति पूर्णतः समर्पित एवं उनके मित्र हैं । दधिमुख, सुग्रीव का सेवक है । विद्युज्जिह्व एक मायावी एवं पापी राक्षस है,तो शूर्पणखा कामी एवं क्रूर प्रकृति की है । इनके अतिरिक्त नाटक में अंगद भी चर्चा का विषय रहे हैं जो मंच पर उपस्थित न रहकर भी एक वीर एवं उत्साही वानर योद्धा तथा किष्किन्धा के युवराज के रूप में चर्चित रहे हैं ।

अद्भुतदर्पणम् नाटक के नाट्यशास्त्रीय वैशिष्ट्य का पात्रों की दृष्टि से विवेचन किये जाने पर भी यह नाटक अपनी असाधारण विशेषताओं के कारण अद्भुत कहा जा सकता है । लंका की युद्धभूमि पर युद्ध की ही पृष्ठभूमि को आधार बनाकर लिखे गये इस नाटक में जहाँ एक ओर राम जैसा धीर, गम्भीर, मर्यादित एवं शौर्यसम्पन्न नायक पात्र है तो वहीं लक्ष्मण जैसा उद्धत, ओजस्वी पात्र भी उनका सहचर है । एक ओर जाम्बवान् जैसा अनुभवी, प्रौढ, सहज बुद्धिमान एवं मनस्वी पात्र है तो दूसरी ओर शम्बर जैसा छली, मायावी एवं

---

1. निकुम्भिला - नन्वद्याप्यपरित्यक्तरावणपक्षातयोराववोरेषोऽन्योन्यसंवादो-ऽप्यपराधमिवावहते । तत्सीतादेव्या एव पादमूलं गच्छावः ।
   —अद्भुतदर्पणम् अंक 9 पृष्ठ 133

पद-पद पर प्रवंचना में प्रवीण पात्र भी हैं । जहां मय जैसा उद्धत एवं प्रतिशोध की ज्वाला में जलने वाला पात्र है तो वहीं माल्यवान् जैसा नीतिज्ञ, न्यायी एवं बुद्धिमान, धैर्यशाली, धार्मिक राक्षस पात्र भी है ।

नारी पात्रों में सीता जैसी विरहविधुरा, मर्यादा एवं गरिमा की प्रतिमूर्ति नारीपात्र है तो उसी मर्यादा को अक्षुण्ण बनाने में सदैव तत्पर त्रिजटा और सरमा जैसे पात्र की भी सर्जना हुई है । समाज और राजनीति की मर्यादा का सजीव चित्रण करने के लिये कवि ने लंका एवं निकुम्भिला जैसे अमूर्त पात्रों का भी मानवीकरण करके नाटक को एक नया आयाम भी दे दिया है । महर्षि वाल्मीकि की कथारचना को अक्षुण्ण रखते हुए रामकथा को कवि ने जिस प्रकार नाट्यपृष्ठभूमि के माध्यम से प्रस्तुत किया है उससे मूलकथा की प्रभावोत्पादकता तो बढ़ ही गई है साथ ही पाठकों के मनःप्रसादन के लिये प्रभावी माध्यम की सृष्टि भी हो गई है ।

पंचम अध्याय

रसालंकार विवेचन

1. रस एवं उसके घटक - विभाव, अनुभाव, संचारी भाव, सात्त्विक भाव । रस - श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत, शान्त तथा वात्सल्य ।

2. अद्भुतदर्पणम् नाटक में विभिन्न भावों एवं रसों की स्थिति - नाटक में अंगीरस, अंगीरस वीररस के अंगभूत अन्य रस ।

3. गुण, अद्भुतदर्पणम् में गुणों की स्थिति ।

4. अलंकारों की अवधारणा, अद्भुतदर्पणम् में प्रमुख अलंकारों की व्याख्या ।

5. छन्द, अद्भुतदर्पणम् का छन्दविधान ।

पंचम अध्याय

रसालंकार विवेचन

रूपक के तीन भेदक तत्त्वों में रस का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। रस को एक प्रकार से काव्य की आत्मा माना गया है। यही वह तत्त्व है जिसके कारण मानवहृदय द्रवीभूत हो जाता है, वास्तव में रस एक विशिष्ट आनन्द ही है। रस की व्यंजना करना, सामाजिकों के हृदय में रसोद्रेक उत्पन्न करना दृश्यकाव्य का मुख्य लक्ष्य है। यही कारण है कि भारतीय नाट्यशास्त्र में रस विवेचना का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

काव्य के पठन, श्रवण अथवा दर्शन से जिस आनन्दातिरेक की अनुभूति होती है, वही आनन्द रस के नाम से अभिहित होता है। सामाजिकों के हृदय में इस रस की अभिव्यंजना किस प्रकार होती है, इस विषय में नाट्यशास्त्र के आदि आचार्य भरतमुनि का मत है कि,"विभावानुभावव्यभिचारि संयोगाद्रस-निष्पत्तिः।" अर्थात् विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भाव के संयोग से रस निष्पत्ति होती है। भरतमुनि के इस रससूत्र के आधार पर ही पश्चाद्वर्ती विद्वानों ने इस रसनिष्पत्ति का वर्णन किया है।

रस एवं उसके घटक

रसनिरूपण करते हुए मम्मटाचार्य कहते हैं, "लोक में रति आदि रूप स्थायी भावों के जो कारण, कार्य और सहकारी आदि होते हैं, वे यदि नाटक या काव्य में प्रयुक्त होते हैं तो क्रमशः विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव कहलाते हैं तथा उन विभावादि से व्यक्त स्थाई भाव रस कहा जाता है[1]।

---

1. कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।

साहित्यदर्पणकार ने भी लगभग इसी प्रकार की परिभाषा की है[1]।

स्थाईभाव

भाव ही रस का बीज है। भाव को क्षणिक संचारी भावों से पृथक करने के लिये इसे स्थायीभाव कहा जाता है। रसानुभूति का आन्तरिक और मुख्य कारण स्थायीभाव ही हैं। स्थायीभाव वास्तव में मन के भीतर रहने वाले वे प्रसुप्त भाव हैं, जो अनुकूल आलम्बन तथा उद्दीपन विभावों को प्राप्त कर प्रकट हो उठते हैं। इस अभिव्यक्त स्थायीभाव से प्राप्त होने वाले अलौकिक आनन्द को ही रस कहा जाता है।

मनुष्य की व्यावहारिक अनुभूतियों के आधार पर काव्यशास्त्रियों ने प्रायः 8 या 9 प्रकार के स्थायी भाव माने हैं। काव्यप्रकाशकार के अनुसार मनुष्य के हृदय में अव्यक्त किन्तु स्थायी रूप से विद्यमान रहने वाले ये 9 स्थायीभाव हैं – 1. रति, 2. हास, 3. शोक, 4. क्रोध, 5. उत्साह, 6. भय, 7, जुगुप्सा, 8. विस्मय, 9. निर्वेद[2]। ये ही

रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः ॥
विभावा अनुभावास्तद् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः ॥

–काव्यप्रकाश: 4/27, 28

1. विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादिः स्थायीभावः सचेतसाम् ॥

–साहित्यदर्पण: 3/1

2. रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायीभावाः प्रकीर्तिताः ॥
निर्वेदस्थायीभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः।

–काव्यप्रकाश: 4/30, 35

भाव विभाव आदि के द्वारा व्यक्त होकर रसस्यता को प्राप्त होते हैं ।

इस विषय पर दशरूपककार धनंजय का मत है कि मौलिक मनःसंवेग केवल 4 ही हैं । इन्हीं 4 स्थायी भावों या 4 रसों से ही अन्य समस्त रसों की उत्पत्ति होती है[1]। उनके अनुसार रसानुभूति काल में चित्त की विकास, विस्तार, विक्षोभ, तथा विक्षेप, चार प्रकार की ही अवस्थाएं होती हैं । ये 4 प्रकार के मनोविकार ही क्रमशः हास्य, अद्भुत, भय तथा करुण में पाये जाते हैं । इस प्रकार श्रृंगार तथा हास्य में विकास, वीर तथा अद्भुत में विस्तार, बीभत्स तथा भय में क्षोभ एवं रौद्र तथा करुण में विक्षेप की स्थिति होती है । इस प्रकार हास्यादि 4 रसों के द्वारा ही श्रृंगार आदि 4 रसों की उत्पत्ति होती है अतः रस 8 हैं तथा स्थायी भाव भी 8 ही हैं[2]।

इन्हीं स्थायी भावों की परिणति श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत तथा शान्त रसों में होती है । पंडितराज विश्वनाथ ने

- -

1. विकासविस्तरक्षोभविक्षेपैः स चतुर्विधः ।।
श्रृंगारवीरबीभत्सरौद्रेषु मनसः क्रमात् ।
हास्याद्भुतभयोत्कर्षकरुणानां त एव हि ।।
अतस्तज्जन्यता तेषामत एवावधारणम् ।
श्रृंगाराद्धि भवेद्धास्यो रौद्राच्च करुणो रसः ।
वीराच्चैवाद्भुतोत्पत्तिर्बीभत्साच्च भयानकः ।।

– दशरूपकम् 4/43, 44, 45 धनिककृत वृत्ति सहित

2. रत्युत्साहजुगुप्साः क्रोधो हासः स्मयो भयं शोकः ।
शममपि केचित्प्राहुः पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य ।।

– वही 4/35

वात्सल्य रस नामक एक दसवें रस की स्थिति भी मानी है । इस रस का स्थायी भाव वे "वत्सलता" मानते हैं[1] ।

विभाव

रसानुभूति के कारणों को ही विभाव कहा जाता है । यह विभाव दो प्रकार का होता है - एक आलम्बन विभाव तथा दूसरा उद्दीपन विभाव । जिसका आलम्बन करके रसोत्पत्ति होती है वह आलम्बन विभाव है, जैसे- सीता को देखकर राम के मन में रति भाव उत्पन्न होता है, इस प्रकार सीता यहाँ शृंगार रस का आलम्बन विभाव हैं । इसी प्रकार चन्द्रिका, उद्यान आदि मनोरम वातावरण को देखकर वह रतिभाव उद्दीप्त होता है अतः ये शृंगार रस के उद्दीपन विभाव हुए[2]। प्रत्येक रस के आलम्बन तथा उद्दीपन विभाव भिन्न भिन्न होते हैं ।

अनुभाव

स्थायीभाव रसानुभूति का प्रायोजक आन्तरिक कारण है । आलम्बन तथा उद्दीपन विभाव बहिरंग कारण हैं । इसी प्रकार अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव रसचर्वणा से उत्पन्न बाह्य शारीरिक तथा मानसिक व्यापार हैं । साहित्यदर्पणकार के अनुसार अपने-अपने आलम्बन या उद्दीपन कारणों से, राम, सीता आदि के भीतर उद्भूत रति आदि रूप स्थायी भाव को जो बाह्य रूप में प्रकाशित करता है, वह रत्यादि का कार्यरूप, काव्य और नाटक में अनुभाव के नाम से अभिहित होता है[3]।

- -

1. स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः ।
   स्थायी वत्सलतास्नेहः पुत्राद्यालम्बनं मतम् ।। - साहित्यदर्पण 3/25।
2. उद्दीपनविभावास्ते रसमुद्दीपयन्ति ये ।।
   आलम्बनस्य चेष्टाद्या देशकालादयस्तथा । - साहित्यदर्पणः 3/131, 132
3. य उद्बुद्धं कारणैः स्वैः स्वैर्बहिर्भावं प्रकाशयन् ।।
   लोके यः कार्यरूपः सोऽनुभावः काव्यनाट्ययोः ॥ - वही 3/132, 133

नाट्याचार्य भरतमुनि ने अनुभाव का लक्षण करते हुए कहा है," जो वाचिक या आंगिक अभिनय के द्वारा रत्यादि स्थायी भाव की आन्तरिक अभिव्यक्ति रूप अर्थ का बाह्य रूप में अनुभव कराता है उसको अनुभाव कहते हैं[1]। दशरूपककार ने भी अनुभावों की लगभग ऐसी ही परिभाषा की है। उनके अनुसार रत्यादि स्थायीभाव की सूचना करने वाले विकार अनुभाव कहलाते हैं[2]।

व्यभिचारी भाव

जो भाव विशेष रूप से स्थायी भाव के अन्तर्गत कभी उठते हैं, कभी गिरते तो कभी डूबते-उतराते नजर आते हैं तथा रसों को पुष्ट कर आस्वादन के योग्य बनाते हैं उनको व्यभिचारी भाव कहते हैं। ये भाव स्थायी भाव में उसी प्रकार उन्मग्न तथा निमग्न होते रहते हैं, जिस प्रकार समुद्र में तरंगें उठती हैं और विलीन हो जाती हैं[3]।

नाट्यशास्त्र के आदि आचार्य भरतमुनि तथा परवर्ती समस्त काव्यशास्त्रियों ने इन्हें संख्या में 33 माना है। आचार्य मम्मट के अनुसार ये स्थायी भाव हैं - 1. निर्वेद, 2. ग्लानि, 3. शंका, 4. असूया, 5. मद, 6. श्रम, 7. आलस्य, 8. दैन्य, 9. चिन्ता, 10. मोह, 11. स्मृति, 12. धृति, 13. व्रीडा

---

1. वागंगाभिनयेनेह यतस्त्वर्थोऽनुभाव्यते ।
स सांगोपांगसंयुक्तस्त्वनुभावस्तत: स्मृत: ।।
- नाट्यशास्त्र 7/5

2. ज्ञायमानतया तत्र विभावो भावपोषकृत् ।
आलम्बनोद्दीपनत्वप्रभेदेन स च द्विधा ।।
- दशरूपकम् 4/2

3. विशेषादाभिमुख्येन चरन्ती व्यभिचारिण: ।
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्ना: कल्लोला इव वारिधौ ।।
- वही 4/7

14. चपलता, 15. हर्ष, 16. आवेग, 17. जड़ता, 18. गर्व, 19. विषाद,
20. औत्सुक्य, 21. निद्रा, 22. अपस्मार, 23. शोभा, 24. जागना,
25. क्रोध, 26. अवहित्था, 27. उग्रता, 28. मति, 29. व्याधि, 30. उन्माद,
31. मरण, 32. त्रास, 33. वितर्क[1] ।

अन्य ग्रन्थकारों ने व्यभिचारी भावों के केवल नाम ही गिनाए हैं, किन्तु आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण के तृतीय परिच्छेद में 142 से लेकर 171 तक की कारिकाओं में व्यभिचारी भावों के लक्षणों का भी विस्तार से वर्णन किया है ।

सात्त्विक भाव

दूसरों के दुःख, हर्ष आदि की भावना में जब भावक का अन्तःकरण अत्यधिक अनुकूल तथा एकात्म हो जाता है तो उसे सत्त्व कहते हैं । यद्यपि सात्त्विक भावों में अनुभावत्व होता है, अनुभावों की तरह ये भी आश्रय के विकार हैं, फिर भी सात्त्विक भावों की पृथक स्थिति भी मानी जाती है ।

सत्त्व का अर्थ है मन से उत्पन्न होना । मन का सत्त्व यह है कि जब वह दुःखी या हर्षित होता है तो अश्रु, रोमांच आदि लक्षण प्रकट हो उठते हैं ।

- -

1. निर्वेदग्लानिशंकाख्यास्तथाऽसूया मदश्रमाः ।
आलस्यं चैव दैन्यं च चिन्ता मोहः स्मृतिर्धृतिः ।।
व्रीडा चपलता हर्ष आवेगो जडता तथा ।
गर्वो विषाद औत्सुक्यं निद्राऽपस्मार एव च ।।
सुप्तं प्रबोधोऽमर्षश्चाप्यवहित्थमथोग्रता ।
मतिर्व्याधिस्तथोन्मादस्तथा मरणमेव च ।।
त्रासश्चैव वितर्कश्च विज्ञेया व्यभिचारिणः ।
त्रयस्त्रिंशदमी भावाः समाख्यातास्तु नामतः ।। - काव्यप्रकाशः 4/31,32,33,
34

ये अश्रु, रोमांच आदि सत्त्व से निःसृत होते हैं अतः सात्त्विक भाव कहलाते हैं। दूसरी ओर ये विकाररूप भी हैं अतः अनुभाव भी कहे जाते हैं[1]।

आचार्य धनंजय ने 8 सात्त्विक भाव माने हैं। ये भाव हैं - 1. स्तम्भ, 2. प्रलय, 3. रोमांच, 4. स्वेद, 5. वैवर्ण्य, 6. वेपथु, 7. कम्प, 8. अश्रुवैस्वर्य[2]।

ये आठों भाव सात्त्विक भावों के अतिरिक्त विकाररूप अनुभाव भी होते हैं।

इन विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावों से पुष्ट स्थायी भाव को ही रस कहते हैं। आचार्यों की मान्यता है कि अभिनयात्मक काव्य में आठ

- -

1. पृथक्भावा भवन्त्यन्येऽनुभावत्वेऽपि सात्त्विकाः ।।
सत्त्वादेव समुत्पत्तेस्तच्च तद्भावभावनम् ।
परगतदुःखहर्षादिभावनायामत्यन्तानुकूलान्तःकरणत्वं सत्त्वं यदाह-
सत्त्वंनाम मनःप्रभवं तच्च समाहितमनस्त्वादुत्पद्यते । एतदेवास्य सत्त्वं
यतः खिन्नेन प्रहर्षितेन चाश्रुरोमांचादयो निर्वर्त्यन्ते तेन सत्त्वेन निर्वृताः
सात्त्विकास्त एव भावास्तत उत्पद्यमानत्वादश्रु प्रभृतयोऽपि भावा भाव
संसूचनात्मकविकाररूपत्वाच्चानुभावा इति द्वैरूप्यमेषाम् ।
-दशरूपकम् 4/4, 5 धनिकवृत्ति सहित

2. स्तम्भप्रलयरोमांचाः स्वेदो वैवर्ण्यवेपथूः।।
अश्रुवैस्वर्यमित्यष्टौ - - - - - - - ।
- वही 4/5, 6

ही रस होते हैं । ये रस हैं – श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स और अद्भुत[1] । श्रव्य काव्य में शान्त रस नामक नवम रस भी होता है । यद्यपि "नागानन्द" आदि नाटकों को शान्त रसप्रधान माना जाता है तथापि दशरूपककार ने नाट्य में शान्त रस की पुष्टि का स्पष्ट शब्दों में विरोध किया है[2]। आचार्य विश्वनाथ ने काव्य में एक अन्य रस वत्सलरस की स्वीकृति को मुनीन्द्रसम्मत बताया है । उन्होंने इसका स्थायी भाव वत्सलता तथा आलम्बन पुत्रादि बताया है[3] ।

रस

इन विभावानुभाव संचारी भाव से पुष्ट स्थायी भावों से निष्पन्न रसों के अपने विशिष्ट लक्षण हैं । नाट्यशास्त्र में इन रसों का क्रमशः नाममात्र से ही कथन किया गया है, किन्तु परवर्ती काव्यशास्त्रियों ने इनका सलक्षण विस्तृत विवेचन किया है । लक्षण सहित ये रस हैं –

<u>श्रृंगार रस</u> – नाट्यशास्त्र में श्रृंगार रस को प्रथम स्थान दिया गया है । आचार्यों

- -

1. श्रृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः ।
   बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः ।।
   –काव्यप्रकाशः 4/29 तथा नाट्यशास्त्रः 6/16
2. रत्युत्साहजुगुप्साः क्रोधो हासः स्मयो भयं शोकः ।
   शममपि केचित्प्राहुः पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य ।।
   – दशरूपकम् 4/35
3. स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः ।
   स्थायी वत्सलतास्नेहः पुत्राद्यालम्बनं मतम् ।।
   – साहित्यदर्पणः 3/25।

ने श्रृंगार रस के दो भेद माने हैं - 1. सम्भोग श्रृंगार, 2. विप्रलम्भ श्रृंगार[1]।
श्रृंगार रस का लक्षण करते हुए आचार्य विश्वनाथ कहते हैं, "श्रृंगार रस में प्रायः उत्तम प्रकृति का नायक, परोढा तथा अननुरागिणी वेश्या के अतिरिक्त नायिका तथा दक्षिण आदि नायक आलम्बन होने चाहिये। चन्द्र, चन्दन, भ्रमर आदि उद्दीपन माने गये हैं तथा भ्रूविक्षेप, कटाक्ष आदि इसके अनुभाव कहे गए हैं तथा रति स्थायी भाव है। उग्रता, मरण, आलस्य तथा जुगुप्सा को छोड़कर सभी इसके व्यभिचारी भाव हैं[2]।

(क) <u>संभोग श्रृंगार</u> - श्रृंगार रस के द्विधा भेदों में प्रथम संभोग श्रृंगार, परस्पर अवलोकन, आलिंगन, अधरपान, आदि के भेद से अनन्त प्रकार का होता है। अतः भेदों की गणना संभव न होने से एक ही गिना जाता है[3]।

- -

1. तत्र श्रृंगारस्य द्वौ भेदौ - सम्भोगो विप्रलम्भश्च।

   -काव्यप्रकाश: 4/29 की वृत्ति

2. विप्रलम्भोऽथ संभोग इत्येष द्विविधो मतः ।।

   -साहित्यदर्पण: 3/186

2. श्रृंगं हि मन्मथोद्भेदस्तदागमनहेतुकः ।
उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः श्रृंगार इष्यते ।।
परोढां वर्जयित्वा तु वेश्यां चाननुरागिणीम् ।
आलम्बनं नायिकाः स्युर्दक्षिणाद्याश्च नायकाः ।।
चन्द्रचन्दनरोलम्बरुताद्युद्दीपनंम मतम् ।।
भ्रूविक्षेपकटाक्षादिरनुभावः प्रकीर्तितः ।।
त्यक्त्वौग्र्यमरणालस्यजुगुप्सा व्यभिचारिणः ।
स्थायिभावो रतिः श्यामवर्णोऽयं विष्णुदैवतः ।।

   - साहित्यदर्पण: 3/183, 184, 185, 186

3. तत्राद्यः परस्परावलोकनालिंगनाधरपानपरिचुम्बनाद्यनन्तत्वादपरिच्छेद्य एक एव गण्यते। - काव्यप्रकाश: 4/29 वृत्ति

(ख) <u>विप्रलम्भ श्रृंगार</u>- जहां पर रति की पराकाष्ठा होने पर भी अभीष्ट की प्राप्ति नहीं होती वहां विप्रलम्भ श्रृंगार रस होता है[1]। यह भी अभिलाषा, ईर्ष्या, विरह, प्रवास, तथा शाप इन 5 प्रकार के हेतुओं से होने के कारण 5 प्रकार का होता है[2]। साहित्यदर्पणकार ने इसे, पूर्वराग, मान, प्रवास तथा करुणात्मक मानकर इसके चतुर्धा भेद किये हैं[3]।

2. <u>हास्य रस</u>- विकृत आकार, वाणी, वेश तथा चेष्टा आदि से युक्त नट के द्वारा इस रस की उत्पत्ति होती है। हास्य रस का स्थाई भाव हास है। जिस विकृत आकार, वाणी तथा चेष्टा वाली वस्तु को देखकर दर्शक हंसें वह सब इस रस का आलम्बन विभाव कहा जाता है। उस नट की चेष्टाएं ही उद्दीपन विभाव मानी गई हैं। नेत्रों का संकुचित होना आदि अनुभाव हैं[4]।

3. <u>करुण रस</u>- प्रिय वस्तु अथवा पुत्रादि के नष्ट या मृत्यु के प्राप्त होने से तथा अनिष्ट की प्राप्ति से करुण नामक रस उत्पन्न होता है। इस रस का स्थायी

- -

1. यत्र तु रतिः प्रकृष्टा नाभीष्टमुपैति विप्रलम्भोऽसौ।

   - साहित्यदर्पणः 3/187

2. अपरस्तु अभिलाषविरहेर्ष्याप्रवासशापहेतुक इति पंचविधः।

   - काव्यप्रकाशः 4/29 वृत्ति

3. स च पूर्वरागमानप्रवासकरुणात्मकश्चतुर्धा स्यात्॥

   - साहित्यदर्पणः 3/187

4. विकृताकारवाग्वेषचेष्टादेः कुहकाद्भवेत्।
   हास्यो हासस्थायिभावः श्वेतः प्रमथदैवतः॥
   विकृताकारवाक्चेष्टं यमालोक्य हसेज्जनः।
   तदत्रालम्बनं प्राहुस्तच्चेष्टोद्दीपनं मतम्॥
   अनुभावोऽक्षिसंकोचवदनस्मेरतादयः।
   निद्रालस्यावहित्थाद्या अत्र स्युर्व्यभिचारिणः॥

   - साहित्यदर्पणः 3/214, 215, 216

भाव शोक है । शोच्य वस्तु तथा व्यक्ति आदि इस रस के आलम्बन विभाव हैं । उस शोच्य की दाहादिक अवस्थाएं उद्दीपन हैं । दैव निन्दा, भूलुण्ठन, रोदन, विलाप, विवर्णता, दीर्घनिःश्वास, अन्तर्मुख श्वास, जडता, प्रलपन आदि अनुभाव हैं । निर्वेद, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, श्रम, अवसाद, चिन्ता आदि व्यभिचारी भाव हैं[1]।

4. रौद्र रस- रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध हैं । इस रस में शत्रु आलम्बन विभाव है । शत्रु की चेष्टाएं उद्दीपन विभाव हैं । मुष्टि प्रहार, आक्रमण, विरुद्धाचरण, युद्ध की व्यग्रता आदि शत्रु के आचरणों से इसकी अतिशय उद्दीप्ति होती है । भ्रुकुटि भंग, ओष्ठ दंशन, भुजाओं का फैलाना, गर्जन-तर्जन करना, अपने किये हुए वीर कर्मों की प्रशंसा करना, अस्त्रों का प्रहार करना आदि इसके अनुभाव हैं । इसमें उग्रता, आवेग, रोमांच, स्वेद, कम्पन, मोह, मद व अमर्ष

---

1. इष्टनाशादनिष्टाप्तेः करुणाख्यो रसो भवेत् ।
धीरैः कपोतवर्णोऽयं कथितो यमदैवतः ।।
शोकोऽत्र स्थायिभावः स्याच्छोच्यमालम्बनं मतम् ।
तस्य दाहादिकावस्था भवेदुद्दीपनं पुनः ।।
अनुभावा दैवनिन्दाभूपातक्रन्दितादयः ।
वैवर्ण्योच्छ्वासनिःश्वासस्तम्भप्रलपनानि च ।।
निर्वेदमोहापस्मारव्याधिग्लानिस्मृतिश्रमाः ।
विषादजडतोन्मादचिन्ताद्या व्यभिचारिणः ।।
- साहित्यदर्पणः 3/222, 223, 224, 225

आदि भाव इसके व्यभिचारी भाव हैं[1] ।

5. <u>वीर रस</u>- वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है । उत्कृष्ट, धीरोदात्त प्रकृति वाला नायक इसका आलम्बन विभाव है । इस रस के उद्दीपन विभाव हैं - विजेतव्यादि की चेष्टाएं । वीर रस में सहायकों का अन्वेषणादि अनुभाव होते हैं । युद्ध में सैन्य, दान में वित्त, धर्म में द्रव्य, मन्त्रादि तथा दया में त्यागादि सहायक होते हैं । धृति, मति, गर्व, स्मृति, तर्क और रोमांच इसके व्यभिचारी भाव हैं । यह वीर रस इस प्रकार दान, धर्म, युद्ध और दया से युक्त होकर 4 प्रकार का होता है[2] ।

- -

1. रौद्रः क्रोधस्थायिभावो रक्तो रुद्राधिदैवतः ।
आलम्बनमरिस्तस्य तच्चेष्टोद्दीपनं मतम् ।।
मुष्टिप्रहारपातनविकृतच्छेदावदारणैश्चैव ।
संग्रामसंभ्रमाद्यैरस्योद्दीप्तिर्भवेत् प्रौढा ।।
भ्रूविभंगौष्ठनिर्दंशबाहुस्फोटनतर्जना : ।
आत्मावदानकथनमायुधोत्क्षेपणानि च ।।
अनुभावास्तथाक्षेपक्रूरसंदर्शनादयः ।
उग्रतावेगरोमांचस्वेदवेपथवो मदः ।।
मोहामर्षादयस्तत्र भावाः स्युर्व्यभिचारिणः ।
- साहित्यदर्पणः 3/227, 228, 229, 230,231

2. उत्तमप्रकृतिर्वीर उत्साहस्थायिभावकः ।
महेन्द्रदैवतो हेमवर्णोऽयं समुदाहृतः ।।
आलम्बनविभावास्तु विजेतव्यादयो मताः ।
विजेतव्यादिचेष्टाद्यास्तस्योद्दीपनरूपिणः ।
अनुभावास्तु तत्र स्युः सहायान्वेषणादयः ।।
संचारिणस्तु धृतिमतिगर्वस्मृतितर्करोमांचा : ।
स च दानधर्मयुद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्धा स्यात् ।।
- साहित्यदर्पणः 3/232, 233, 234

6. भयानक रस - इस रस का स्थायी भाव भय है। स्त्री जाति तथा अधम मनुष्य इसके आश्रय हैं। जिससे भय उत्पन्न होता है वह इस रस में आलम्बन माना गया है। आलम्बन की अत्यन्त भीषण चेष्टाएं उद्दीपन विभाव होती हैं। इसमें विवर्णता, गद्गद स्वर से भाषण, चेष्टा का नष्ट होना, स्वेद, रोमांच,तथा कम्प आदि का अनुभव इसके अनुभाव होते हैं। जुगुप्सा, आवेग, सम्मोह, संत्रास, ग्लानि, दीनता, शंका, अपस्मार, सम्भ्रान्ति व मृत्यु आदि व्यभिचारी भाव होते हैं[1]।

7. वीभत्स रस - जुगुप्सा इस रस का स्थाई भाव है। दुर्गन्धित मांस, रुधिर, चर्बी आदि आलम्बन माने गये हैं। उसमें ही कीड़े पड़ना आदि उद्दीपन विभाव है। थूकना, मुखफेर लेना, आँखें बन्द कर लेना आदि इसके अनुभाव हैं। मोह,

- -

1. भयानको भयस्थायिभावो कालाधिदैवतः।
स्त्रीनीचप्रकृतिः कृष्णो मतस्तत्त्वविशारदैः।।
यस्मादुत्पद्यते भीतिस्तदत्रालम्बनं मतम्।
चेष्टा घोरतरास्तस्य भवेदुद्दीपनं पुनः।।
अनुभावोऽत्र वैवर्ण्यगद्गदस्वरभाषणम्।
प्रलयस्वेदरोमांचकम्पदिक्प्रेक्षणादयः।।
जुगुप्सावेगसंमोहसंत्रासग्लानिदीनताः।
शंकापस्मारसम्भ्रान्तिमृत्य्वाद्या व्यभिचारिणः।।

- साहित्यदर्पणः अंक 3/235, 236, 237, 238

अपस्मार, आवेग, व्याधि तथा मरणादि इसमें व्यभिचारी भाव होते हैं[1] ।

8. <u>अद्भुत रस</u>- इस रस में स्थायी भाव विस्मय होता है । अलौकिक वस्तु, आलम्बन विभाव होती है । अद्भुत वस्तु के गुणों का वर्णन उद्दीपन विभाव है । स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, गदगद स्वर, सम्भ्रम तथा नेत्रविकासादि अनुभाव हैं । वितर्क, आवेग, सम्भ्रान्ति तथा हर्षादि संचारी भाव हैं[2]।

9. <u>शान्त रस</u>- "शम" शान्त रस का स्थायी भाव है । इसका आश्रय उत्तम प्रकृति वाला नायक होता है । अनित्यत्व आदि के कारण सम्पूर्ण पदार्थों की जो निस्सारता है अथवा परमात्मस्वरूप इसका आलम्बन विभाव कहा जाता है । पुण्याश्रम, हरिक्षेत्र, तीर्थ, रमणीय वन आदि तथा महात्माओं का सत्संग ही

---

1. जुगुप्सास्थायिभावास्तु बीभत्सः कथ्यते रसः ।
   नीलवर्णो महाकालदैवतोऽयमुदाहृतः ।।
   दुर्गन्धमांसरुधिरमेदांस्यालम्बनं मतम् ।
   तत्रैव कृमिपाताद्यमुद्दीपनमुदाहृतम् ।।
   निष्ठीवनास्यवलननेत्रसंकोचनादयः ।
   अनुभावास्तत्र मतास्तथा स्युर्व्यभिचारिणः ।।
   मोहोऽपस्मार आवेगो व्याधिश्च मरणादयः ।
   - साहित्यदर्पण: 3/239, 240, 241, 242

2. अद्भुतो विस्मयस्थायिभावो गन्धर्वदैवतः ।।
   पीतवर्णो वस्तु लोकातिगमालम्बनं मतम् ।
   गुणानां तस्य महिमा भवेदुद्दीपनं पुनः ।।
   स्तम्भःस्वेदोऽथ रोमांचगद्गदस्वरसंभ्रमाः ।
   तथा नेत्रविकासाद्या अनुभावाः प्रकीर्तिताः ।।
   वितर्कावेगसंभ्रान्तिहर्षाद्या व्यभिचारिणः ।
   - वही 3/242, 243, 244, 245

इसके उद्दीपन विभाव हैं। रोमांच आदि अनुभाव हैं तथा निर्वेद, हर्ष, स्मरण, मति तथा प्राणियों पर दया आदि इसके व्यभिचारी भाव हैं[1]।

10. <u>वत्सल रस</u> - इस रस में वात्सल्य स्थायी भाव है। पुत्रादि इसके आलम्बन विभाव हैं। उनकी चेष्टाएं, विद्या, वीरता तथा दया आदि उद्दीपन विभाव हैं। आलिंगन, अंग-स्पर्श, शिरोचुम्बन, रोमांच, आनन्दाश्रु आदि इसके अनुभाव कहे गए हैं। अनिष्ट की आशंका, हर्ष, गर्व आदि संचारी भाव माने गये हैं[2]।

---

1. शान्तः शमस्थायिभाव उत्तमप्रकृतिर्मतः ।।
   कुन्देन्दुसुन्दरच्छायः श्रीनारायणदैवतः ।
   अनित्यत्वादिनाऽशेषवस्तुनिःसारता तु या ।।
   परमात्मस्वरूपं वा तस्यालम्बनमिष्यते ।
   पुण्याश्रमहरिक्षेत्रतीर्थरम्यवनादयः ।।
   महापुरुषसंगाद्यास्तस्योद्दीपनरूपिणः ।
   रोमांचाद्याश्चानुभावास्तथा स्युर्व्यभिचारिणः ।।
   निर्वेदहर्षस्मरणमतिभूतदयादयः ।
   -साहित्यदर्पण: 3/245, 246, 247, 248, 249

2. स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः ।
   स्थायी वत्सलतास्नेहः पुत्राद्यालम्बनं मतम् ।।
   उद्दीपनानि तच्चेष्टा विद्याशौर्यदयादयः ।
   आलिंगनांगसंस्पर्शशिरश्चुम्बनमीक्षणम् ।।
   पुलकानन्दवाष्पाद्या अनुभावाः प्रकीर्तिताः ।
   संचारिणोऽनिष्टशंकाहर्ष गर्वादयो मताः ।।
   पद्मगर्भच्छविर्वर्णो दैवतं लोकमातरः ।
   - वही 251, 252, 253, 254

अद्भुतदर्पणम् नाटक में विभिन्न भावों एवं रसों की स्थिति

नाना भाव एवं रूप वाली इस प्रकृति-नटी की क्रोड में जीवन सदैव एकरस नहीं रहता । वास्तविकता तो यह है कि जीवन के विपुल विस्तार में उसका सच्चा रूप तभी प्रकाशित होता है, जब उसको हर्ष, विषाद, निराशा, आक्रोश, वेदना तथा चिन्ता आदि भावों के गहन वन से निकलना पड़ता है । कविवर महादेव की इस कृति अद्भुतदर्पणम् में इन भावों तथा इनसे परिपुष्ट रसों की सुन्दर अभिव्यक्ति दृष्टिगत होती है । कवि ने इस नाटक की रचना कर, विलास की अपेक्षा जीवन के संघर्ष को अधिक मान्यता दी है । यही कारण है कि उन्होंने मानवीय भावों को उनकी अतल गम्भीरता तक प्रवेश कर अभिव्यक्त किया है। यथा-

आक्रोश- एक स्थान पर श्रीराम के द्वारा, परमशत्रु रावण के पास सन्धि प्रस्ताव लेकर अंगद को भेजे जाने से क्षुब्ध लक्ष्मण का आक्रोश दर्शनीय है-

तन्नैव स्मृतमार्य्यतं सदसि यद्रक्षःकुलोन्मूलनं
तज्जीर्णं हृदि यद्विभीषणमवो संकल्पिता सिंहलाः ।
अन्यत्प्रस्तुतमद्य नूतनतया यत्किंचिदार्येण मे
मानी संधिकथां करोति हृदि कस्तद्वैरमूलं स्मरन्[1]।।

चिन्ता- इसी प्रकार एक स्थान पर श्रीराम अपनी प्रमादजन्य वंचना के प्रति चिन्तित हैं । उनके इस मनोभाव को कवि ने बड़ी ही मार्मिकता के साथ व्यंजित किया है । यथा-

न्यक्कारस्य करिष्यते प्रतिकृतिः शत्रोः शिरःकर्तने -
र्वंशस्योन्मथनेन जातिहननैरन्येन वा केनचित् ।
दृष्टिं कोणयतो मुखं नमयतो धिग्वीरगोष्ठीजुषः
प्राप्तस्यास्य मम प्रमादजनुषो वाच्यस्य का निष्कृतिः[2]।।

- -

1. अद्भुतदर्पणम् 1/10
2. वही 1/12

वितर्क - वितर्क नामक व्यभिचारी भाव की सुन्दर अभिव्यक्ति भी नाटक में दर्शनीय है। लक्ष्मण श्रीराम के विभिन्न लक्षणों को देखकर वितर्क करते हैं कि सम्भवतः उनके हृदय में शत्रु द्वारा किये गये अपमान का शल्य, उन्हें पीड़ित कर रहा है -

मद्वक्त्रेऽपि यदा दधाति न पदं दृष्टिः समग्रं ह्रिया
यद्वैयर्थ्यमिव व्यनक्ति विततश्वासः स्वगात्रेष्वपि।
मूर्धा शश्वदकाण्डकुक्कहसितैर्यच्चाग्रतः कम्पते
तन्मन्ये परिवर्तते निशितरन्यक्कारशल्यं हृदि[1]।।

खेद -खेद नामक व्यभिचारी भाव की भी सुन्दर व्यंजना नाटक में प्राप्त होती है। लक्ष्मण, श्रीराम को अपने व्यंग्यवचनों से आहत तो कर देते हैं किन्तु भाई की पीड़ा देखकर उन्हें बहुत कष्ट होता है। श्रीराम जब स्वयं अपनी भर्त्सना करने लगते हैं तब लक्ष्मण खेद प्रकट करते हुए कहते हैं कि आर्य की अस्थान पर गर्हणा से उन्हें बहुत दुःख हो रहा है[2] तथा उन्हें इस बात का भी खेद होता है कि उन्होंने भ्राता के हृदय में गड़े हुए अपमान के शल्य को अपने वचनों से मानो परिघट्टित सा कर दिया है[3]।

---

1. अद्भुतदर्पणम् 1/11
2. जाल्मश्चौर्यमिदं चकार किल यस्तस्याद्य दृष्टं पदं
   संप्रत्येव स दण्ड्यते च सगणो यत्किंचिदास्तामिदम्।
   किंतु न्यंगतयावबुध्य तदिदं लज्जान्धकूपे चिरा-
   दस्थाने खलु ताम्यता ननु वदाम्यार्येण दूयामहे।।
   -अद्भुतदर्पणम् 1/16
3. लक्ष्मणः - (स्वगतम्) कथं यदृच्छाविक्षिप्तेन चेतसा क्षणमिव समुच्छ्वसतो निरन्तराबद्धसंवेगदारुणमामज्जकीलितमजानता मया पुनरपि परिघट्टितं हृदयशल्यमार्यस्य। - वही अंक 1, पृष्ठ 10

भावोदय- भावोदय का भी एक उत्कृष्ट स्थल नाटक में दर्शनीय है । जिस मित्र की मृत्यु का श्रीराम को निश्चय हो चुका है, उसी मित्र के अचानक आ जाने तथा आलिंगनबद्ध होने पर श्रीराम के हृदय में हर्ष नामक भाव का जो उदय होता है उसका, यह श्लोक उत्कृष्ट उदाहरण है:-

यैरारम्भि हृदि स्पृहा परिभवोत्तारे शरीरेऽपि मे
यानि द्रागनुमार्जयन्ति भरतानाश्लेषदुःखं चिरात् ।
दृष्ट्वा यानि समस्तबन्धुविरहक्लेशोऽपि न स्मर्यते
दिष्ट्या तानि मयाङ्कानि सुहृदो लब्धानि दीर्घायुषः[1]।।

भावशबलता - द्वितीय अंक में एक स्थान पर जाम्बवान् के स्वगत कथन में शंका नामक संचारी भाव का सुन्दर निदर्शन है, साथ ही यहां भाव शबलता भी है क्योंकि अन्तिम पंक्ति में वितर्क नामक भाव प्रकाशित होता है :-

किमेष रजनीचरः किमपि मायया दर्शय-
त्यथो नु परमार्थतो दधिमुखो गृहीतो भवेत् ।
इति प्रबलसंशयाकुलितचेतसासौ मया
कथं नु परिमुच्यतामथ कथं नु वा बध्यताम्[2]।।

उपर्युक्त पद्य में तो भाव शबलता है ही, किन्तु तृतीय अंक का प्रस्तुत पद्य भावशबलता का एक उत्कृष्ट उदाहरण है:-

दूरं हन्त परागतो दधिमुखस्तारेय धीरोऽसि रे
हा सुग्रीव जहासि मामथ पुरस्ताद्दह्यते गोपुरम् ।
जीवन्तीं यदि लोकयेय दयितां न्यग्भेऽपि धिग्जीवितं
किं वत्स त्वरसे ममैव हि कुतो भागस्त्वया रावणः[3]।।

---

1. अद्भुतदर्पणम् 3/19
2. वही 2/1
3. वही 3/2

यहाँ श्रीराम के द्वारा एक ही स्थान पर विभिन्न भावों के व्यक्तीकरण से भाव शबलता की उत्पत्ति होती है ।

इसके प्रथम चरण के पूर्वार्द्ध में श्रीराम द्वारा दधिमुख के आगे चले जाने से चिन्ता व्यक्त की गई है । यहीं उत्तरार्द्ध में असूया की भावना व्यंजित होती है । द्वितीय पंक्ति के पूर्वार्द्ध में विषाद व्यक्त हो रहा है, तो उसी के उत्तरार्द्ध में औत्सुक्य का भाव है । इसी प्रकार तृतीय चरण के प्रथमार्द्ध में शंका व्यक्त है तो द्वितीयार्द्ध में ग्लानि व्यंजित है तथा पद्य की अन्तिम पंक्ति में आक्रोश स्पष्ट हो रहा है । इस प्रकार यहाँ एक साथ अनेक भाव स्पष्ट हो रहे हैं ।

अद्भुतदर्पण नाटक में रसों की स्थिति

भारतीय नाट्य समीक्षा के अनुसार रस रूपक के तीन प्रमुख तत्त्वों में एक है । विभावानुभाव संचारी भाव के संयोग से अलौकिक आनन्द की अनुभूति स्वरूप रस की प्रतीति कराना ही नाटकों का परम प्रयोजन है । इसी आधार पर आलोच्य नाटक में भी विभिन्न रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है ।

नाटक में अंगीरस (वीररस)

किसी भी ग्रन्थ के अंगीरस का निर्णय उस ग्रन्थ के प्रतिपाद्य की सर्वांगीण समीक्षा से ही सम्भव होता है । आचार्य आनन्दवर्धन ने सम्भवतः इसी दृष्टि से लिखा था, " रामायणे हि करुणो रसः यथा स्वयमादि कविना सूत्रितः ।" अर्थात् रामायण में आदिकवि बाल्मीकि ने करुणरस को ही अंगीरस के रूप मे विन्यस्त किया है । ध्वनिकार की इस स्थापना को समझने के लिये रामायण के सूक्ष्म परिशीलन की आवश्यकता है । आपाततः रामायण का प्रतिपाद्य वीर रस से ओतप्रोत है, कुछ प्रसंगों को छोड़कर प्रायः राक्षसों पर राम की विजय को ही दर्शाया गया है, जो कि ताड़का वध से लेकर रावणवध तक व्याप्त है । परन्तु इन युद्धप्रसंगों के बावजूद भी सम्पूर्ण रामकथा करुणा में ही पर्यवसित होती है,

वीररस की प्रधानता प्रतीत होती है परन्तु पारमार्थिक दृष्टि से उसका कथानक करुणा से ही ओतप्रोत है ।

कविवर महादेव प्रणीत अद्भुतदर्पणम् नाटक के शीर्षक तथा नाटक में निबद्ध कुछ वृत्तान्तों, जैसे – शम्बर नामक मायावी राक्षस के द्वारा विभिन्न मायामय रूप धारणकर रामपक्ष को भ्रमित करना, लंका नगरी तथा निकुम्भिला दुर्ग का मानवीकरण अथवा मय दानव द्वारा रावण को दी गई अद्भुतदर्पण नामक मणि की आश्चर्यजनक शक्ति, मय के द्वारा राम का रूप धारण कर सीता को वंचित करना आदि प्रसंगों में अद्भुतरस का बाहुल्य पाया जाता है । इन वृत्तान्तों को देखकर एक बार तो ऐसा प्रतीत होता है कि नाटक में अद्भुत रस ही अंगी रस है, किन्तु वास्तव में इस नाटक का प्रधान रस वीर.रस है ।

आपाततः नाटक में भले ही अद्भुतरस का प्राधान्य प्रतीत होता हो किन्तु यदि हम नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से विश्लेषण करें अथवा नाटक के सम्पूर्ण कथा-वृत्त को दृष्टिगत रखते हुए आलोचना करें, दोनों ही प्रकार से वीररस नाटक का अंगीरस सिद्ध होता है ।

नाट्यशास्त्र के नियमानुसार नाटक का प्रधान रस वीर अथवा श्रृंगार ही होता है[1] । रस के निर्णय का प्रधान आधार होता है, नाटक का फल । अन्त में जिस रस के द्वारा नायक को फलप्राप्ति होती है वही नाटक का प्रधानरस होता है । यही कारण है कि नाटक के उद्देश्य तथा सम्पूर्ण कथानक में नायक के क्रियाकलाप का विशेष ध्यान रखते हुए नाटक के मुख्यरस का विचार किया जाना चाहिये ।

प्रस्तुत नाटक का प्रारम्भ तथा अवसान दोनों ही वीररस में हुआ है । सम्पूर्ण कथानक में वीररस ही व्याप्त है । अद्भुतरस तो इस अंगी वीररस के प्रधान

---

1. एको रसोऽङ्गीकर्तव्यो वीरः श्रृंगार एव वा ।।
   अंगमन्ये रसाः सर्वे कुर्यात् निर्वहणेऽद्भुतम् ।
   – दशरूपकम् 3/33, 34

पोषक रस के रूप में आया है । प्रस्तुत नाटक का प्रधान फल है, रावणवध के उपरान्त सीता की प्राप्ति । नाटक के नायक श्रीराम हैं तथा प्रतिनायक है रावण । इस प्रकार वीर रस का आलम्बन विभाव रावण है तथा आश्रय हैं श्री रामदेव । राम के हृदय में राक्षस कुलोन्मूलन रूप उत्साह है, यही है नाटक में प्रधान वीररस का स्थायी भाव । इसके अतिरिक्त सहनायक लक्ष्मण की राक्षस कुलोन्मूलन के उत्साह से ओतप्रोत उक्तियाँ, यथा –

इमं क्षणं राक्षसजातिमात्रमुन्मूलयामो वयमेकताना: ।
किं कस्य वृत्तं रणसीम्नीति पश्चादिदं साधु विचारयाम:[1] ।।

तथा मायानाटिका के प्रसंग में राम, रावण तथा कुम्भकर्ण के युद्धवर्णन में, राम तथा लक्ष्मण की ओजपूर्ण उक्तियाँ –

एष्यत्येव रणाजिरं दशमुख: शस्त्रास्त्रमायोद्धत:
शक्रारिश्च पुर: समेष्यति कृतब्रह्मास्त्रसंसाधन: ।
तन्न: कौतुकमाहवाय घटते यत्कुम्भकर्ण: स्वयं
यद्येते युगपत्त्रयोऽपि मिलिता: सोऽयं चिरस्योत्सव:[2] ।।

इसी प्रकार एक स्थान पर लक्ष्मण का एक अन्य कथन –

प्रतिज्ञात: शत्रुवधादपि भवता रावणवध:
प्रतिज्ञानिर्वाहव्रतमपि च जानामि भवत: ।
तदप्यस्मिन्दृष्टे चिरसमरवांछापरवशौ
करौ चापे तूणावपि सरभसौ मे विचरत:[3] ।।

भी वीररस को उद्घाटित करता है । चिरकाल के पश्चात् रावण जैसे पराक्रमी शत्रु को प्राप्त कर, वीरता प्रदर्शित करने की इच्छा रखने वाले श्रीराम का उत्साह

- -

1. अद्भुतदर्पणम् 2/29
2. वही 6/31
3. वही 6/32

दर्शनीय है -

संशान्ते भृगुनन्दने सुरपतेः सूनौ च याते दिवं
शस्त्राशस्त्रिविमर्दकत्थनकथाशून्ये जगन्मण्डले ।
दिष्ट्या नन्वयमेक एव हि चिरादद्योपलब्धो रिपु-
स्तस्मिन्संप्रति दृष्टमात्रनिहते को वेद नः कौशलम्[1]।।

माया का बल रखने वाली राक्षस जाति को अपने बल से जीतने की इच्छा रखने वाले श्रीराम का प्रबल उत्साह भी वीर रस को ही पुष्ट करता है, उदाहरणार्थ -

दृष्टः शस्त्रविमर्दनिर्दयभुजो रामः कुठारायुधः
दृष्टो योजनबाहुरद्भुतजवः दाहवैकव्रती ।
दृष्टः पर्वतवृष्टिदुर्दिनरणश्लाघी च बाली मया
द्रष्टव्याः खलु सांप्रतं पुनरिमे मायाविनो राक्षसाः[2]।।

इस प्रकार नाटक के कथानक, घटनाचक्र तथा फलप्राप्ति के आधार पर वीर रस ही नाटक का प्रधान रस माना जा सकता है ।

अंगीरस, वीररस के अंगभूत अन्य रस

किसी भी नाटक में समाज अथवा व्यक्ति की विभिन्न मनोभावनाओं तथा परिस्थितियों की विवधता के आधार पर विभिन्न रसों की अनुभूति होना स्वाभाविक ही है । इसी आधार पर अद्भुतदर्पणम् नाटक में भी अनेक स्थलों पर विभिन्न रसों का परिपाक हुआ है, जो प्रधान रस, वीररस के परिपोषक के रूप में ही दृष्टिगत होते हैं । यथा -

अद्भुतरस- वीररस के पश्चात् अद्भुतरस ही नाटक का प्रमुख रस है । यह वीररस

---

1. अद्भुतदर्पणम् 8/32
2. वही 1/19

के मुख्य पोषकरस के रूप में नाटक में प्रयुक्त हुआ है । सम्पूर्ण नाटक के कथानक को ही कवि ने अद्भुत बनाने का प्रयत्न किया है । मायावी राक्षस शम्बर की योजना भी कवि की इसी कल्पना को साकार करती है । यह राक्षस माया के द्वारा कभी दधिमुख, कभी विभीषण तो कभी अंगद का रूप धारण कर रामपक्ष को इतना अधिक भ्रमित कर देता है कि आश्चर्यों की एक श्रृंखला सी बन जाती है, किन्तु ये वृत्तान्त श्रीराम के वीरभाव को अधिकाधिक उत्प्रेरित करने में सहायक ही होते हैं । इस रस की पुष्टि श्रीराम एवं रावण के मायामय युद्ध के द्वारा होती है, जहां कभी तो एक ही रावण अनेक रूप धारणकर युद्ध करता है तो कभी एक ही राम अनेक रूपों में रावण को घेर लेते हैं।- उदाहरणार्थ -

आविष्कुर्वति रावणे युधि निजां मायां जगन्मोहिनी-
मेकैकं परितः कपिं त्रियुताः संरुन्धते रावणाः ।
यूथेन्द्रानपि पंचषाः कपिपतिं सुग्रीवमप्यंगदं
सप्ताष्टाः शतशस्तु लक्ष्मणमहो रामं त्वसंख्या इमे[1]।।

पश्य पश्य । आश्चर्यमाश्चर्यम् ।
एकैकं दशकण्ठमाशु परितः संख्यातिगा राघवा
मृद्नन्ति प्रसभं हयध्वजरथच्छत्रायुधध्वंसिनः ।
तत्किं वेद रघूद्वहः सखि महागान्धर्वमस्त्रोत्तमं
यद्देवात्त्रिपुरान्तकात्त्रिभुवने जानाति नान्यो जनः[2]।।

इसके अतिरिक्त नाटक के दशम अंक में सीता को छलने के लिये, मय दानव के द्वारा राम का वेष धारण कर सीता को वंचित करने का प्रसंग भी सामाजिकों में अद्भुतरस की सृष्टि करता है । इसी प्रसंग में उस समय तो आश्चर्य की सीमा हो जाती है, जब अग्नि में प्रवेश करने वाली सीता को अग्निदेव दग्ध नहीं करते अपितु सकुशल

---

1. अद्भुतदर्पणम् 9/3
2. वही 9/4

श्रीराम को समर्पित कर देते हैं -

मयः - (दृष्ट्वा सविस्मयम् ।) वत्से, पश्य पश्य ।

पाषाणेषु जलेषु चाप्रतिहतं यो वा क्रमेत स्वयं

सीतायामयमेव हन्त दहनः कुण्ठीभवन्दृश्यते[1]।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - -

रामः - किं बहुना ।

- - - - - - - - - - - -

सद्यस्त्विमिन्दहनं गता स्वयमियं तेनैव मे दीयते[1]।।

एक अन्य स्थान पर इन्द्रप्रदत्त वर के प्रभाव से मृत वानरों के अंगों का यथास्थान जुड़ना तथा उनका जीवित होना भी विस्मय की सृष्टि करता है । उदाहरणार्थ-

लक्ष्मणः - आश्चर्यमाश्चर्यम् ।

पाकारिप्रमुखैः स्वयं सुरवरैरार्यस्य दत्ते वरे

संतुष्टेष्विव वानरेषु निहतेष्वेप्युत्थितेषु क्षणात् ।

तद्गात्राणि हृतान्यपि द्विजगणैर्ग्रस्तान्यपि श्वापदैः

स्वासु स्वास्वभितोऽपि मूर्तिषु यथास्थानं मिलन्ति स्वयम्[2]।।

इस प्रकार इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि अद्भुतरस वीर रस का प्रधान अंगभूत रस है ।

रौद्र रस- प्रतिद्वन्द्वी रावण जैसे नारी अपहर्ता क्रूर राक्षस के विनाश की प्रबल इच्छा रखने वाले राम के लघुभ्राता, उद्धत-चरित्र लक्ष्मण के मनःसंवेग चित्रण में अनेकशः रौद्र रस की अवतरणा हुई है । क्रोध, आक्रोश एवं आवेगपूर्ण उनके वाक्य दर्शकों के हृदय में उत्तेजना उत्पन्न करते हुए रौद्र रस की अनुभूति कराते हैं ।

नाटक के प्रारम्भ में ही दधिमुख के वेष में आए हुए मायावी राक्षस शम्बर के द्वारा अंगद के रावणपक्ष में प्रवेश कर जाने के समाचार को सुनकर लक्ष्मण की

- -

1. अद्भुतदर्पणम् 10/10, 13

2. वही 10/24

आवेगपूर्ण उक्ति दर्शनीय है, जहां वे कहते हैं कि एक अंगद ही क्या समस्त वानर-वाहिनी, समस्त प्राणी तथा तीनों लोक ही चाहे रावण की सेना में सम्मिलित हो जाएं किन्तु आर्य राम की भ्रू-भंगिमा के बिना ही मैं समस्त लंका को अपने बाणों से दहन करने में समर्थ हूं -

लक्ष्मणः - किमेकेन तावदंगदेन ।
सर्वा वानरवाहिनीयमथवा भूचारिणः प्राणिनो
यद्वा प्रविशन्तु राक्षसबलं लोकास्त्रयः सेश्वराः ।
प्राकाराट्टशिलाविघट्टितशिखाशीर्णस्फुलिंगैः शरै-
रार्यभ्रूरचनां विनैव निमिषा लंकेयमादीप्यते[1] ।।

युद्ध के प्रसंग में भी लक्ष्मण की अनेक उक्तियों में रौद्रस की अवतरणा हुई है यथा-

बाणौघव्यतिकरवह्निदह्यमाना-
द्व्यामुह्यन्नुदरावदनः पुरादमुष्मात् ।
निर्यातुं द्रुतमदशः स्वयं दवाग्नि-
व्यालीढादिव गिरिकुंजतः शराहः[2] ।।

इसी प्रकार अनेक प्रसंगों में रावणपक्ष की उक्तियों में भी रौद्ररस का आभास हुआ है ।

<u>भयानक रस.</u> युद्धप्रधान नाटक होने के कारण इसमें भयानक रस का भी यथास्थान अवतरण हुआ है । मेघनाद के भीषण युद्ध में नागास्त्र से पीड़ित वानरों की दुर्दशा में भयानक रस का उपयुक्त परिपाक हुआ है -

द्राक्प द्योः किं हरिद्भ्यः किमु किमु धरणेश्छाद्यते नैव तत्त्वं
दीपे नष्टेऽन्धकारैरिव बलमहिभिश्छाद्यते वानराणाम् ।
व्यामूर्च्छन्वेदनानां द्विरिह कथयितुं वाचि लुप्तैव शक्तिः
तन्नः कर्णानुकम्प्यां ननु झटिति महाराज रामः शृणोतु[3] ।।

<u>हास्य रस-</u> युद्धवर्णन प्रधान नाटक होते हुए भी इसमें कवि रोचकता अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए, विदूषक नामक पात्र के माध्यम से हास्यरस की फुहारें छोड़ते चले हैं ।

---

1. अद्भुतदर्पणम् 1/27

विदूषक के क्रियाकलाप विशेषतः भोजन के प्रति उसकी असामान्य सतर्कता हास्य उत्पन्न करती है । वह, नाटक में नान्दी या ब्राह्मणसेवा आदि को मंगल नहीं मानता अपितु मोदक प्राप्ति को ही परम मंगल मानता है । उसकी यह उक्ति हास्य उत्पन्न करती है -

तव नान्दी वा ब्राह्मणसेवा वा भवतु मंगलम किमपि ।
मम पुनर्मंगलमेतल्लब्धा मोदका अनेन[1]।

विदूषक की वार्ता में तो अनेकशः हास्यरस प्राप्त होता ही है, नाटक के प्रारम्भिक प्रथम नान्दी श्लोक में ही कवि ने हास्य रस की अवतरणा की है । यहां कवि ने अपने आराध्य भगवान विष्णु के क्षीरसागर में निवास करने का बड़ा ही हास्यास्पद कारण बताया है । विष्णु को लक्ष्मी की प्राप्ति क्षीरसागर से ही हुई थी अतः रसज्ञ कवि ने यह संभावना व्यक्त की है कि पुरुषोत्तम, लक्ष्मी की भांति ही दूसरी तरुणी को प्राप्त करने की इच्छा से ही मानो क्षीरसागर में जागते रहते हैं -

श्रेयः श्रियो रसज्ञो ददातु पुरुषोत्तमो भवताम् ।
जागर्ति यः पयोधौ तादृशतरुणीजिघृक्षयेव पुनः[2]।।

एक स्थान पर शम्बर के द्वारा हास्यास्पद वानर वेष धारण करने तथा उसका वर्णन करने में भी हास्य रस का आभास होता है । उदाहरणार्थ -

उत्प्लुत्य धावनमकाण्डभयापसर्पः
पुच्छावधूतिरसकृद्भ्रुकुटिक्रिया च ।
इत्यादि शिक्षितमभूदखिलं कथंचि-
देका तु सा किलिकिला मम दुर्ग्रहेव[3]।।

<u>श्रृंगार रस</u>- नाटक में श्रृंगार रस के प्रसंग अत्यल्प हैं, जो हैं भी वे सभी विप्रलम्भ श्रृंगार के ही हैं । राम के मन में सीता से मिलने की व्याकुलता तो है, किन्तु वे इसे व्यक्त नहीं कर पाते । एक स्थान पर उनके स्वगत कथन से यह स्पष्ट होता है कि सीता के प्रसंगवश स्मरण मात्र से ही उनका हृदय विकल हो जाता है -

---

राम: - (स्वगतम् ।) हा प्रिये जनकराजनन्दिनी, अथवा अये हृदय, कथं प्रसंगादनुस्मृत्यैव तां विक्लवमसि[1]।

नाटक के षष्ठ अंक में श्रीराम का प्रेम प्रकट हो ही जाता है। अद्भुतदर्पण मणि के माध्यम से सीता के दर्शन की आशामात्र से विह्वल होकर श्रीराम मूर्च्छित हो जाते हैं। यहां उनके कथन में दर्शकों को वियोग श्रृंगार रस की चर्वणा होती है, जहां वे कहते हैं कि नेत्रों की मूर्तिमान उत्सवस्था जानकी के सम्मुख उपस्थित होने पर भी ये अश्रु इन नेत्रों से वैरभाव को नहीं त्याग रहे हैं-

राम: - (सवैक्लव्यम ।) वत्स, अपि दृष्टिगोचरा सा रामस्य जीवनाडी ।
(इति मुह्यति ।)
(आश्वस्य ।) उपस्थिते लोचनयोरुत्सवेऽस्मिन्क्रमानयो: ।
हा हन्त वाष्पसारो बन्नाधाप्युज्झति वैरिताम्[2]।

एक प्रसंग में तो यह विप्रलम्भ श्रृंगार करुण विप्रलम्भ में परिणित हो जाता है, जब शूर्पणखा के द्वारा दिखाए गये श्रीराम के मायामय शीर्ष एवं धनुष को देखते ही, सीता "हा हतास्मि मन्दभागिनी " कहकर मूर्च्छित हो जाती हैं तथा कुछ संज्ञा प्राप्त होने पर वे पुन: पति के कटे हुए शीर्ष तथा धनुष को लेकर, दारु पर्वत से गिरकर मरने की इच्छा व्यक्त करती हैं। शीर्ष और धनुष को न देखकर वे पुन: मूर्च्छित हो जाती हैं -

सीता - (नयने शनैरुन्मील्य ।) तदिदमेव भर्तुः शीर्षं धनुश्च परिरभ्यात्मा-दुदारुपर्वतादात्मानमवधूय निर्वृता भविष्यामि । कथमेतदपि मे मन्दभागिन्या अदर्शनम् गतम् । (पुनर्मुह्यति ।)[3]

संयोग श्रृंगार की एक छोटी सी झलक मात्र ही नाटक के दशम अंक में प्राप्त होती है, जहां श्रीराम आनन्दपूर्वक कहते हैं कि आज मेरा उत्संग सीता से पूर्ण हो गया

- -

1. अद्भुतदर्पणम् अंक । पृष्ठ 9
2. अद्भुतदर्पणम् 6/18
3. वही अंक 5, पृष्ठ 62

है -

राम: - (सानन्दम् ।) किं बहुना ।
दिष्ट्योत्संग: सीतया मेऽद्य पूर्णो[1]

<u>करुण रस</u>- करुण रस को उत्पन्न करने वाले भी कुछ प्रसंग नाटक में प्राप्त होते हैं । ये सभी सुग्रीव की मृत्यु का समाचार सुनकर दुःखी राम के उद्गारों में ही हैं, यथा -

राम: - तारेयमत्य किमपि स्पृशति प्रलाप-
स्तस्यापि नन्वरिषु संवदते प्रवेशः ।
कष्टं बत प्रलपितैः किमकाण्ड एव
तत्साहसं कृतवता सुहृदा हताः स्मः [2]।।

<u>बीभत्स रस</u>- इस रस को पुष्ट करने वाले भी अनेक प्रसंग नाटक में प्राप्त होते हैं । किन्तु प्रहस्त की अंगद द्वारा प्रताड़ना के प्रसंग में तो इसका चरमोत्कर्ष ही है । लक्ष्मण द्वारा उसके क्षत-विक्षत शरीर का वर्णन जुगुप्सा उत्पन्न करता है -

उर: पीठो मर्मत्रुटनविलुठत्प्राणविधुतो
नखानामाघातं वदति दशधा दारिततटः ।
विशीर्यद्दन्तालिव्यतिकरहठच्छिन्नरसन-
स्फुटन्नुन्मग्नाक्षः कथयति च मूर्धातलहतिम् [3]।।

यहां प्रहस्त के उर तथा पीठ के टूटने, नख के आघात से उसे विदारित किये जाने, दांतों के टूटने, जिह्वा के छिन्न होने तथा नेत्रों के बाहर निकल आने के वर्णन में बीभत्स रस का उद्भव होता है ।

इसी प्रकार एक स्थान पर प्रहस्त के घायल शरीर के निपात के दृश्य

---

1. अद्भुतदर्पणम् 10/28
2. वही 2/10
3. वही 2/7

का वर्णन भी जुगुप्सा उत्पन्न करता है, उदाहरणार्थ,

उत्पाताम्बुद इव शोणितानि वर्ष-
न्नादित्यात्पतति च दारुणः कबन्धः[1]।

सामाजिकों के सम्मुख रंगमंच पर प्रस्तुत की जाने वाली अभिनेय सामग्री के रूप में नाटक की प्रस्तुति सामाजिकों के हृदय में रस, भाव आदि की उत्पत्ति के द्वारा मनोरंजनार्थ होती है । अतः नाटक में रसों का परिपाक और उनका प्रभावकारी अस्तित्व आवश्यक होता है । अद्भुतदर्पणम् नाटक में भी, यद्यपि कवि ने रामकथा के एक अंश को ही आधार बनाया है तथापि इसके माध्यम से उनका उद्देश्य सामाजिकों को विविध प्रकार के रसों की अनुभूति कराकर उद्देश्यपूर्ति के साथ मनोरंजन का भरपूर प्रयास ही है । इस प्रकार कवि ने अपने नाटक में विविध रसों का उत्तम परिपाक किया है ।

---

1. अद्भुतदर्पणम् 2/6

गुण

काव्यशास्त्रीय तत्वों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्व रस तथा गुण माने जाते हैं। वस्तुतः गुणों तथा रसों में जन्य-जनक सम्बन्ध माना जाता है क्योंकि गुण काव्यात्माभूत रसों के नित्यधर्म हैं। जैसे सामान्य जनजीवन में दया, दान, दाक्षिण्य तथा शौर्य आदि गुण वहीं सम्भव होते हैं जहां आत्मा होती है। यह भी कहा जा सकता है कि उपर्युक्त गुणों की सम्भावना जीवित व्यक्ति में ही की जा सकती है मृत व्यक्ति में नहीं ठीक उसी प्रकार कविता में भी ओज, प्रसाद और माधुर्य गुण वहीं होते हैं जहां पर कि काव्यात्माभूत रसों की सम्भावना होती है।

आत्मा के शौर्यादि गुणों की भांति, काव्य के माधुर्यादि गुण रस के उत्कर्षाधायक हैं अतः काव्य में उत्कृष्टता के हेतु होते हैं। इस विषय में साहित्यदर्पणकार का मत है कि जैसे वीरता आदि गुणों से व्यक्ति की आत्मा का प्रकर्ष द्योतित होता है तथा व्यक्ति उत्तम कहा जाता है, उसी प्रकार गुणों के रहने से काव्य में भी उत्कर्ष आ जाता है[1]।

आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र में गुणों का प्राचीनतम उल्लेख मिलता है। इसी परम्परा में आगे चलकर आचार्य वामन ने शब्द और अर्थ का भेद करते हुए 10 शब्दगुणों तथा 10 अर्थगुणों का व्याख्यान प्रस्तुत किया[2]।

---

1. रसस्यांगित्वमाप्तस्य धर्माः शौर्यादयो यथा।
   गुणाः -
   यथा ह्यात्मनोऽंगित्वमाप्तस्यात्मन उत्कर्षहेतुत्वाच्छौर्यादयो गुण शब्दवाच्याः तथा काव्येऽंगित्वमाप्तस्य रसस्य धर्माः स्वरूपविशेषा माधुर्यादयोऽपि स्वसमर्पकपद-संदर्भस्य काव्य व्यपदेशस्यौपयिकानुगुण्यभाज इत्यर्थः। -साहित्यदर्पणः 8/1 वृत्ति
2. ओजःप्रसादश्लेषसमतासमाधिमाधुर्यसौकुमार्योदारतार्थव्यक्तिकान्तयो बन्धगुणाः।
   -काव्यालंकारसूत्र 3/1/4

11वीं शती में राजा भोज ने 24 गुणों तक की व्याख्या कर डाली किन्तु आचार्य भामह ने त्रिगुणवाद की स्थापना की जिसका अनुवर्तन काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट ने किया। मम्मट ने वामन के द्वारा व्याख्यात अनेक गुणों का अन्तर्भाव 3 ही गुणों में कर दिया तथा अनेक गुणों को किसी अन्य गुण का अभाव रूप मानते हुए उनकी पृथक सत्ता को अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार उन्होंने काव्य में मात्र 3 ही गुणों को स्वीकार किया है[1]। आचार्य मम्मटकी ही भांति आचार्य विश्वनाथ भी 3 ही गुणों की स्थिति मानते हैं[2] माधुर्य, ओज तथा प्रसाद इन तीनों गुणों के रचना, वर्ण तथा समास व्यंजक होते हैं[3]।

1. <u>माधुर्य गुण</u>- काव्य में त्रिगुण की ही सत्ता मानने वाले आचार्य भामह प्रथम विद्वान हैं। उन्होंने माधुर्य गुण का लक्षण इस प्रकार किया है- "श्रव्यं नातिसमस्तार्थं काव्यं मधुरमिष्यते[4]।" अर्थात् अधिक समस्त पदों से रहित, कर्णप्रिय श्रव्य काव्य माधुर्ययुक्त कहलाता है। इसके अनुसार श्रव्यत्व माधुर्य गुण का लक्षण हुआ। किन्तु आचार्य मम्मट इस लक्षण को सम्पूर्ण नहीं समझते। उनके अनुसार श्रव्यत्व तो ओज और प्रसाद गुण में भी होता है। उनके अनुसार द्रुती भाव का कारण श्रृंगार में रहने वाला जो आह्लाद स्वरूपत्व है, वह माधुर्य नामक गुण है।

- -

1. माधुर्यौजः प्रसादाख्यास्त्रयस्ते न पुनर्दश। - काव्यप्रकाशः 8/68
   केचिदन्तर्भवन्त्येषु दोषत्यागात्परे श्रिताः।
   अन्ये भजन्ति दोषत्वं कुत्रचिन्न ततो दश।। - वही 8/72
2. माधुर्यमोजोऽथ प्रसाद इति ते त्रिधा। - साहित्यदर्पणः 8/1
3. वर्णाः समासो रचना तेषां व्यंजकतामिताः। - काव्यप्रकाशः 8/73
4. भामह - काव्यालंकार 2/3

माधुर्यगुण व्यंजक रचना वर्ण आदि के विषय में आचार्य मम्मट का मत है -"टवर्ग को छोड़कर शेष स्पर्श व्यंजन अपने-अपने वर्ग के अन्तिम वर्णों से युक्त होकर ह्रस्व अ से युक्त रकार और णकार तथा समास रहित अथवा स्वल्प समास वाली रचना माधुर्य गुण की व्यंजक होती है[1]। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कोमल कान्त पदावली वाली रचना माधुर्य गुण की व्यंजक होती है ।

2. ओजोगुण- इस गुण के वर्ण, समास एवं रचना संघटना के विषय में आचार्य मम्मट तथा आचार्य विश्वनाथ दोनों का ही मत समान है । इनके अनुसार कवर्ग चवर्ग, तवर्ग तथा पवर्ग व चारों वर्गों के प्रथम और तृतीय वर्णों के साथ क्रमशः द्वितीय और चतुर्थ वर्णों का नैरन्तर्य से प्रयोग, रेफ के साथ जुड़कर किसी वर्ण का प्रयोग एवं तुल्य वर्णों का योग, ण को छोड़कर शेष टवर्ग, श, ष वर्ण तथा दीर्घ समास वाले उद्धत गुम्फन ओजोगुण के व्यंजक होते हैं[2]।

सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि ओजस् गुण वहाँ होता है जहाँ कठोर वर्णों से युक्त पदावली तथा दीर्घसमासपूर्ण विकट रचना हो ।

3. प्रसाद गुण - प्रसाद गुण वास्तव में समस्त रसों एवं रचनाओं का साधारण धर्म होता है । इसके विषय में मम्मटाचार्य का मत है कि जिस रचना के द्वारा

---

1. मूर्ध्नि वर्गान्त्यगाः स्पर्शा अटवर्गा रणौ लघू ।
   अवृत्तिर्मध्यवृत्तिर्वा माधुर्ये घटना तथा ।। - काव्यप्रकाशः 8/74
2. योग आद्यतृतीयाभ्यामन्त्ययो रेण तुल्ययोः ।
   टादिः शषौ वृत्तिदैर्घ्यं गुम्फ उद्धत ओजसि ।। - वही 8/75
   वर्गस्याद्यतृतीयाभ्यां युक्तौ वर्णौ तदन्तिमौ ।
   उपर्यधो द्वयोर्वा सरेफौ टठडढैः सह ।
   शकारश्च षकारश्च तस्य व्यंजकतांगताः ।। - साहित्यदर्पणः 8/5, 6

श्रवण मात्र से अर्थ की प्रतीति हो जाए वह समस्त वर्णों, समासों तथा रचनाओं में रहने वाला गुण प्रसाद गुण माना जाता है[1]।

ये गुण वास्तव में काव्यात्मभूत रस में होते हैं किन्तु उपचार से इन्हें शब्दार्थ में स्थित कहा जाता है । जैसे शौर्यादि गुण वस्तुतः आत्मा के गुण होते हैं किन्तु शरीर में इन गुणों की औपचारिक स्थिति मानी जाती है[2]।

अद्भुतदर्पणम् में गुणों की स्थिति

अद्भुतदर्पणम् नाटक में इन तीनों ही गुणों का हम प्रभूत मात्रा में प्रयोग पाते हैं । उदाहरणार्थ द्वितीय अंक के 28वें श्लोक में श्रीराम द्वारा अभिव्यक्त निम्नलिखित पद्य में कोमल वर्णों का बाहुल्य माधुर्य गुण को साकार करता है-

आभिः प्रवृत्तिभिरतावक्ता दितैव
हन्त प्रियस्य सुहृदः पुनरीक्षणाशा ।
किन्तु स्वयं भवति मे मनसः प्रसादो
यद्वा स भाविनि जयेऽपि भवेन्निमित्तम्[3]।।

इसी प्रकार 7वें अंक का निम्नलिखित श्लोक अपनी कठोर पदावली के कारण ओजोगुण का परिचायक है -

तुलितचलितनुन्नकैलासमूलस्फुटा बिला-
कणगुणितज्याघातांकां वहन्भुजविंशतिम् ।
चिरधृतरणक्रीडाकण्डूभरानुगुणं जग-
त्त्रयजयमदाविष्टश्चेष्टिष्यते दशकन्धरः[4]।।

---

1. श्रुतिमात्रेण शब्दात्तु येनार्थप्रत्ययो भवेत् ।
साधारणः समग्राणां स प्रसादो गुणो मतः ।। - काव्यप्रकाशः 8/76
2. गुणवृत्त्या पुनस्तेषां वृत्तिः शब्दार्थयोर्मता ।। - वही 8/71

इसी प्रकार निम्नलिखित श्लोक में माधुर्य और ओजस् का संगम होने के कारण प्रसाद गुण प्रत्यक्ष है-

भृगोरेषा कन्या प्रथममथ दुग्धाब्धितनया
विदेहानां नेतुस्तदनु यजनक्षेत्र जनिता ।
अनन्या ते विष्णोस्त्रिजगदवनायावतरणे-
ष्वनु त्वामप्येषा स्वयमवतरत्येव नियता[1] ।।

इस प्रकार स्थालीपुलाक न्याय से यह स्पष्ट हो जाता है कि अद्भुतदर्पणकार महाकवि महादेव काव्यशास्त्रीय गुणपक्ष के एक श्रेष्ठ प्रयोक्ता हैं ।

---

1. अद्भुतदर्पणम् 10/15

अलंकारों की अवधारणा

काव्य में अलंकारों का अपना विशिष्ट महत्व है । "अलंक्रियते अनेन इति अलंकारः " अर्थात् जिसके द्वारा [शब्द एवं अर्थ का] अलंकरण किया जाय वही अलंकार है । अलंकार शब्दार्थ में न केवल सौन्दर्य का आधान करते हैं अपितु उनमें चमत्कार भी उत्पन्न करने में सहायक होते हैं । यद्यपि काव्य की आत्मा के रूप में इनका महत्व नहीं है, तथापि काव्यपुरुष के शब्दार्थरूप शरीर के बाह्य सौन्दर्यवर्धन के साथ ही ये काव्यात्मभूत रस का भी पोषण करते हैं । यही कारण है कि अलंकारतत्त्वज्ञ आचार्य दण्डी ने काव्यादर्श में कहा है -

काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते[1]।।

अर्थात् काव्य में शोभा उत्पन्न करने वाले धर्मों को ही अलंकार कहते हैं ।

आचार्य वामन ने "सौन्दर्यमलंकारः[2]" कहकर काव्यशास्त्रगत समस्त सौन्दर्य को अलंकार शब्द से ग्रहण किया है । उनके अनुसार दोषों के परित्याग तथा गुणों और अलंकारों के उपादान से काव्य में सौन्दर्यरूप अलंकार की सृष्टि होती है[3]।

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ के अनुसार, अंगदादि आभूषण जिस प्रकार शरीर के शोभावर्धक होते हैं, उसी प्रकार साहित्य में अलंकार शब्दार्थ के शोभावर्धक तथा रसादि के उपकारक हैं[4]।

---

1. काव्यादर्श 2/1
2. काव्यालंकारसूत्र 1/2
3. स दोषगुणालंकार-हानादानाभ्याम्

   - काव्यालंकारसूत्र 1/3
4. शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः ।

   रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत् ।।

   - साहित्यदर्पणः 10/1

अलंकारों का उद्भव

यद्यपि अलंकारशास्त्र का उद्भव बहुत बाद में हुआ, तथापि काव्योत्कर्षक अलंकारादि धर्मों का अत्यन्त प्राचीन काल से ही प्रयोग किया जाता रहा है। भारतीय आर्यभाषा के आदि ग्रन्थ ऋग्वेद में भी अनेक स्थलों पर अलंकारों का चमत्कार परिलक्षित होता है। श्री पी.वी. काणे के अनुसार यद्यपि अलंकारों का शास्त्रीय रूप में विवेचन वैदिक वाङ्मय में कहीं नहीं हुआ है, तथापि उपमा, अतिशयोक्ति, व्यतिरेक तथा उत्प्रेक्षा आदि विविध अलंकार वेदों में दृष्टिगोचर होते हैं[1]। डा. राजेन्द्र मिश्र के शब्दों में - " ऋग्वेद में अरङ्कृति शब्द का प्रयोग भी मिलता है जो निश्चय ही "रलयोरभेदः" के कारण अलंकृति शब्द का ही पर्याय है[2]।"

अनेक वैदिक ऋचाओं में अलंकृत काव्य भाषा में उच्चकोटि के काव्य का दर्शन होता है। इस संदर्भ में ऋग्वेद की "उषा स्तुति" सम्बन्धी निम्न मन्त्र में उपमालंकार का प्रयोग द्रष्टव्य है -

अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम्।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव निरिणीते अप्सु[3]।।

वैदिक युग के पश्चात्, निरन्तर अलंकार विषयक चर्चाएं की जाती रहीं। इसी संदर्भ में परवर्ती युग के आचार्यों - यास्क[4], महर्षि पाणिनि[5], आचार्य भरत[6] तथा

- -

1. पी.वी. काणे - हिस्ट्री ऑफ संस्कृत पोएटिक्स पृ. 314, 315
2. डा. राजेन्द्र मिश्र -छन्दोलंकारसौरभम् पृ. 53
3. ऋग्वेद 1/124/9
4. उपमा यत् अतत् तत्सदृशमिति गार्ग्यः। तदासां कर्म ज्यायसा वा गुणेन प्रख्यात-
   तमेन वा कनीयांसं वा प्रख्यातं वोपमीयते। - निरुक्त 2/13
5. तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्यतरस्याम् ..... - अष्टाध्यायी 2/3/72
6. उपमानानि सामान्य वचनैः ...... - वही 2/1/55
   उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे..... - वही 2/1/56

शेष अगिम पृष्ठ पर

महाभाष्यकार पतंजलि [1] के नाम उल्लेखनीय हैं । इन आचार्यों का समय क्रमशः ईसापूर्व सप्तम, पंचम, तृतीय, चतुर्थ एवं द्वितीय शतक माना जाता है ।

द्वितीय शताब्दि (150 ई.) में उट्टंकित, शक - क्षत्रप रुद्रदामन के गिरनार शिलालेख जूनागढ़ से भी विदित होता है कि उस समय तक काव्य के गद्य एवं पद्य दो भेद माने जाने लगे थे, इन दोनों का अलंकृत होना आवश्यक समझा जाता था ।

इसके अनन्तर ही अलंकारशास्त्र के स्वतंत्र चिन्तन एवं विवेचन का प्रौढ़ युग प्रारम्भ हो जाता है, जिसमें आचार्य भामह, दण्डी, उद्भट, वामन, रुद्रट, मम्मट एवं आचार्य विश्वनाथ के महनीय ग्रन्थ लिखे गये ।

अलंकारों का वर्गीकरण

अलंकारों का प्रथम वर्गीकरण आचार्य भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में किया है । आचार्य भरत के उपमा, रूपक, दीपक तथा यमक ये चार अलंकार ही क्रमशः बढ़ते-बढ़ते 17वीं शती ई. तक 125 संख्या तक पहुंच गए ।

अलंकारों का द्विधा वर्गीकरण सर्वप्रथम आचार्य रुद्रट ने किया है । ये अलंकारों को शब्दालंकार तथा अर्थालंकार इन दो भागों में विभक्त करते हैं । प्रायः समस्त अलंकार शास्त्रियों ने इसी विभाजन को स्वीकार करते हुए अलंकारों का विवेचन प्रस्तुत किया है ।

शब्दालंकार- शब्दालंकार का एकमात्र लक्षण है, " शब्द परिवृत्यसहत्व" अर्थात् शब्द के परिवर्तन को सहन न करना । जो अलंकार शब्दविशेष की उपस्थिति में ही रहते हैं, उस शब्द का पर्यायवाची शब्द रखने मात्र से ही नष्ट हो जाते हैं वे शब्दालंकार हैं।

---

6. आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र के 17वें अध्याय में उपमा, रूपक, दीपक तथा यमक इन 4 अलंकारों का विशद निरूपण है ।

1. तत्समीपे यत् नात्यन्ताय मिमीते तद् उपमानं गौरिव गवय इति ।

यमक आदि अलंकार इसी प्रकार के हैं ।

अर्थालंकार- अर्थालंकार में शब्द वैशिष्ट्य का महत्त्व नहीं होता । इसमें अर्थकृत सौन्दर्य की ही प्रमुखता होती है । इसमें यदि किसी शब्द विशेष को हटाकर उसके स्थान पर समानार्थी शब्द भी रख दिया जाए तो अलंकारत्व की हानि नहीं होती । उपमा, रूपक आदि इसी श्रेणी के अलंकार हैं ।

अब इसी परिप्रेक्ष्य में अद्भुतदर्पणम् नाटक में आए अलंकारों की व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है ।

अद्भुतदर्पणम् में प्रमुख अलंकारों की व्याख्या

संवादात्मक प्रवृत्ति प्रधान होने के कारण नाटकों में पात्रों के कथोपकथन पर ही सामान्यतः अधिक प्रभाव दिया जाता है । कवि महादेव की कृति अद्भुतदर्पणम् में नाट्यशैली, जहाँ संवादों में सीमित होने के साथ प्रभावशाली रही है, वहीं वह अलंकारिक जटिलताओं से सामान्यतया मुक्त ही प्रतीत होती है । विशेष रूप से शब्दालंकार, जैसे- यमक या श्लेष से तो वह दूर ही प्रतीत होती है । यहाँ तक कि सामान्य रूप से भावविन्यास में रचना की स्वाभाविकता के साथ प्रयुक्त होने वाला अनुप्रास अलंकार भी इस नाटक में प्राप्त नहीं होता ।

जहाँ तक प्रश्न अर्थालंकारों का है, इनका भी प्रवेश इस नाटक की स्वाभाविक गति में कहीं-कहीं ही हुआ है । वस्तुतः कवि अपने भावों के प्रवाह में कहीं पर भी अलंकारों को प्रस्तुत करने के लिए लालायित नहीं प्रतीत होते । फिर भी जो अलंकार जहाँ कहीं भी प्रस्तुत हुए हैं वे अपनी छटा अलग ही विकीर्ण करते हैं, यथा-

स्वभावोक्ति अलंकार- कविमात्रवेद्य किसी भी वस्तु का स्वाभाविक वर्णन अर्थात् किसी भी वस्तु के साधारण धर्म का वर्णन ही स्वभावोक्ति अलंकार होता है । काव्यप्रकाश में इस अलंकार का लक्षण करते हुए कहा गया है - स्वभावोक्ति वह अलंकार है जहाँ

बालक आदि की स्व आश्रित क्रिया तथा रूप आदि का वर्णन किया जाता है[1]। इस परिप्रेक्ष्य में अद्भुतदर्पणम् का प्रस्तुत पद्य दर्शनीय है -

उत्प्लुत्य धावनमकाण्डभयापसर्पः
पुच्छावधूतिरसकृद्भ्रुकुटिक्रिया च ।
इत्यादि शिक्षितमभूदखिलं कथंचि-
देका तु सा किलिकिला मम दुर्ग्रहैव[2]।।

यहां पर शम्बर के द्वारा वानर की स्वाभाविक क्रियाओं का वर्णन किया गया है अतः यहां स्वभावोक्ति अलंकार है ।

उपमा अलंकार - उपमा अलंकार से अलंकृत अनेकशः प्रसंग इस नाटक में प्राप्त होते हैं । नाटक के सप्तम अंक का प्रस्तुत श्लोक पूर्णोपमा अलंकार का एक उत्कृष्ट उदाहरण है-

बाणौघव्यतिकरवह्निदह्यमाना-
द्यामुह्यन्दशवदनः पुरादमुष्मात् ।
निर्यातुं द्रुतमवशः स्वयं दवाग्नि-
व्यालीढादिव गिरिकुंजतः शशाङ्कः[3]।।

उपमान तथा उपमेय का समान धर्म के साथ सम्बन्ध वर्णन ही उपमा है । काव्यप्रकाश में कहा गया है," साधर्म्यमुपमा भेदे" उपमानोपमेययोरेव न तु कार्यकारणादिकयोः साधर्म्यं भवतीति तयोरेव समानेन धर्मेण सम्बन्ध उपमा । भेदग्रहणमनन्वयव्यवच्छेदाय[4]।

- -

1. स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम् ।
-काव्यप्रकाशः 10/111

2. अद्भुतदर्पणम् 1/22

3. वही 7/15

4. काव्यप्रकाशः 10/87 वृत्ति सहित

इस आधार पर इस पद्य में उपमेय है, बाणों के समूह के प्रहार से जलाई गई लंकापुरी से व्याकुल होकर निकलने वाला दशकन्धर तथा उपमान है, दवाग्नि से व्याकुल, गिरिकुंज से विवश होकर निकलने वाला सिंह । यहाँ साधारण धर्म है, दह्यमान पुर से विवश होकर निकलना तथा दवाग्नि से व्याप्त गिरिकुंज से विवश होकर निकलना । "इव" है वाचक शब्द । इस प्रकार यहाँ पूर्णोपमालंकार है ।

इसी प्रकार उपमा के कई अन्य उदाहरण भी नाटक में प्राप्त होते हैं । एक स्थान पर कवि ने प्रतिपत्तिशून्य तथा मन्दपदक्षेप के साथ चलने वाले श्रीराम की उपमा, मन्दगति से चलने वाले गजराज से दी है -

मन्दःपदानि हि ददत्प्रतिपत्तिशून्या-
न्यादीपितो हृदि रुषा मुहुरुत्कयेव ।
क्षुद्रैरनुक्षणकदर्थितयापि गत्या
प्राप्तव्यदेशमिभराडिव नीत एव[1] ।।

दृष्टान्त अलंकार - मायावी शम्बर के द्वारा महाप्रतापी, परमशक्तिमान सुग्रीव के, सामान्य राक्षसी सेना के द्वारा घेरकर मार दिये जाने की सूचना को लेकर लक्ष्मण द्वारा कहा गया यह श्लोक जहाँ एक व्यंग्य प्रस्तुत करता है, वहीं एक प्रभावी दृष्टान्त अलंकार को भी जन्म देता है । यहाँ वे असूया के साथ राम से कहते हैं कि यदि बहुत से शत्रुओं के द्वारा मिलकर सत्य ही मित्र सुग्रीव का वध कर दिया गया है तो यह ऐसा ही होगा जैसे असंख्य चीटियों ने मिलकर मन्दराचल को खा लिया है -

सत्यं बहुभिरेकाकी वयस्यो निहतः परैः ।
अद्भुतस्व मन्थानगिरिं पर्यलुम्पन्पिपीलिकाः[2] ।।

- -

1. अद्भुतदर्पणम् 3/1
2. वही 2/14

काव्यप्रकाश में दृष्टान्त अलंकार का लक्षण करते हुए कहा गया है- दृष्टान्त अलंकार वह है जहाँ [दोनों वाक्यों में] इन सब [साधारणधर्म आदि] का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होता है। अर्थात् जहाँ साधारणधर्म आदि का प्रामाण्य - निश्चय गृहीत हो जाता है[1]।

इस श्लोक में उपमेय वाक्य, "सत्यं बहुभिरेकाकी वयस्यो निहतः परैः" तथा उपमान वाक्य,"श्रद्धत्स्व मन्थानगिरिं-पर्यलुम्पनन्पिपीलिकाः" एवं इनके साधारण धर्म "निहतः" तथा "पर्यलुम्पन्" में भी बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है। अर्थात ये हैं तो पृथक्-पृथक् किन्तु इनमें सादृश्य है तथा यह साम्य भी प्रतीयमान है। अतः यहाँ एक मनोहारी दृष्टान्त अलंकार की सृष्टि होती है।

उदात्त अलंकार - नाटक में उदात्त अलंकार का भी स्थान-स्थान पर सुन्दर प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। उदात्त अलंकार वह है जहाँ किसी वस्तु की समृद्धि का वर्णन होता है। काव्यप्रकाश में समृद्धि के लिये सम्पत् शब्द का प्रयोग है। इस विषय में इसकी वृत्ति में कहा गया है, सम्पत् अर्थात वस्तु का समृद्धि के साथ सम्बन्ध प्रदर्शित करना[2]। इस संदर्भ में नाटक के चतुर्थ अंक का प्रस्तुत पद्य दर्शनीय है-

न हेषारध्यानां न खुरपुटकोटीपटपटो
न मौर्वीनिर्घोषो न रथचरणक्रेंकितमपि।
अपि प्रत्यासन्नं वदति युवराजं पलगमा-
मसौ विष्वङ्मूर्च्छन्भुजगशरफूत्कारपवनः[3]॥

---

1. दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम्॥
   एतेषां साधारणधर्मादीनाम् दृष्टोऽन्तो निश्चयो यत्र स दृष्टान्तः।
   -काव्यप्रकाशः 10/102 वृत्ति सहित

2. उदात्तं वस्तुनः सम्पत्।
   सम्पत् समृद्धियोगः। - वही 10/115 वृत्ति सहित

3. अद्भुतदर्पणम् 4/14

यहां श्रीराम, मेघनाद की आयोधन समृद्धि का वर्णन करते हुए कहते हैं कि न इसके घोड़ों की हिनहिनाहट सुनाई दे रही है,न ही उनके खुरों की पटपटाहट, न प्रत्यंचा का निर्घोष सुनाई पड़ रहा है,न ही रथ का शब्द, केवल संसार को मूर्च्छित करने वाले सर्पों की फूत्कार से उत्पन्न वायु ही राक्षस युवराज के सामीप्य को द्योतित कर रही है । इस प्रकार यहां मेघनाद के आयोधन समृद्धि का वर्णन होने से उदात्त अलंकार स्पष्ट है ।

<u>प्रतिवस्तूपमा अलंकार</u> - इसी प्रकार प्रतिवस्तूपमा अलंकार का भी प्रयोग कवि ने एक अच्छे प्रकरण में किया है, जहां सुग्रीव अपने निधन की असत्य सूचना से व्याकुल श्रीराम के मर्माहत हृदय को सान्त्वना देते हुए, उनके महान व्यक्तित्व के सम्मुख अपनी लघुता को व्यक्त करते हैं । यहां वे कहते हैं कि सेवकों के बिना भी महापुरुषों की कार्यप्रक्रिया तो आगे चलती ही रहती है, धूम के समाप्त हो जाने पर भी अग्नि की शुष्क वन जलाने की प्रक्रिया तो रुकती नहीं -

> अनुचरविरहेऽपि सतामात्मौपयिकी क्रिया चलत्येव ।
> नहि धूमविरतिखिन्नो विरमति शुष्कवनदाहतो वह्निः[1] ।।

प्रतिवस्तूपमा वहां होती है, जहां एक ही साधारण धर्म का उपमेय तथा उपमान वाक्य में भिन्न - भिन्न शब्दों द्वारा कथन किया जाता है[2] । यह साम्य वास्तव में प्रतीयमान होता है वाच्य नहीं । इस श्लोक के उपमेय तथा उपमान वाक्य में साधारण धर्म "विरह", और ,"विरति" समान होने पर भी भिन्न शब्दों द्वारा कथित हैं । इस प्रकार यहां प्रतिवस्तूपमालंकार अलंकृत हो रहा है ।

<u>अर्थान्तरन्यास अलंकार</u> - अर्थान्तरन्यास वह अलंकार है, जहां साधर्म्य अथवा वैधर्म्य के विचार से सामान्य या विशेष वस्तु का उससे भिन्न के द्वारा समर्थन किया जाता

---

1. अद्भुतदर्पणम् 4/7
2. प्रतिवस्तूपमा तु सा ।।
   सामान्यस्य द्विरेकस्य यत्र वाक्यद्वये स्थितिः ।
   - काव्यप्रकाशः 10/101 , 102

है[1] ।

इस लक्षण के अनुसार अद्भुतदर्पण के तृतीय अंक में अर्थान्तरन्यास का एक उत्कृष्ट उदाहरण दृष्टिगत होता है । यहाँ श्रीराम, द्वारामाया से अंगद का रूप धारण कर अविनीत आचरण करने वाले राक्षस शम्बर को वास्तविक अंगद समझकर विचार करते हैं कि यह तो अत्यन्त विनीत आचरण का अभ्यस्त था, किन्तु आज यह जो कुछ अपूर्व ही चेष्टा कर रहा है वह इसलिये, क्योंकि कार्यार्थी जन पहले तो मौन रहते हैं किन्तु समय आने पर वे बदल जाते हैं -

अभ्यस्त एष बहुशोऽपि विनीतवृत्ति-
रद्य त्वपूर्व इव हन्त विचेष्टते यत् ।
तज्जोषमेव सकलं हृदि मर्षयन्तः
कार्यार्थिनो हि समये सति विक्रियन्ते[1] ।।

इस श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार की पुष्टि हो रही है, क्योंकि अंगद के व्यवहार की विशेषता को सामान्य कार्यार्थी की विक्रिया के माध्यम से समर्थित किया गया है ।

परिणाम अलंकार - इस नाटक में परिणाम अलंकार का भी एक रूप दर्शनीय है । किसी प्रसंग में विद्युज्जिह्व अशोकवाटिका में प्रवेश करता हुआ, हनुमान् द्वारा भग्न किये हुए तथा मार्ग में पड़े हुए वृक्षों से मार्गबाधा उपस्थित हो जाने के कारण कहता है कि ये वृक्ष इस प्रकार मार्ग में अवरोध उपस्थित कर रहे हैं, जैसे मृत कुम्भकर्ण मार्ग में बाधक होता है । उदाहरणार्थ -

भग्नोऽत्र चैत्यप्राकारो वृक्षैरामूलितैर्वृतः ।
कुरुते रोधमभितः कुम्भकर्णो यथा हतः [2] ।।

यहाँ आरोप्यमाण, विषयी मृत कुम्भकर्ण से बाधा सम्भव प्रतीत नहीं होती अतः मृत

---

1. अद्भुतदर्पणम् 3/13
2. वही 5/3।

शब्द यहां पर "शयित" अर्थात् शयन करते हुए कुम्भकर्ण के अर्थ में परिणित हो जाता है । जैसा कि कुवलयानन्द में प्रस्तुत, जयदेव कृत चन्द्रालोक के लक्षण से इसकी पुष्टि होती है, यथा-

परिणामः क्रियार्थश्चेद्विषयी विषयात्मना ।
प्रसन्नेन दृगब्जेन वीक्षते मदिरेक्षणा[1] ।।

स्मरण अलंकार - स्मरण अलंकार के विषय में काव्यप्रकाशकार कहते हैं कि स्मरण वह अलंकार है जहां [अनुभूत] वस्तु के समान किसी वस्तु के उपलब्ध होने पर पूर्वानुभूत प्रकार से उस वस्तु की स्मृति होती है[2]। इस लक्षण के आधार पर स्मरण अलंकार की अद्भुतदर्पणम् में उपलब्धि के लिये नाटक के पंचम अंक का प्रस्तुत पद्य दर्शनीय है - मयः - मातामह, कथं न स्मरसि ।

नन्वेतत्तटमर्णवस्य तदिदं कूटं त्रिकूटस्य च
द्वारं चापि तदेतदेव विकटं लंकापुरस्योत्तरम् ।
देशेष्वेषु जवप्रणुन्नगरुडेनाविद्धचंचायुधे -
नार्यौ मालिसुमालिनौ युगपदेवासादितौ विष्णुना[3] ।।

यहां पर श्रीराम के युद्धकौशल को देखकर माल्यवान् तथा मय को देव-दानव युद्ध का स्मरण हो आता है । इसी संदर्भ में मय को विष्णु के द्वारा मालि और सुमालि नामक दैत्यों के वध का भी स्मरण हो आता है ।

जिस समय का यह वर्णन है, उस समय श्रीराम ने समुद्रतट पर स्थित त्रिकूट शिखरस्थ लंकापुर के उत्तर गोपुर की ओर ही युद्ध करते हुए, मेघनाद के

- -

1. अप्पय दीक्षित कृत कुवलयानन्द पृष्ठ 21
2. यथाऽनुभवमर्थस्य दृष्टे तत्सदृशे स्मृतिः ।
   स्मरणम्-
   -काव्यप्रकाशः 10/132
3. अद्भुतदर्पणम् 5/6

नागास्त्रों को नष्ट किया । इस सारी परिस्थिति को देखकर, मय को इन्हीं परिस्थितियों में विष्णु के द्वारा पराजित मालि तथा सुमालि नामक दानवों का स्मरण हो आया अतः यहां स्मरण अलंकार है ।

समुच्चय अलंकार – दशम अंक के एक पद्य में समुच्चय अलंकार का भी सुन्दर प्रयोग है । यहां सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण होने पर श्रीराम सहर्ष कहते हैं कि सौभाग्य से आज मेरा उत्संग सीता से पूर्ण है, सौभाग्य से ही अयोध्या मेरे प्रवेश से पूर्ण है साथ ही मेरी माताओं, मेरे मन्त्रियों, बान्धवों तथा भाइयों की प्रार्थना भी सम्यक् रूप से सफल हो गई है–

दिष्ट्योत्संगः सीतया मेऽद्य पूर्णो दिष्ट्यायोध्या मत्प्रवेशेन पूर्णा ।
मातृणां मे मन्त्रिणां बान्धवानां भ्रातृणां च प्रार्थना साधु पूर्णा[1] ।।

समुच्चय अलंकार वह होता है जहां प्रस्तुत कार्य की सिद्धि के एक साधक के रहते, अन्य कारण का भी होना कहा जाता है[2]। यहां पर माताओं, मन्त्रियों, बान्धवों तथा भाइयों की प्रार्थना का पूर्ण सफल होना ही समस्त पूर्णता को व्यक्त कर रहा है, फिर भी सीता से उत्संग का पूर्ण होना तथा राम के प्रवेश से अयोध्या का पूर्ण होना आदि अन्य कारणों का भी कथन किये जाने से यहां पर समुच्चय अलंकार है ।

पर्यायोक्ति अलंकार– विवक्षित अर्थात् वाच्य अर्थ का प्रकारान्तर से जहां कथन होता है वहां पर्यायोक्ति अलंकार होता है । काव्यप्रकाश में इसका लक्षण करते हुए कहा गया है – पर्यायोक्त वह अलंकार है जहां वाच्य वाचक भाव संबंध के बिना ही वाच्यार्थ का प्रतिपादन होता है[3]।

---

1. अद्भुतदर्पणम् 10/28
2. तत्सिद्धिहेतावेकस्मिन् यत्रान्यत्तत्करं भवेत् ।
   समुच्चयोऽसौ – काव्यप्रकाशः 10/126
3. पर्यायोक्तं विना वाच्यवाचकत्वेन यद्वचः ।
   – काव्यप्रकाशः 10/115

अद्भुतदर्पणम् 1/19 श्लोक में पर्यायोक्ति का स्पष्ट दर्शन होता है । यहां राम का कथन कि मैंने शस्त्रयुद्ध में कर्कश भुजाओं वाले परशुराम को देखा, द्वन्द युद्ध के एकमात्र व्रती अद्भुत वेग वाले कबन्ध को देखा तथा पर्वत की वर्षा करके दुर्दिन सा उत्पन्न कर देने वाले बालि को देखा, अब इन मायावी राक्षसों को भी देख लूंगा -

दृष्टः शस्त्रविमर्दनिर्दयभुजो रामः कुठरायुधः
दृष्टो योजनबाहुरद्भुतजवद्वन्द्वाहवेकव्रती।
दृष्टः पर्वतवृष्टिदुर्दिनरणच्छलाघी च बाली मया
द्रष्टव्याः खलु सांप्रतं पुनरिमे मायाविनो राक्षसाः [1]।।

इस पद्य की प्रत्येक पंक्ति में आए दृष्टः शब्द का वाच्यार्थ वास्तव में शब्दार्थ से भिन्न है । परशुराम के सम्बन्ध में दृष्टः का अर्थ है, उनका मान भंग किया, इसी प्रकार कबन्ध के सम्बन्ध में दृष्टः का अर्थ है, उसका वध किया, इसी प्रकार बालि के सम्बन्ध में दृष्टः का अर्थ हुआ महान पराक्रमी बाली को भी मार गिराया तथा अन्तिम पंक्ति में "मायाविनो राक्षसाः द्रष्टव्याः " का अर्थ हुआ मायावी राक्षसों को भी समाप्त कर देंगे ।

इस प्रकार यहां प्रकारान्तर से वाच्यार्थ का कथन होने से पर्यायोक्त अलंकार है ।

<u>सहोक्ति अलंकार</u> - .. जहां एक अर्थ का वाचक पद, "सह" शब्द के अर्थ सामर्थ्य से दोनों अर्थों का बोधक होता है वहां सहोक्ति अलंकार होता है[2]। इस आधार पर इस नाटक के दशम अंक का प्रस्तुत पद्य सहोक्ति अलंकार का उत्कृष्ट उदाहरण है-

---

1. अद्भुतदर्पणम् 1/19
2. सा सहोक्तिः सहार्थस्य बलादेकं द्विवाचकम् ।।
   एकार्थाभिधायकमपि सहार्थबलात् यत् उभयस्याप्यवगमकं सा सहोक्तिः ।
   - काव्यप्रकाशः 10/112 वृत्ति सहित

साकं वारिधिना दशाननकृतस्तीर्णो निकारो मया
साकं मे विजयश्रिया जनकजा लब्धानवधा पुनः ।
साकं मामुपसेवते मदनुजैः साकेतराज्यस्थितिः
साकं बन्धुसुहृज्जनैरिह मया प्राप्तश्चिरात्संपदः [1]।।

<u>उत्प्रेक्षा अलंकार</u>- उत्प्रेक्षा अलंकार का एक उत्कृष्ट उदाहरण नाटक का प्रथम नान्दी श्लोक ही है-

श्रेयः श्रियो रसज्ञो ददातु पुरुषोत्तमो भवताम् ।
जागर्ति यः पयोधौ तादृशतरुणी जिघृक्षयेव पुनः[2]।।

यहां भगवान विष्णु का लक्ष्मी के आवास समुद्र में निवास करना कवि की दृष्टि में इसलिये है कि मानो विष्णु वैसी ही सुन्दर एक अन्य तरुणी की लालसा से क्षीरसागर में जागृत रहकर स्थित हैं । इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार का भाव दर्शक एवं पाठक के हृदय में एक अलग ही मनोरंजन प्रस्तुत करता है ।

जब वर्णनीय वस्तु में सदृश वस्तु की सम्भावना की जाती है, तो उत्प्रेक्षा अलंकार होता है[3]। यहां पर, क्षीरसागर में श्री रसज्ञ विष्णु का जागृत रहना वर्णनीय है, तथा पुनः श्री के समान ही तरुणी की लालसा से जागृत रहने की इसमें सम्भावना की गई है । अतः यहां उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

सामान्यतया नाटक के समस्त प्रकरण में अलंकारों के रत्न बिखरे पड़े हैं । यह स्वाभाविक भी है कि कवि अपने प्रत्येक पद्य में जिस किसी भी भाव को व्यक्त करता है, वह किसी न किसी रूप में अलंकृत होता ही है । यहां पर उनमें से कुछ अलंकारों को प्रस्तुत करके नाटककार की काव्यरचना में अलंकृत वैशिष्ट्य को

- -

1. अद्भुतदर्पणम् 10/30
2. "वही 1/1
3. सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत् ।
 - काव्यप्रकाश: 10/92

प्रस्तुत करने का प्रयासमात्र किया गया है । क्योंकि नाटक के समस्त श्लोक तथा प्रकरणों में आए हुए अलंकारों को यहां प्रस्तुत करना न तो उद्दिष्ट है और न ही सम्भव है ।

छन्द

काव्य की उपमा प्रायः एक ऐसे शरीरधारी से की जाती है, जिसका आत्मा रस है तथा शरीर शब्दात्मक भाषामय है। ओज, प्रसाद तथा माधुर्य जिसके गुण हैं तथा अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना जिसकी शक्तियां हैं व अलंकार जिसे विभूषित करने वाले आभूषण हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि काव्य के प्रमुख अंग रस और अलंकार हैं, जिसके अन्तर्गत काव्य की पदरचना, रीतियां तथा व्यंजना, ध्वनि एवं भाव भी आ जाते हैं। किन्तु पद्यकाव्य के लिये काव्य की इन विशेषताओं के साथ ही उसका छन्दोबद्ध होना भी अत्यन्त आवश्यक है। छन्द के कारण किसी भी रचना में गेयता के साथ ही अधिक लालित्य, रम्यता और मधुरता भी आ जाती है। छन्दगत लय से उसकी रोचकता में भी विशेष वृद्धि होती है।

वेद के षडंगों के अन्तर्गत छन्द भी परिगणित होता है। पाणिनीय शिक्षा में "छन्दः पादौ तु वेदस्य"[1] कहकर छन्द को वेदपुरुष का चरण बताया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि छन्दों की उत्पत्ति वैदिक काल में ही हो गई थी। यजुर्वेद के गद्यस्थलों को छोड़कर वैदिक संहिताओं का अधिकांश भाग छन्दों में ही व्यवस्थित है। वास्तव में वैदिक साहित्य के गद्यस्थल भी छन्दोबद्ध ही हैं। लौकिक साहित्य में जहां छन्द और पादबद्धता एक दूसरे के पर्याय हैं, वहीं प्राचीन आर्ष परम्परा के अनुसार गद्य भी छन्दयुक्त माने जाते हैं। दुर्गाचार्य का इस विषय में मत है कि छन्द के बिना वाणी उच्चरित ही नहीं होती[2]। इसी प्रकार नाट्याचार्य भरतमुनि भी छन्दरहित शब्द की सत्ता स्वीकार नहीं करते[3]। छन्दयुक्त गद्य की भी सत्ता स्वीकार करने के कारण ही प्राचीन आचार्यों

---

1. पाणिनीय शिक्षा - श्लोक 4
2. नाच्छन्दसि वागुच्चरति - निरुक्त 7/2 वृत्ति
3. छन्द हीनो न शब्दोऽस्ति न छन्दः शब्द वर्जितम्।
   - नाट्यशास्त्र 14/45

ने एक अक्षर से लेकर 104 अक्षर तक के छन्दों का विधान अपने ग्रन्थों में स्वीकार किया है[1]।

चूंकि वेद ही सर्वप्रथम छन्दोबद्ध साहित्य हैं अतः इन्हीं के आधार पर छन्द शब्द की व्याख्याएं की गई हैं। यास्क ने छन्दः शब्द की व्युत्पत्ति छद् धातु से मानी है। उनके अनुसार छन्दों को छन्द कहा जाता है, क्योंकि ये वेदों के आवरण हैं। अथवा नियमन के कारण ही छन्द को छन्द कहते हैं[2]। दुर्गाचार्य का कथन है कि वेद में तुम छन्द हो क्योंकि इसी के द्वारा मृत्यु से भयभीत देवता स्वयं को आच्छादित करते हैं[3]।

छन्दशास्त्र का प्रतिनिधि ग्रन्थ है पिंगलाचार्य कृत "छन्दः सूत्र"। सूत्र रूप में रचित यह ग्रन्थ आठ अध्यायों में विभक्त है। इसमें प्रारम्भ से लेकर चौथे अध्याय के सातवें सूत्र तक वैदिक छन्दों के लक्षण दिये गये हैं। तत्पश्चात् लौकिक छन्दों का वर्णन किया गया है। आचार्य पिंगल का ग्रन्थ प्रायः लक्षणों का ही बोध कराता है, इसी कमी को दूर करने के लिये भट्टकेदार ने लक्ष्य-लक्षण प्रतिपादक वृत्त रत्नाकर नामक छन्दशास्त्रीय ग्रन्थ का प्रणयन किया। कालान्तर में इसी परम्परा में कालिदास ने श्रुतबोध, गंगादास ने छन्दोमंजरी तथा क्षेमेन्द्र ने सुवृत्त तिलक नामक छन्दशास्त्रीय ग्रन्थों की रचना की। तत्पश्चात् भी छन्द-शास्त्रविषयक अनेक प्रौढ़ ग्रन्थों की रचनाएं होती रहीं।

सुप्रसिद्ध नाट्याचार्य भरतमुनि ने अपने ग्रन्थ के अठारहवें अध्याय में

---

1. युधिष्ठिर मीमांसक – वैदिक छन्दोमीमांसा पृ. 8, 9 (श्री रामलाल ट्रस्ट अमृतसर 1959।)
2. छन्दांसि छादनात् – निरुक्त दैवतकाण्ड 7/19
3. यदेभिरात्मानमाच्छादयन् देवा मृत्योर्विभ्यतः तच्छन्दसां छन्दस्त्वम्।
   – निरुक्त दैवत काण्ड 7/19 की वृत्ति

छन्दविषयक कुछ महत्त्वपूर्ण विवरण प्रस्तुत किये हैं। आचार्य भरत के अनुसार काव्यबन्ध दो प्रकार का होता है - 1. नियताक्षर बन्ध 2. अनियताक्षर बन्ध। नियताक्षर बन्ध का तात्पर्य है, ऐसी रचना जिसमें अक्षरों का स्थान तथा संख्या नियत हो। इसी नियताक्षर बन्ध को पद्यबन्ध भी कहा जाता है। पद्य शब्द की सामान्य व्युत्पत्ति है - " पदं चरणं अर्हतीतिपद्यम् " अर्थात् जो रचना चरणों में व्यवस्थित होती है उसे पद्य कहते हैं। किन्तु अनियताक्षर बन्ध में इस प्रकार का कोई निश्चित स्वरूप नहीं होता। गद्य रचनाएं अनियताक्षर बन्ध ही हैं। अतः यह स्पष्ट है कि छन्दशास्त्र नियताक्षर बन्ध रचनाओं से ही सम्बन्धित हैं।

छन्दों का वर्गीकरण

लौकिक साहित्य के छन्दों को दो भागों में विभक्त किया गया है - 1. वर्णिक छन्द 2. मात्रिक छन्द। इन्हीं को क्रमशः वृत्त तथा जाति भी कहा जाता है[1]।

1. वर्णिक छन्द - इन छन्दों में शब्दों को वर्णों के अन्तर्गत नियत करने के लिये तीन-तीन अक्षरों के 8 गण बना लिये गये हैं। इन्हें क्रमशः 1. यगण 2. मगण 3. तगण 4. रगण 5. जगण 6. भगण तथा 7. नगण व 8. सगण कहा जाता है। प्रत्येक गण की एक विशिष्ट लघु एवं गुरु व्यवस्था है। एकमात्रिक लघु तथा द्विमात्रिक, त्रिमात्रिक वर्ण गुरु कहे जाते हैं। छन्दशास्त्र कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में भी लघुवर्णों की गुरुता स्वीकार करता है, यथा - अनुस्वार से युक्त, विसर्गान्त, संयुक्त वर्ण से पूर्ववर्ती वर्ण सदैव गुरु होता है तथा चरण के अन्त में स्थित लघुवर्ण भी विकल्प से गुरु होता है[2]। प्रत्येक गण की लघु-गुरु व्यवस्था के

---

1. पद्यं चतुष्पदं तच्च वृत्तं जातिरिति द्विधा।
   वृत्तमक्षर संख्यातजातिर्मात्रा कृता भवेत्॥ - छन्दोमंजरी 1/4
2. सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत्।
   वर्णः संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा॥ - वही 1/11

विषय में छन्दोमंजरी में कहा गया है – मगण तीन गुरु वर्णों वाला होता है, नगण तीन लघु वर्णों वाला, भगण आदि में गुरु वर्ण वाला, यगण आदि में लघु वर्ण वाला, जगण में गुरु वर्ण मध्यस्थ होता है तथा रगण में लघुवर्ण मध्यगत होता है तो सगण अन्त में गुरुवर्ण वाला तथा तगण अन्त में लघुवर्ण वाला होता है[1]।

वर्णिक छन्द को वृत्त भी कहते हैं। यह वृत्त तीन प्रकार का होता है – 1. समवृत्त – जिसमें चारों चरण समान लक्षण वाले हों। 2. अर्द्धसमवृत्त- जिसके प्रथम एवं तृतीय चरण एक जैसे हों तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण एक जैसे हों। 3. विषम वृत्त – जिसके चारों चरण परस्पर भिन्न हों[2]।

2. <u>मात्रिक छन्द</u>- मात्रिक छन्द उसे कहते हैं, जो मात्रागणों के आधार पर निर्मित होता है। मात्रागण चार-चार मात्राओं वाले तथा पांच प्रकार के होते हैं। इस विषय में वृत्तरत्नाकर में कहा गया है – सर्वत्र, अन्त, मध्य, तथा आदि

---

1. मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो आदिगुरुः पुनरादिलघुर्यः।
   जो गुरुमध्यगतो रलमध्यः सोऽन्तगुरुः कथितोऽन्तलघुस्तः।।

   -छन्दोमंजरी 1/8

2. सममर्धसमं वृत्तं विषमं च तथा परम्।।
   अंघ्रयो यस्य चत्वारस्तुल्यलक्षणलक्षिताः।
   तच्छन्दःशास्त्रतत्त्वज्ञाः समं वृत्तं प्रचक्षते।।
   प्रथमांघ्रिसमो यस्य तृतीयश्चरणो भवेत्।
   द्वितीयस्तुर्यवद्वृत्तं तदर्धसममुच्यते।।
   यस्य पादचतुष्केऽपि लक्ष्म भिन्नं परस्परम्।
   तदाहुर्विषमं वृत्तं छन्दःशास्त्रविशारदाः।।

   -वृत्तरत्नाकर 1/13, 14, 15, 16

में गुरुवर्ण जिनके हों अथवा चारों मात्राएं लघु हों, ऐसे चार मात्रा के पांच गण आर्या आदि छन्दों में होते हैं[1] । इस प्रकार इनमें एक-मगण, दो-सगण, तीन-जगण, चार - भगण, पांच - नगण प्रयुक्त होते हैं, किन्तु वैशिष्ट्य यह है कि मगण को चार मात्रिक बनाने के लिये एक गुरुवर्ण की कमी तथा नगण में एक लघु की वृद्धि की गई है । इस प्रकार निर्मित प्रत्येक पद्य में 4 चरण होते हैं । इनमें प्रथम और तृतीय को विषम अथवा अयुक् तथा द्वितीय और चतुर्थ को सम अथवा युक् भी कहते हैं[2]।

युक्, अयुक् तथा गण आदि की भांति ही छन्द का एक अन्य महत्त्व-पूर्ण पारिभाषिक शब्द है," यति" । किसी छन्द का पाठ करते समय जिस बिन्दु पर जिह्वा स्वाभाविक ही एक क्षण के लिये रुक जाती है, उस बिन्दु को यति कहते हैं । इसे विच्छेद, विराम या विश्राम भी कहा जाता है[3]। प्रत्येक छन्द में अक्षर संख्या की लम्बाई के अनुपात में ही तदनुकूल यति की व्यवस्था होती है । जैसे मालिनी छन्द के लक्षण में कहा गया है -

ननमयययुतेयंमालिनी भोगिलोकैः ।

अर्थात् मालिनी छन्द में नगण, नगण, मगण तथा दो यगण होते हैं । क्रमशः सर्पों की संख्या अर्थात् 8 तथा भूः, भुवः आदि लोकों की संख्या अर्थात् 7 अक्षरों पर यति होती है । इसी प्रकार अन्य छन्दों में भी यति की व्यवस्था होती है ।

---

1. ज्ञेयाः सर्वान्तमध्यादि गुरवोऽत्र चतुष्कलाः ।
   गणाश्चतुर्लघूपेताः पंचार्यादिषु संस्थिताः ।। - वृत्तरत्नाकर 1/8
2. युक् समं विषमं चायुक् स्थानं सद्‌भिर्निगद्यते । - वही 1/13
3. यतिर्जिह्वेष्ट विश्रामस्थानं कविभिरुच्यते ।
   सा विच्छेद विरामाद्यैः पदैर्वाच्या निजेच्छया । - छन्दोमंजरी 1/12

अद्भुतदर्पणम् नाटक का छन्द-विधान

छन्द हृदय की कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति के नैसर्गिक माध्यम हैं। कविजन अपने हृदय के मर्मस्पर्शी भावों को प्रकट करने के लिये छन्दों का ही अवलम्ब लेते हैं। कविवर महादेव ने भी अपने नाटक में विभिन्न छन्दों के द्वारा अपनी हृदयगत कल्पनाओं को सुन्दर अभिव्यक्ति दी है। इस नाटक के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि कवि छन्दशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान थे। उन्होंने इस नाटक में लगभग 15 छन्दों का प्रयोग किया है। ओजोगुणप्रधान होने के कारण इस नाटक में ओजस्वी भावों को व्यक्त करने में पूर्ण सक्षम शार्दूलविक्रीडित छन्द का विशेष प्रयोग है, किन्तु स्थान-स्थान पर अन्य छन्दों का भी सुन्दर प्रयोग है। कवि ने मात्रिक तथा वर्णिक दोनों ही प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है किन्तु मात्रिक छन्द में केवल आर्या छन्द को ही नाटक में स्थान दिया है। वर्णिक छन्दों में उन्होंने अनुष्टुप, शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, शिखरिणी, मालिनी, पृथ्वी, शालिनी, प्रहर्षिणी, योगिनी, मन्दाक्रान्ता, उपजाति, हरिणी, स्रग्धरा तथा मालती छन्दों को प्रयुक्त किया है, उदाहरणार्थ -

(क) वर्णिक छन्द (वृत्त)

1. अनुष्टुप- सूक्त्यात्मक वाक्यों तथा संक्षिप्त सूचनाओं के लिये कवि ने अनुष्टुप छन्द का बहुशः प्रयोग किया है। इस छन्द का लक्षण करते हुए छन्दोमंजरीकार गंगाधर कहते हैं - "जिस छन्द में पंचम अक्षर लघु हो (परन्तु) सप्तम अक्षर केवल दूसरे तथा चौथे चरण में लघु हो, षष्ठ अक्षर प्रत्येक चरण में गुरु हो उसे पद्य कहते हैं[1]। पद्य को ही श्लोक या अनुष्टुप भी कहा जाता है। नाटक में इसका प्रस्तुत

- -

1. पंचमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः।
   षष्ठं गुरु विजानीयादेतत्पद्यस्य लक्षणम् ॥
   -छन्दोमंजरी 4/7

उदाहरण दर्शनीय है -

अन्यादृशं चमत्कारमात्मानन्दैकसाक्षिणम् ।
दर्शयन्तीं प्रतिव्यक्ति देवीं वाचमुपास्महे[1] ।।

इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण -

पितृव्ये राजपुत्राणां ज्ञातिद्वेषो विशिष्यते ।
आनन्तर्यस्य यत्साम्यमभ्यसूयापदं हि तत्[2] ।।

2. शार्दूल विक्रीडित - नाटक में सर्वाधिक इसी छन्द का प्रयोग है । इस छन्द के प्रत्येक चरण में 19 अक्षर होते हैं । इसका लक्षण करते हुए वृत्तरत्नाकर में कहा गया है - क्रमशः मगण, सगण, जगण, सगण, दो तगण तथा एक गुरु प्रत्येक चरण में हो तो वह शार्दूल विक्रीडित छन्द हो । इस छन्द में सूर्य (12) तथा अश्व (6) संख्यक अक्षरों पर यति होती है[3]। छन्दोमंजरी में भी लगभग इसी प्रकार का लक्षण किया गया है[4]। नाटक में इसका उदाहरण निम्न है -

आ प्राभाकरयज्वनः स्वयमभिव्यक्तीभवद्ब्रह्मणा-
माचारैश्चरितार्थितश्रुतिगिरामाजन्मशुद्धात्मनाम् ।
कौण्डिन्यव्यपदेशभूतयशसां यद्ब्राह्मणानां चिरा-
त्संघोऽयं सफलीकरोति नयनं तन्नः परं मंगलम्[4] ।।

एक अन्य उदाहरण -भी द्रष्टव्य है-

एवं रावणमेव घूर्णनजवव्यत्यस्तवक्त्रावली-
निष्पर्यायविनिर्यदासृमसकृत्किं न क्षितावक्षिपत् ।
किं वा न व्यधुनोद्घनोत्सवनैरेवापरानाशरा-
न्धिम्मायापिहितस्तु तं शरमयैनर्गिर्बबन्धेन्द्रजित्[5] ।।

---

1. अद्भुतदर्पणम् 1/2 2. अद्भुतदर्पणम् 1/24
3. सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ।। -वृत्तरत्नाकर 3/136
4. सूर्याश्वैर्यदिमः स जौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ।

-छन्दोमंजरी

5. अद्भुतदर्पणम् 1/3 6. अद्भुतदर्पणम् 2/16

3. <u>वसन्ततिलका</u>- इस छन्द का भी नाटक में कई स्थानों पर प्रयोग मिलता है। इस छन्द के प्रत्येक चरण में 14 अक्षर होते हैं। इसका लक्षण करते हुए वृत्तरत्नाकर-कार कहते हैं - "वसन्ततिलका उसे कहते हैं, जिसके प्रत्येक चरण में क्रमशः, 1 तगण, 1 भगण, 2 जगण तथा प्रत्येक पाद में दो गुरु हों। इसी को काश्यप ऋषि ने सिंहोद्धता, सैतवमुनि ने उद्धर्षिणी और पिंगलाचार्य जी ने मधुमाधवी छन्द कहा है। इसमें पदान्त यति होती है[1]।

नाटक में इसका उदाहरण निम्न श्लोक है-

आशंकिते सकृदसत्यपि वाच्यलेशे
स्वस्त्रीसुतेष्वपि जनैः परिशोधनानि।
शुद्धिक्रियर्षपिशुनान्यनुमन्यमाना
मध्यस्थतापि ममतैव सतां विमृष्टा [2]।।

एक अन्य उदाहरण है -

वैरोपदर्शितपथेषु मुहुः परेषां
सर्वप्रकाररचितेषु पराभवेषु।
मायेति चौर्यमिति वंचनमित्यशक्ते-
राच्छाद्यते सहज एव निजः प्रमादः [3]।।

4. <u>शिखरिणी</u>- इस छन्द के प्रत्येक चरण में 17 अक्षर होते हैं। वृत्तरत्नाकर के अनुसार- यदि क्रमशः यगण, मगण, नगण, सगण, भगण तत्पश्चात् लघु और एक गुरु वर्ण प्रत्येक चरण में हों तो वह शिखरिणी छन्द होता है। इसमें रस {6}

- -

1. उक्ता वसंततिलका तभजा जगौ गः। सिंहोद्धतेयमुदिता मुनिकाश्यपेन।
उद्धर्षिणीति गदिता किल सैतवेन। नागेन सैव गदिता मधुमाधवीति।।
{पदान्तेऽत्र यतिः} - वृत्तरत्नाकर 3/96 छन्दःसुबोधिनीटीका सहित

2. अद्भुतदर्पणम् 1/6

3. वही 1/17

तथा रुद्र (11) संख्यक अक्षरों के बाद यति होती है[1]। इस छन्द का भी अद्भुत-दर्पणम् में अनेकशः प्रयोग हुआ है, यथा-

अपि स्वैराचारैः कलुषमितरेषां शमयतः
परश्लाघायत्ता भवति महतः स्वेषु शुचिता ।
अहल्यावैकल्यक्षपणमदरेणोरपि विभोः
प्रमाणं वैदेहीचरितपरिशुद्धौ हुतवहः[2]।।

अथवा

हनूमन्मुख्यानां कथमपि च सुग्रीवसुहृदां
मनस्तैस्तैः सान्त्वैर्मयि सपदि नीतं प्रवणताम् ।
अथ स्युः क्षुद्राश्चेदसहनतया व्युत्थितधियो
निजं मार्गं तेषामुपदिशतु सोऽयं दधिमुखः[3]।।

5. मालिनी- मालिनी छन्द के प्रत्येक चरण में 15 अक्षर होते हैं। इस प्रकार यदि 15 अक्षर वाली पाद जाति में 2 नगण, 1 मगण और 2 यगण क्रमशः प्रत्येक पाद में हों तथा नाग (8) तथा लोक (7) संख्यक अक्षरों पर यति हो तो वह मालिनी छन्द होता है[4]।

इस नाटक में मालिनी छन्द का अत्यल्प प्रयोग हुआ है। इसके दो ही उदाहरण प्राप्त होते हैं, यथा-

अनृतमिदमृतं वा तेन किं नस्तदास्तां प्रकृतमनुसरामो यन्निमित्तः प्रयासः ।
ननु रिपुपुरमेतन्मृग्यमाणं चिराय त्रितयमिव पुराणां धूर्जटेरग्रतस्ते[5]।।

---

1. रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ।। -वृत्तरत्नाकर 3/123
2. अद्भुतदर्पणम् 1/7
3. अद्भुतदर्पणम् 3/7
4. ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।। -वृत्तरत्नाकर3/110
5. अद्भुतदर्पणम् 1/28

द्वितीय उदाहरण है-

ननु निशिचरशाठ्ये सर्वथा शंकितव्ये
व्यपगतपरिशंकं स्वैरचारोद्धतस्य ।
तव सहजरूपो यः पंचवट्यां प्रमादः
परिदहति दुरन्तस्तस्य खल्वेष पाकः[1]।।

6. पृथ्वी- पृथ्वी छन्द का लक्षण करते हुए वृत्तरत्नाकर में कहा गया है ।7 अक्षर की पाद वाली जाति के प्रत्येक पाद में क्रमशः जगण, सगण, जगण, सगण, यगण तथा एक लघु और एक गुरु वर्ण हों तो वह पृथ्वी छन्द होता है । इस छन्द में यति वसु {8} तथा ग्रह {9} संख्यक अक्षरों के बाद होती है[2]। इस नाटक में पृथ्वी छन्द का प्रयोग मात्र एक ही स्थान पर हुआ है । उदाहरणार्थ -

किमेष रजनीचरः किमपि मायया दर्शय-
त्यथो नु परमार्थतो दधिमुखो गृहीतो भवेत् ।
इति प्रबलसंशयाकुलितचेतसासौ मया
कथं नु परिमुच्यतामथ कथं नु वा बध्यताम्[3]।।

7. शालिनी- ।। अक्षर के पाद जाति वाले इस छन्द में एक मगण, दो तगण और 2 गुरु प्रत्येक पाद में होता है । इसमें अब्धि {4} तथा लोक {7} संख्यक अक्षरों पर यति होती है[4]। इस छन्द का भी एक ही उदाहरण नाटक में मिलता है -

ब्रूषे सद्यो यस्त्वमस्मत्पुरस्ता-
त्तारेयस्यारातिपक्षप्रवेशम् ।
स त्वं सद्यस्तद्विरुद्धप्रकारं
किंचिच्चेदं जल्पसीत्यद्भुतं नः[5]।।

---

1. अद्भुतदर्पणम् 2/25
2. जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः ।। - वृत्तरत्नाकर 3/124
3. अद्भुतदर्पणम् 2/1

8. प्रहर्षिणी- 13 अक्षर के पाद जाति वाले इस छन्द का लक्षण बताते हुए वृत्तरत्नाकर में कहा गया है - मगण, नगण, जगण, रगण एवं एक गुरु प्रत्येक पाद में हों तथा जिसका विश्राम 3 एवं 10 अक्षरों पर हो वह प्रहर्षिणी छन्द होता है[1]।

महाकवि महादेव ने इस छन्द को अनेकशः प्रयुक्त किया है। यहां इस छन्द के दो उदाहरण प्रस्तुत हैं:-

1. उत्प्लुत्य प्रविशति च क्षणेन लंका-
मुद्भ्रान्तप्रतिभटमुच्यमानमार्गः ।
उत्पाताम्बुद इव शोणितानि वर्ष-
न्नादित्यात्पतति च दारुणः कबन्धः ।।

तथा

2. आः पाप स्फुरति वृथैव चेष्टसे किं
तारेयापतद पुनर्न तेऽस्ति मोक्षः ।
नन्वेष त्वरितबृहत्प्रहस्तबाहा
यन्त्रान्तर्निगलित एव कण्ठनालः[2]।।

9. वियोगिनी- प्रथम एवं तृतीय चरण में 10 तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में 11 वर्णों वाले इस अर्द्धसमवृत्त छन्द के विषम पादों में क्रमशः 2 सगण, 1 जगण तथा 1 गुरु होता है एवं सम चरणों में क्रमशः सगण, भगण, रगण तथा अन्त में एक लघु तथा एक गुरु वर्ण होता है[3]। इस छन्द को वियोगिनी छन्द कहते हैं। इसी को छन्दोमंजरी में सुन्दरी छन्द भी कहा गया है[4]। नाटक में इसका निम्न उदाहरण

- -

1. म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम् ।। - वृत्तरत्नाकर 3/84
2. अद्भुतदर्पणम् 2/6, 4/4
3. विषमे ससजा गुरुसमे स भरा लोऽथ गुरुर्वियोगिनी ।। -वृत्तरत्नाकर 4/10
4. अयुजोर्यदि सौ जगौ युजोः सभरा ल्गौ यदि सुन्दरी तदा ।।
-छन्दोमंजरी

द्रष्टव्य है-

उभयोश्च तयोः समेतयोः सहजप्राकृतयोः सपत्न्योः ।
अपवादविनाकृतं चिरात्कमत्सौत्स्यति दण्डपातनम्[1]।।

10. मन्दाक्रान्ता- 17 अक्षर की पाद वाली जाति के जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, भगण, नगण, तगण तत्पश्चात् पुनः तगण तथा दो गुरु वर्ण आएं और जलधि {4} षड् {6} एवं अग {7} संख्यक वर्णों पर विश्राम हो तो उसे मन्दाक्रान्ता कहते हैं[2]। अद्भुतदर्पणम् में इस छन्द का उदाहरण अनेकशः प्राप्त होता है । इनमें से एक यहां प्रस्तुत है-

हत्वाप्येतान्निशिचरगणानानुपूर्व्येण सर्वा-
न्कामं पश्चादपि दशमुखो हन्त हन्तव्य एव । ,
द्रागस्माकं त्वशिथिलबलस्फूर्तिरक्षीणशक्ति-
र्द्रष्टव्योऽसौ सकृदिति चिरादेष तीव्रोऽभिलाषः[3]।।

11. उपजाति- इन्द्रवज्रा[4] तथा उपेन्द्रवज्रा[5] इन दोनों के लक्षण से युक्त जिसके पाद हों वह छन्द उपजाति छन्द कहलाता है । इसी प्रकार और भी समानजाति में भिन्न-भिन्न लक्षण वाले वृत्तों के पाद मिल जाने पर भी आचार्यों ने उसे उपजाति छन्द ही माना है[6]।

- -

1. अद्भुतदर्पणम् 5/20
2. मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद्गुरू चेत् ।। -वृत्तरत्नाकर 3/127
3. अद्भुतदर्पणम् 7/10
4. स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ।। -वृत्तरत्नाकर 3/41
5. उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।। - वही 3/42
6. अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु स्मरन्ति जातिष्विदमेव नाम ।।
- वही 3/43

अद्भुतदर्पणम् में पाए जाने वाले उपजाति छन्द उपेन्द्रवज्रा तथा इन्द्रवज्रा के मिश्रण से ही निर्मित हैं। यथा-

चिराय देवासुरलोकनाथैर्मनोरथप्रार्थितदुर्लभानि ।
उत्कर्षमायोधनसाधनानि शंसन्ति वीर्यार्जितमिन्द्रजेतुः[1]।।

इस उपजाति छन्द के प्रथम पाद तथा द्वितीय पाद में उपेन्द्रवज्रा छन्द है तथा तृतीय और चतुर्थ पाद में इन्द्रवज्रा छन्द है।

एक अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य है, इसके प्रथम पाद में उपेन्द्रवज्रा है तथा अन्य तीनों चरणों में इन्द्रवज्रा छन्द है-

विदेहराजस्य सुतामवेक्ष्य विस्रम्भणीयामखिलैरुपायैः ।
कण्डूयोऽपि मुक्तो यदयं ततो मां दिदृक्षते जातु रणेषु रामः[2]।।

12. <u>हरिणी</u>- इस छन्द में 17 अक्षर होते हैं तथा छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण, सगण, मगण, रगण, सगण तथा एक गुरु व एक लघु वर्ण होते हैं। साथ ही इसमें क्रमशः रस {6}, युग {4} तथा हय {7} संख्यक अक्षरों पर विश्राम होता है[3]।
नाटक में प्रस्तुत पद्य इस छन्द का उत्तम उदाहरण है-

तुलितचलितत्रुट्यत्कैलासमूलमहाशिला-
कठिनगुणितज्याघाताङ्कां वहन्भुजविंशतिम् ।
चिरघृतरणक्रीडाकण्डूभरानुगुणं जग-
त्त्रयजयमदाविष्टश्चेष्टिष्यते दशकन्धरः[4]।।

13. <u>स्रग्धरा</u>- 21 अक्षर वाली पाद जाति में मगण, रगण, भगण, नगण, और 3 यगण जिसके प्रत्येक पाद में हों और 3 बार मुनि {7}, संख्यक अक्षरों पर यति वाली

---

1. अद्भुतदर्पणम् 4/11
2. वही 7/11
3. रसयुगहयैः न्सौ म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी तदा ।। - वृत्तरत्नाकर 3/126
4. अद्भुतदर्पणम् 7/19

छन्दरचना स्रग्धरा कही जाती है[1]। अद्भुतदर्पणम् में इस छन्द के बहुश: उत्कृष्ट उदाहरण पाए जाते हैं। उनमें से एक यहां प्रस्तुत है:-

स्वर्गस्त्रैणापहारी हरिदधिपकुलस्त्रीसहस्रापहर्ता
हर्ता मर्त्याङ्गनानामहिपतिदनुजाधीशनारीविहारी।
रक्ष:स्त्रीलक्षचित्तप्रमथनमदनो भिन्नधर्माधिपेतु:
कामव्यामोहदाहज्वरविरपधिकग्रामणीरेष याति [2]।।

14. सालसा- 18 अक्षरों वाले इस छन्द में 2 नगण और 4 रगण होते हैं। विश्राम 10 तथा 8 अक्षरों पर होता है[3]।

सालसा छन्द का प्रयोग सम्पूर्ण रचना में मात्र एक ही स्थान पर पाया जाता है। उदाहरणार्थ -

ननु धनुरनुगण्डमग्रेडवसज्यावसज्य त्वया
गिरिरयमखिलोऽधिरूढो निरालम्बदूरोन्नत:।
धुरि निजनिजयूथपालोच्चलद्वालसालम्बना
लघुकपिपूतनेयमेनं दुरारोहमारोहति[4]।।

15. आर्या- यह एक मात्रिक छन्द है। इस छन्द में पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध ये दो ही भाग होते हैं। इसके पूर्वार्द्ध में 4-4 मात्रा के 7 गण तथा अन्त में एक दीर्घ वर्ण होना चाहिए। विषम स्थान अर्थात् प्रथम, तृतीय, पंचम तथा सप्तम में जगण नहीं होता किन्तु 6ठा गण या तो जगण होता है या 4 मात्रा का नगण होता है। यह आर्या के पूर्वार्द्ध का लक्षण है। उत्तरार्द्ध में 6ठे गण की जगह एक मात्रा का ह्रस्व वर्ण ही होता है तथा अन्य समस्त लक्षण पूर्वार्द्ध के समान ही

---

1. म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्।। -वृत्तरत्नाकर 3/142
2. अद्भुतदर्पणम् 7/27
3. दशमतुविरतिर्नरौ रैश्चतुर्भिर्युता सालसा।। - वृत्तरत्नाकर 3/132
4. अद्भुतदर्पणम् 3/3

होते हैं । इस प्रकार सारांश यह है कि आर्या छन्द में उक्त रीति के अनुसार 30 मात्रा का प्रथम तथा 27 मात्रा का द्वितीय दल होना चाहिये ।

आर्या छन्द में विश्राम के भी विभिन्न नियम हैं । यदि आर्या के पूर्वार्द्ध में 6ठा गण 4 मात्रा वाला तथा सम्पूर्ण लघुरूप हो तो उस गण के पहले लघुवर्ण के अन्त में विराम होता है । यदि सप्तम गण 4 मात्राओं वाला तथा पूर्ण लघु हो तो 7वें गण के प्रथम लघुवर्ण के पूर्व अर्थात षष्ठ गण के अन्त में यति होती है ।

आर्या के उत्तरार्द्ध में यति का नियम यह है कि इसमें पंचम गण सर्वलघु हो तो उससे पूर्व अर्थात् 4थे गण के अन्त में यति होनी चाहिये[1]।

आर्या छन्द का प्रयोग भी कवि ने मात्र एक ही स्थान पर किया है तथा वह भी प्राकृत भाषा में , उदाहरणार्थ-

विज्जुज्जीहसदेण वि तिअडासरमाण णिसुददो वा वि ।
सीदाभिआअमकज्जे कड्ढइ जोण्णे प्पदरिसम्मि[2]।।

अद्भुतदर्पणम् के रचनाकार महाकवि महादेव का छन्दविधान अत्यन्त उच्चकोटि का है । नाटक में भाव एवं प्रसंगानुकूल विभिन्न छन्दों का सुन्दर प्रयोग कवि ने किया है । इन समस्त छन्दों को प्रस्तुत करना तो यहां पर सम्भव नहीं है अतः नाटक में आए समस्त छन्दों के कुछ उदाहरणों को प्रदर्शित करने का यहां प्रयास-मात्र किया गया है । इन उदाहरणों से यह सिद्ध हो जाता है कि कवि महादेव विविध छन्दों के उत्तम प्रयोक्ता हैं ।

---

1. लक्ष्मैतत्सप्तगणा गोपेता भवति नेह विषमे जः ।
   षष्ठोऽयं नगणो वा प्रथमार्धे नियतमार्यायाः ।।
   षष्ठे द्वितीयलात्परके न्ले मुखलाच्च स यतिपदनियमः ।
   चरमेऽर्धे पंचमके तस्मादिह भवति षष्ठे लः ।। -वृत्तरत्नाकर 2/1, 2

2. अद्भुतदर्पणम् 6/7

षष्ठ अध्याय

साहित्यिक सौन्दर्य

1. प्रकृति-चित्रण ।

2. अद्भुतदर्पणम् की भाषा-शैली ।

3. नाटक में मानवीय संवेदना का चित्रण ।

4. अद्भुतदर्पणम् का सामाजिक एवं राजनैतिक दर्शन

षष्ठ अध्याय

अद्भुतदर्पणम् के कथानक का साहित्यिक सौन्दर्य

प्रकृति चित्रण

अद्भुतदर्पणम् अपने ढंग की एक विशिष्ट कृति है । यह नाटक अनेक दृष्टियों से भिन्न प्रतीत होता है । जहाँ एक ओर गर्भांक की विशिष्ट शैली, पात्रों के प्रकृत एवं माया व्यक्तित्वों तथा मानवीय संवेदनाओं के मार्मिक चित्रण से यह रचना विशिष्ट प्रतीत होती है, वहीं दूसरी ओर प्रकृति के वर्णनों से सर्वथा अछूती सी सिद्ध होती है । समूचे नाटक में युद्ध प्रसंग में आए हुए नगर आदि के कुछ वर्णनों को छोड़कर, प्रकृति का कोई सांगोपांग और असंकीर्ण उदाहरण नहीं मिल पाता है । नगर इत्यादि के जो वर्णन मिलते भी हैं, उनमें या तो किसी अलंकार की प्रधानता है या फिर वाक्य-विन्यास शिल्प की । परन्तु यह बात सच है कि पूर्वनियोजित संकल्प के अनुसार कवि ने कोई प्रकृति वर्णन प्रस्तुत नहीं किया है ।

नाटक के कथानक का अनुशीलन करने से प्रकृति वर्णन के अभाव की भूमिका भी स्पष्ट हो जाती है । वस्तुतः यह नाटक भारती वृत्ति बहुल है । भारती वृत्ति कथोपकथन अथवा संवादों में ही सीमित रहती है[1]। अद्भुतदर्पणकार का सारा परिश्रम पात्रों के संयोजन तथा उसके संवादों में ही क्षीण हुआ है । कथानक का क्रम भी कुछ इस प्रकार का है कि प्रकृति-वर्णन का कोई सन्दर्भ क्रम में नहीं आ पाता । ऐसी स्थिति में कवि ने आरोपित ढंग से प्रकृति का वर्णन उपन्यस्त भी नहीं किया है । फिर भी प्रसंगान्तर से जो प्रकृति-वर्णन इस नाट्यकृति में वर्णित हुए हैं, उनका संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

---

1. भारती संस्कृतप्रायो वाग्व्यापारो नटाश्रयः ।
   पुरुषविशेषप्रयोज्यः संस्कृतबहुलो वाक्यप्रधानो नटाश्रयो व्यापारो भारती

   – दशरूपकम् 4/5 वृत्ति सहित

यद्यपि इस नाटक में प्रकृति का अत्यल्प वर्णन है तथापि जहां कहीं भी है, वहां अत्यन्त स्वाभाविक है। निबिड़ अन्धकार में क्षीण किन्तु स्पष्ट विद्युल्लेखा की भांति इसका अपना एक विशिष्ट एवं अनुपम सौन्दर्य है। इन प्राकृतिक दृश्यों के स्वरूप को हृदयंगम कराने के लिये कवि ने स्वभावोक्ति, उपमा तथा उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग कर वर्ण्य विषय की मंजुल अभिव्यंजना की है। यथा- तृतीय अंक के इस श्लोक में लक्ष्मण के द्वारा त्रिकूट पर्वत की दुर्गमता का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन किया गया है-

ननु धनुरनुगण्डमग्रेऽवसज्यावसज्य त्वया
गिरिरयमखिलोऽधिरूढो निरालम्बदूरोन्नतः।
धुरि निजनिजयूथमालोच्यलद्दालसालम्बना
लघुकपिपृतनेयमेनं दुरारोहमारोहति[1]।।

इस श्लोक में धनुष्कोटि का आश्रय लेकर राम के शिखर पर आरूढ़ होने का वर्णन जहां उसकी दुर्गमता को स्पष्ट करता है, वहीं वानर सेना के द्वारा अत्यन्त लाघवपूर्वक पर्वतारोहण करने की प्रक्रिया का वर्णन, किसी पर्वतशिखर पर यादृच्छिक एवं स्वाभाविक गति से चढ़ने वाले वानर समूह का एक चित्र सा उपस्थित कर देता है।

इसी प्रकार एक स्थान पर त्रिकूट पर्वत, उस पर स्थित लंकापुरी की परिखा तथा पर्वत को स्पर्श करने वाले सागर का सुन्दर वर्णन कवि की निरीक्षण शक्ति की गम्भीरता को व्यक्त करता है। उदाहरणार्थ,-

प्रागुष्णीष इव त्रिकूटशिरसि व्यालोकि यो रेखया
लंकाया वरणः स एष हि भवत्यभ्रंलिहैः संक्रमैः।
यश्च ग्रस्तहरित्स एष जलधिर्लेखावशिष्टाकृतिः
कौशेयं इवासितोत्तरपटः शैलस्य संलक्ष्यते[2]।।

---

1. अद्भुतदर्पणम् 3/3
2. वही 3/4

लक्ष्मण श्रीराम से कहते हैं कि त्रिकूट पर्वत के शीर्ष पर, मेघाच्छादित होने के कारण, रेखामात्र आकृति से जो पहले उष्णीष की भांति प्रतीत हो रहा था वह यह लंका का प्राकार है। और जिसने सम्पूर्ण दिशाओं को ग्रस्त कर रखा है, वह लेखावशिष्टाकृति सागर, इस पर्वत शिखर से इस प्रकार दिखाई दे रहा है मानो वानरों के द्वारा हिलाया गया पर्वत का श्यामवर्णीय उत्तरीय वस्त्र हो।

यहां एक अत्यन्त स्वाभाविक एवं सजीव प्राकृतिक दृश्य को अभिव्यक्ति मिली है। जिस प्रकार किसी अत्युन्नत पर्वत शिखर पर स्थित कोई विशाल वस्तु भी नीचे से स्पष्ट परिलक्षित नहीं होती, उसका यथार्थ अंकन कवि ने यहां पर किया है। लंका का विशाल प्राकार भी त्रिकूट पर्वत के नीचे से देखने पर रेखा-मात्र प्रतीत हो रहा था। इसी प्रकार पर्वत के शिखर से देखने पर नीचे की वस्तु भी अत्यन्त सूक्ष्म प्रतीत होती है। त्रिकूट पर्वत की ऊंचाई का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उसके शीर्ष पर स्थित लक्ष्मण को, समस्त दिशाओं को व्याप्त करने वाला विशाल समुद्र भी लेखामात्र अवशिष्ट आकृति वाला लक्षित हो रहा है।

इस वर्णन में कवि ने प्रकृति का सुन्दर चित्रण उपमा, उत्प्रेक्षा एवं स्वभावोक्ति अलंकारों के माध्यम से किया है। जहां लक्ष्मण को अग्रमण्डित लंका की परिखा, त्रिकूट रूपी पुरुष के शीर्ष पर सुशोभित उष्णीष की भांति प्रतीत होती है तो वहीं उस पर्वत को स्पर्श कर लहराने वाला सागर उन्हें वानरों के द्वारा, त्रिकूट पर्वत के विधूत, असित उत्तरीय वस्त्र की भांति लक्षित होता है।

प्रकृतिचित्रण के लिये यदि नाटक के किसी अन्य प्रसंग का उल्लेख किया जा सकता है तो वह है दशम अंक का 31वां श्लोक। इसमें कवि ने उपमा अलंकार का आश्रय लेकर चन्द्रिका का वर्णन प्रस्तुत किया है-

दूरीकृतक्षयकलंकभुजंगदोषा सुव्यक्तसंततसुधारसपूरपूर्णा।
तापं तमश्च जगतां सरसं हरन्ती चन्द्रप्रभेव कविता जनतां धिनोतु[1]।।

---

1. अद्भुतदर्पणम् 10/31

यहाँ चन्द्रिका की तुलना कविता के साथ की गई है । एक ओर चन्द्रिका है जो कि तिथिक्षय तथा कलंकरूपी दोष से मुक्त है साथ ही {अंधकारविहीन होने के कारण} भुजंगों अर्थात् लम्पटों के दुष्कर्म से विरहित है तथा प्रत्यक्ष अमृतरस के प्रवाह से परिपूर्ण है व सारे संसार के अन्धकार को दूर करने वाली एवं शीतलता प्रदान करने वाली है तो दूसरी ओर कवि की वह कविता है जिसमें नवरसों का प्रवाह है, दोषों का अभाव है तथा सहृदयों के हृदय-संताप को दूर करने की क्षमता है । इस प्रकार कवि चन्द्रिका का एक आह्लादक रूप प्रस्तुत करते हैं ।

इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि अत्यन्त संक्षिप्त ही सही किन्तु नाटक का प्रकृति-चित्रण एक अद्भुत एवं वैशिष्ट्यपूर्ण महत्त्व रखता है ।

अद्भुतदर्पणम् की भाषा-शैली

अद्भुतदर्पणम् की भाषा-शैली अन्य प्राचीन कवियों की अपेक्षा अधिक सरल एवं स्वाभाविक है। इस नाटक में उस अलंकृत शैली का अभाव है, जो संस्कृत के अन्य नाटकों में प्रायः उपलब्ध होती है। कविवर महादेव की भाषा ऐसी है, जो नाटक के संवादों को स्वाभाविक, सशक्त एवं प्राणवान बनाती है। कवि ने इस नाटक में सर्वत्र पात्र एवं परिस्थिति के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। शब्दयोजना एवं वाक्य-विन्यास भाषा को अभीष्ट गति तथा प्रवाह प्रदान करते हैं।

सामान्यतया कवि की भाषा में सर्वत्र वैदर्भी रीति का ही दर्शन होता है। मधुर शब्द, ललित रचना, अल्प समासों का प्रयोग जो वैदर्भी रीति की विशेषताएं हैं, वे सर्वत्र दृष्टिगोचर होती हैं। किन्तु जहां कहीं वीर या रौद्र रस का प्रसंग आया है वहां भाषा में विशेष रूप से पद्यबन्धों की भाषा में आरभटी रीति का प्रयोग हुआ है। यह रसों के अनुकूल ही है। ऐसे प्रसंगों में तो कहीं-कहीं पूरे-पूरे श्लोकों के पद ही समासमय हो गये हैं[1]। अन्यथा सर्वत्र, सभी रसों में सरल पदों के द्वारा रसानुभूति होती है। वाक्य-विन्यास एवं कथोपकथन की भाषा में भारती वृत्ति के दर्शन होते हैं। संवादों में लम्बे वाक्यों का अभाव है। छोटे-छोटे संवाद ही इतने प्रभावपूर्ण हैं कि वे कम शब्दों में ही अपने सम्पूर्ण भाव को दर्शक या पाठक के हृदय में अंकित कर देते हैं। इस प्रकार कहीं पर भी भाषा की कृत्रिमता के दर्शन नहीं होते हैं[2]।

- -

1. पादाघातैरुदीतैरनुकलमवनीकम्पमुज्जृम्भयद्भि-
   र्निश्वासोच्छ्वासगत्यागतिभिरुपचितारब्धवात्याशताभिः।
   दृक्पातैर्दिविधूतैरनुदिशमवशोत्कूलितोल्कासहस्रै-
   रंगैः स्वैर्दुर्निमित्तान्ययमतिगुणयन्कुम्भकर्णोऽभ्युपैति ।।- अद्भुतदर्पणम् 6/9
2. लंका - अतःपरमावाभ्यामशेषैरपि हतशेषैः राक्षसकुलैः "यथा राजा तथा प्रजाः" इति नीतिमनुसृत्य सौम्यन्तरैरेव भवितव्यम्। त्वया घोराभिचारभूमिभावं

पात्र के अनुकूल भाषा प्रयोग में भी कवि दक्ष प्रतीत होता है । प्राकृत के प्रयोग में कवि ने पुरुष पात्रों में जहां महोदर के लिये प्राकृत भाषा में संवाद प्रक्रिया अपनाई है वहीं नारी पात्रों में लंका को संवाद के लिये संस्कृत भाषा प्रदान की है जबकि उसकी पुत्री के रूप में चित्रित निकुम्भिला प्राकृत भाषा का ही प्रयोग करती है । यहां तक कि सीता जैसी प्रमुख नारी-पात्र भी प्राकृत भाषा का ही प्रयोग करती हैं । जहां तक पात्रों का सम्बन्ध है, उनके चरित्र और स्वभाव का भाषा पर स्पष्ट प्रभाव पड़ा है । लक्ष्मण की भाषा उनके स्वभावानुकूल सर्वत्र औद्धत्यपूर्ण है,। वे लंका पर जिस प्रकार तीव्र गति से आक्रमण करना चाहते हैं, वही व्यग्रता और क्रोध उनकी भाषा में स्पष्ट परिलक्षित होता है[1]। जबकि श्रीराम जैसे धीरोदात्त व्यक्ति की भाषा सर्वत्र गम्भीर है किन्तु प्रसंगानुरूप एक बार वे भी विकत्थन हो जाते हैं तथा उनकी भाषा में भी तीक्ष्णता आ जाती है[2]।

इसी प्रकार रावण की भाषाशैली यद्यपि प्रतिनायक के क्रूर स्वभाव को ध्वनित करती है तथापि उसकी भाषा के द्वारा उस रावण का बोध नहीं होता है जो विश्व-विजयी, धीर-गम्भीर, महाप्रतापी रावण का होना चाहिये । इसके विपरीत जैसा कि कवि को अभीष्ट है, रावण की भाषा उसकी उच्छृंखलता, कामुकता एवं गर्हित व्यक्ति की भावना के व्यक्तीकरण का प्रतीक बन गई है । इसके विपरीत

- -

1. नैकोऽपि जीवन्मोक्तव्यस्त्रीष्वेतेषु च राक्षसः ।
   निहत्य त्रीनिमानद्य तद्यो युद्धं समाप्यताम् ।।

   — अद्भुतदर्पणम् 6/12

2. दृष्टः शस्त्रविमर्दनिर्दयभुजो रामः कुठारायुधः
   दृष्टो योजनबाहुरद्भुतजवदन्दाहवैकव्रती ।
   दृष्टः पर्वतवृष्टिदुर्दिनरणच्छ्लाघी च बाली मया
   द्रष्टव्यः खलु सांप्रतं पुनरिमे मायाविनो राक्षसाः ।।

   — वही 1/19

उसके नर्म सचिव महोदर की भाषा में पद-पद पर चुटीले व्यंग्यपूर्ण वाक्यों की भरमार है । यह शैली सचमुच कवि की एक विशिष्ट शैली है । महोदर अपनी इस भाषा के माध्यम से एक ओर जहाँ रावण को प्रसन्न रख उसका मनोविनोद करता है वहीं व्यंग्यात्मक वचनों के माध्यम से उसको हितकर सीख देने का प्रयत्न भी करता है, जिसमें सीता की कभी न होने वाली उपलब्धता सूचित होती है[1]। इसे दर्शक एवं पाठक स्पष्ट रूप से समझ लेते हैं तथा अद्भुतदर्पण से देखने वाले राम और लक्ष्मण भी समझ लेते हैं किन्तु कामान्ध रावण नहीं समझ पाता ।

ऐसा ही वैशिष्ट्य शम्बर की भाषा में भी परिलक्षित होता है । वह अपने चातुर्यगुण एवं माया के छल से राम जैसे महान पात्र को सर्वथा व्यथित कर देता है ।

नाटक की शैली घटनाओं के घात-प्रतिघात से परिपूर्ण है । इससे रोचकता की विशेष वृद्धि हुई है । इस क्रम में कथानक के अनेक प्रसंग द्रष्टव्य हैं । यथा- राम के यह कहने पर कि अब इन मायावी राक्षसों को भी देख लेंगे, इसके साथ ही तत्काल प्रस्तुत शम्बर स्वगतकथन में उत्तर देता है कि जनस्थान में पत्नी का अपहरण कराके तो देख ही चुके हो अभी फिर मायावी राक्षसों को देखना है[2]।

---

1. महोदरः - यदि रामो जीवति ततस्त्वयि भावबन्धं कदापि न करिष्यति सीता । अथ पक्षान्तरे सैव न जीविष्यतीति सर्वथा नास्ति ते जानकीनिरूद्धस्य दुर्मनोरथस्य फलम् । -अद्भुतदर्पणम् अंक 6 पृ 76

2. रामः - - - - - - - द्रष्टव्याः खलु सांप्रतं पुनरिमे मायाविनो राक्षसाः ।।

   (ततः प्रविशति वानरवेशः शम्बरः ।)

   शम्बरः (स्वगतम् । हुंकृत्य ।) दृष्टा एव जनस्थाने पत्नीं हारयता त्वया ।
   मायिनो राक्षसा हन्त द्रक्ष्यन्ते सांप्रतं च ते ।।

   - वही 1/19, 20

इसी प्रकार जाम्बवान् के हाथ में फंसा हुआ दधिमुख के रूप में मायावी शम्बर, अवसर मिलते ही स्वयं को मुक्त कर वास्तविक दधिमुख को फंसा देता है। यहाँ चुटीले वाक्य-विन्यास से युक्त उनके कथोपकथन कथा की रोचकता बढ़ाने में सहायक हुए हैं। जाम्बवान् के हाथ में असली दधिमुख बन्दी है किन्तु वे अभी भी उसे राम के सम्मुख पकड़े गये मायावी दधिमुख को ही समझ रहे हैं। दधिमुख के संवादों में विसंगति के कारण जाम्बवान् जब उससे पूछते हैं कि अभी तो तुम अंगद के शत्रुपक्ष में प्रवेश की बात कह रहे थे और अब कुछ अन्य ही वार्ता कर रहे हो, इस वार्तालाप को सुनकर शम्बर को आनन्द का जो उत्कर्ष हुआ है उसे वह यह कहकर व्यक्त करता है कि आज मैं जैसे अन्धे के साथ आँख-मिचौली खेल रहा हूँ[1]।

वार्ता के अनेक प्रसंगों में प्रौढोक्तियों का प्रयोग संवादों को प्रभावी बनाता है। इस सन्दर्भ में दधिमुख का कथन कि संकटकाल में शंका तो गुण ही है[2], इसी प्रकार सुग्रीव के कटे हुए मस्तक की पहचान के लिये राम द्वारा कहे जाने पर लक्ष्मण सीधे यह नहीं कहते कि यह सुग्रीव का सिर है अपितु उनका इस प्रकार कहना कि आपके निर्देश से यह पट्टबन्ध मैंने ही बाँधा था[3], न केवल सुग्रीव के मस्तक की पुष्टि करते हैं बल्कि राम द्वारा किये गये सुग्रीव के राजतिलक का स्मरण दिलाकर उनकी मित्रता और संरक्षण के प्रण का भी स्मरण कराते हैं।

एक अन्य स्थान पर सुग्रीव की मृत्यु को स्वीकार न करते हुए राम को आश्वस्त करने के लिये जो वाक्य लक्ष्मण कहते हैं उसमें कितना बल और विश्वास भरा

---

1. जाम्बवान् - - - - - - -

   ब्रूषे सद्यो यस्त्वमस्मत्पुरस्तात्तारेयस्याराति पक्षप्रवेशम्।

   स त्वं सद्यस्तद्विरुद्धप्रकारं किंचिच्चेदं जल्पसीत्यद्भुतं नः॥

   शम्बरः (सहस्ततालं विहस्य।) अन्धेनेव सह चक्षुष्मान्क्रीडामि

   -अद्भुतदर्पणम् 2/2

2. दधिमुखः - - - - शंका हि गुणः संकटेषु।

है, वे कहते हैं-"यदि राक्षसों ने मिलकर अकेले सुग्रीव को मार डाला है, तो समझ लीजिए चींटियों ने मिलकर मन्दराचल को खा लिया[1]।" इससे बढ़-कर राम को सुग्रीव के जीवित होने का विश्वास दिलाने के लिये और क्या उदा-हरण दिया जा सकता है।

इसी प्रसंग में मायावी अंगद का राम के साथ भावपूर्ण संवाद इतना प्रभावी हो गया है कि राम केवल सुनते ही रह जाते हैं। मायावी अंगद कहता है कि चाचा ने जिस प्रकार छल के द्वारा मेरे पिता का वध किया मैंने भी उसी प्रकार उन्हें मारकर प्रतिशोध लिया। वह कहता है कि अब मुझे पिता का राज्य मिले या न मिले किन्तु मेरा जीवन आपके चरणों की सेवा में ही बीते[2]।

यहीं पर उसका यह कहना कि सुग्रीव ने छलपूर्वक न केवल मेरे पिता का वध किया, अपितु आपको भी उस से ही वीरगर्हित मार्ग पर ले जाकर अयश का भागी बनाया[3]। यद्यपि ये शब्द शम्बर के हैं किन्तु कवि की मनीषा ने बालि-वध के प्रसंग में अपनी मार्मिक प्रतिक्रिया व्यक्त कर दी है।

- -

1. लक्ष्मणः - - - - - - - - -

सत्यं बहुभिरेकाकी वयस्यो निहतः परैः।
श्रद्धत्स्व मन्थानगिरिं पर्यलुम्पन्पिपीलिकाः॥

-अद्भुतदर्पणम् 2/14

2. शम्बरः - - - -

पराधष्टम्भेन छलितवतितातं बत चिरा-
न्निरूढा सुग्रीवे छलनविधयैव प्रतिकृतिः।
पदं तावत्पित्र्यं भवतु मम मा वापरमितः
पदातेरस्य त्वच्चरणभजनैर्यातु वपुः॥

- वही 3/10

3. जानीषे खलु तेन तातमथने तैस्तैश्छलोपक्रमै-
र्धिग्धिग्वीरविगर्हिते पथि ननु त्वं चापि संचारितः।

ऐसा ही एक अन्य प्रसंग है, जिसमें कवि ने बड़ी ही मर्मस्पर्शी शैली में सुग्रीव के प्रति राम की मित्रता का चरमोत्कर्ष स्पष्ट किया है। सुग्रीव की मृत्यु की असत्य सूचना के बाद जब सुग्रीव श्रीराम से पुनः मिलते हैं, तो उनकी विह्वलता दर्शनीय है[1]। श्रीराम समझते हैं कि जिस प्रकार अकेले ही सुग्रीव राक्षसों की सेना में प्रवेश करके गम्भीर परिस्थिति उत्पन्न कर चुके हैं, वे अपने शौर्य से प्रभावित होने के कारण ऐसा कृत्य पुनः कर सकते हैं। किन्तु राम यह नहीं चाहते कि मित्र सुग्रीव किसी भी प्रकार का खतरा मोल लें। उनके पास सुग्रीव को रोकने का दूसरा कोई मार्ग न होने से, वे सुग्रीव को शपथ दिलाकर रोकते हैं कि वह फिर कभी ऐसा दुस्साहस न करें[2]। यह असामान्य मैत्रीभाव की एक उत्कृष्ट प्रतिकृति है, जिसे कवि की भाषा शैली ने विशेष प्रभावी बना दिया है।

इसी प्रकार एक प्रसंग में लंका निकुम्भिला को ज्ञान देते हुए कहती है कि रावण-वध के पश्चात अब उसे घोर अभिचार कार्यों और निहित स्वार्थ वाले व्यवहारों की संकुचित भूमि से बाहर निकलकर महान यज्ञ क्षेत्र अर्थात् जन-कल्याण के कार्यों में उतरना चाहिये[3]। इन वाक्यों के मध्य कवि का सामान्य

- -

1. रामः – {आलिंग्य ।}

यैरारम्भि हृदि स्पृहा परिभवोत्तारे शरीरेऽपि मे
यानि द्रागनुमार्जयन्ति भरतानाश्लेषदुःखं चिरात् ।
दृष्ट्वा यानि समस्तबन्धुविरहक्लेशोऽपि न स्मर्यते
दिष्ट्या तानि मयाङ्गकानि सुहृदो लब्धानि दीर्घायुषः ।।

–अद्भुतदर्पणम् 3/19

2. रामः – वयस्य किं बहुना । मत्पादस्पृष्टिकया मा पुनरीदृशानि साहसानि कृथाः । – वही अंक 4 पृ 43

3. लंका – अतः परमावाभ्यामपि हतेषु राक्षसकुलेः "यथा राजा तथा प्रजा इति नीतिमनसृत्य सौम्यन्तरैरेव भवितव्यम् । त्वया घोराभिचारभूमिभावं परित्यज्य महायज्ञक्षेत्रभावविचारादुररीकर्तव्यः । – वही अंक 9 पृ 127

उद्धरण "यथा राजा तथा प्रजा" का नीतिवाक्य भी दर्शनीय है । इसी भाँति कवि अपनी शैली में अनेक स्थान पर उपदेशात्मक प्रक्रिया अपनाता रहा है ।

इस प्रकार कवि ने घटना संयोजन में सौष्ठव, दृश्यों के चित्रण में स्वाभाविकता और शब्द विन्यास में रोचकता का पक्ष ग्रहण करते हुए अपनी अद्भुत शैली के माध्यम से इस नाटक को दर्शनीय एवं पठनीय बना दिया है । उनकी भाषा में रोचकता एवं प्रवाह है, वर्णन में हृदयग्राही भावों का विन्यास है, जो पाठकों के मन को स्पर्श कर लेता है ।

नाटक में मानवीय संवेदनाओं का चित्रण

यद्यपि अद्भुतदर्पणम् नाटक वीर रस प्रधान होने के कारण एवं सर्वत्र युद्ध के संदर्भ को देखते हुए, कठोर भावनाओं की पृष्ठभूमि पर ही खड़ा हुआ प्रतीत होता है, तथापि सहृदय कवि ने लगभग सभी पात्रों की भावनाओं के अंकन में कुछ ऐसे प्रसंग प्रस्तुत किये हैं, जिससे उनके हृदय में उद्भूत विभिन्न मानवीय संवेदनाओं एवं भावों का प्रभावी रूप प्रदर्शित हुआ है । धीर-गम्भीर श्रीराम जैसे पात्र में, मानवीय संवेदनाओं के साथ उनके हृदय में छिपे हुए करुण प्रसंगों को लेकर जिस मर्मवेदना का चित्र कवि ने उपस्थित किया है, वह करुण रस को ही प्रमुखता देने वाले महाकवि भवभूति के द्वारा प्रस्तुत श्रीराम की मार्मिक वेदना से कम नहीं है । जहाँ भवभूति ने राम के हृदय रूपी पुटपाक में उबलते हुए करुण रस की घन वेदना को अभिव्यक्ति दी है[1], वहीं कविवर महादेव ने एक प्रसंग में श्रीराम के हृदय में परिघट्टित सीता के अपहरण तथा उनके विरह के शल्य की वेदना के प्रस्तुतीकरण में ततोऽधिक करुणा को प्रवाहित किया है[2]।

श्रीराम की मानवसुलभ संवेदना एक अन्य प्रसंग में भी उभरकर सामने आती है । जब लक्ष्मण रावण के पास दूत के रूप में अंगद के भेजे जाने पर आपत्ति प्रकट करते हैं, कि क्या दूत को भेजकर रावण के साथ संधि का प्रस्ताव किया जा रहा है, तब ये शब्द राम के हृदय को कितना अधिक मर्माहत कर जाते हैं, उस संवेदना को कवि ने बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है । यह जानते हुए भी

---

1. पुटपाक प्रतीकाशो रामस्य करुणोरसः ।

   -उत्तररामचरितम्

2. लक्ष्मणः - (स्वगतम् ।) कथं यदृच्छाविक्षिप्तेन चेतसा क्षणमिव समुज्ज्वलतो निरन्तराध्वसंवेगदारुणमामज्जकीलितमजानता मया पुनरपि परिघट्टितं हृदयशल्यमार्यस्य । -अद्भुतदर्पणम् अंक । पृ 10

कि लक्ष्मण के दूतप्रेषण के सम्बन्ध में विचार कितने अनर्गल हैं, सीता के सम्बन्ध में सन्धि हो भी कैसे सकती है । फिर भी राम क्रोध नहीं करते । वे केवल दीर्घनिःश्वास लेकर तथा चारों ओर देखकर, यह कहते हुए कि यहां कोई बाह्य जन नहीं है इसलिये मैं अपने मन का खेद निःशंक होकर कह रहा हूं कि जिसकी भार्या का शत्रु ने बलपूर्वक हरण कर लिया हो, वह उसके घर में चिरकाल से रह रही हो, ऐसे शत्रु के साथ पत्नी को पाने के लिये सन्धि की बात करना, यह सब तो राम के लिये जीते जी मर जाने जैसा है[1]। यह प्रसंग इतना मार्मिक था कि जितने लोग वहां उपस्थित थे वे सभी एक साथ "शान्तं पापम्" कह उठे ।

ऐसे ही अनेक प्रसंग श्रीराम की मनोव्यथाओं को व्यक्त करते हैं । सीता के अपहरण से वे केवल दुःखी ही नहीं होते अपितु लज्जित भी हैं । इस घटना से उत्पन्न अपयश और सीता के प्रति भविष्य में होने वाले लोकापवाद की चिन्ता से उनकी वेदना फूट पड़ती है । वे स्वगत कथन करते हैं कि शत्रुओं का सिर काट लेने पर भी, प्रमाद से होने वाला सीता का हरण और उससे उत्पन्न परिवाद कैसे नष्ट होगा[2]।

---

1. रामः - ‖निश्वस्य ।‖ अस्तु तावत् । ‖परितोऽवलोक्य ।‖ नास्ति अन्यत्र बाह्यो जनः । यतो निःशंकमावेद्यते हृदयखेदः ।
   परेण भार्या प्रसभं हृतेति सा तस्य गेहे सुचिरं स्थितेति ।
   तत्प्राप्तियत्नोऽपि च संधिनेति रामस्य जीवन्मरणान्यमूनि ।।
   — अद्भुतदर्पणम् 1/14

2. रामः - ‖स्वगतम् ।‖
   न्यक्कारस्य करिष्यते प्रतिकृतिः शत्रोः शिरःकर्तनै-
   र्वंशस्योन्मथनेन जातिहननैरन्येन वा केनचित् ।
   दृष्टिं कोणयतो मुखं नमयतो धिग्वीरगोष्ठीजुषः
   प्राप्तस्यास्य मम प्रमादजनुषो वाच्यस्य का निष्कृतिः ।।
   — वही 1/12

श्रीराम की सीता के प्रति सहज प्रेम की भावना पराकाष्ठा पर है। सीता की चर्चा मात्र से वे व्यथित हो जाते हैं। वे मन ही मन कह उठते हैं कि अरे हृदय नाम श्रवण मात्र से तू इतना व्याकुल क्यों हो जाता है। इसी प्रकार अद्भुतदर्पण मणि के माध्यम से जब वे पहली बार सीता को देखते हैं, तो उनका हृदय भर आता है, आंखों में अश्रु आ जाने से दृष्टि धूमिल हो जाती है और वे नेत्रों को सहज मानवीय उपालम्भ दे उठते हैं[1]। मित्र सुग्रीव के प्रति उनका मैत्री-भाव इस स्तर तक है कि वे किसी भी प्रकार सुग्रीव को खोने का साहस नहीं कर पाते। एक बार मायावी शम्बर के द्वारा सुग्रीव की मृत्यु की असत्य सूचना से वे अपना धैर्य भी खो देते हैं[2]। जब सुग्रीव को प्राप्त कर लेते हैं तो उनका हृदय भावविभोर हो जाता है। यहां उनकी भावुकता मानवीय संवेदना का चरमोत्कर्ष है[3]।

---

1. रामः - - - - - - - - -

   उपस्थिते लोचनयोरुत्सवेऽस्मिन्भ्रमानयोः।

   हा हन्त बाष्पसारो यन्नाधाप्युज्झति वैरिताम्॥ -अद्भुतदर्पणम् 6/18

2. रामः - अलमलमतः परं कथितेन। ननु सफलामर्थस्तारेयः। (सावेगम्।)

   हा महाराज, हा मम प्रतिज्ञामहार्णवकर्णधार, हा मम त्रैलोक्यसाधनमहामात्य,

   हा मम दुर्जातबन्धो, हा सर्वप्रकाररामप्रयवयस्य, वानरेन्द्र।

   तैस्तैस्ते साहसारम्भैर्दूयमानेन चेतसा।

   यत्तदाशंकितं पापं तस्य जड़ो विनिश्चयः॥

   (इति धनुरवलम्ब्य विह्वलस्तिष्ठति।) - अद्भुतदर्पणम् अंक 2 पृ. 26, 2

3. यैरारम्भि हृदि स्पृहा परिभवोत्तारे शरीरेऽपि मे

   यानि द्रागनुमार्जयन्ति भरतानाश्लेषदुःखं चिरात्।

   दृष्ट्वा यानि समस्तबन्धुविरहक्लेशोऽपि न स्मर्यते

   दिष्ट्या तानि मयांगकानि सुहृदो लब्धानि दीर्घायुषः॥

   - वही 3/19

यही नहीं सीता के प्रति परम स्नेही होते हुए भी उनका हृदय समाज में अपवाद फैलने के भय से चिन्तित है। उनके हृदय के बीच एक द्वन्द्व चल रहा है। राम और राजा राम के बीच संघर्ष की सी स्थिति है। राजा होने के नाते सूर्यवंश की परम्परा और प्रजा के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए, अपवादों के मध्य सीता की रक्षा कैसे कर पाएंगे और एक पति के रूप में अपनी निरपराध प्रिया को कैसे छोड़ पाएंगे, यह द्वन्द्व इस नाटक में यत्र-तत्र कई स्थानों पर परिलक्षित हुआ है।

उद्धत भाव सम्पन्न लक्ष्मण जैसा पात्र भी अपने अन्तरमन में कोमल भावनाएं छिपाए हुए है। शौर्य एवं दर्पपूर्ण उद्‌गारों के मध्य कई ऐसे संवेदना के क्षण भी आये हैं, जहां लक्ष्मण का कठोर हृदय भी नवनीत के समान कोमल दिखाई पड़ा है। नाटक के प्रथम दृश्य में ही लक्ष्मण अपने उद्धत स्वभाव के कारण अंगद को लंका भेजे जाने के प्रसंग में अनेक रोषपूर्ण वाक्यों से राम पर व्यंग्यबाणों की वर्षा तो करते हैं, किन्तु जब वे भाई की निरीह मुखमुद्रा देखते हैं तो उन्हें प्रतीत होता है कि भ्राता के हृदय में रावण द्वारा किए गये अपमान का शल्य छिद रहा है। इसी प्रसंग में जब श्रीराम अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए, रावण के साथ सन्धि की बात को जीवित ही मरण जैसा बताते हैं तो लक्ष्मण का हृदय पिघल जाता है। उपर से तो वे यही कहते हैं कि आर्य अपनी आत्मा को अस्थान पर गर्हित न करें, किन्तु मन में वे स्वयं को दोषी मानते हैं और स्वगत कहते हैं कि भ्राता की मज्जा तक गड़े हुए वेदना के इस शल्य को मैंने सचमुच ही रगड़ दिया है[1]। श्रीराम द्वारा

---

1. लक्ष्मणः – (स्वगतम्।) कथं यदृच्छाविक्षिप्तेन चेतसा क्षणमिव समुच्छ्वसतो निरन्तराबद्धावेगदारुणमामज्जकीलितमजानता मया पुनरपि परिघट्टितं हृदयशल्यमार्यस्य। (प्रकाशम्।) आर्य, नार्हसि महार्हमात्मानमस्थाने गर्हितुम्।

–अद्‌भुतदर्पणम् अंक। पृ० 10

स्वयं की भर्त्सना किये जाने पर उन्हें बहुत दुःख होता है[1]।

इसी प्रकार लक्ष्मण की विनम्रता एवं सेवा की भावना राम को सम्भालने एवे धैर्य बंधाने में कई स्थानों पर परिलक्षित हुई है[2]। सुग्रीव के मिथ्यावध प्रसंग से पीड़ित श्रीराम को त्रिकूट पर्वत पर ले जाते हुए उनके मन में संवेदना तो है ही, किसी प्रकार श्रीराम को अभीष्ट स्थान पर ले आने के कारण वे मन ही मन हर्षित भी हैं। भ्राता की वेदना उन्हें सदैव पीड़ित करती रहती है। वे अपने वेदनापूर्ण हृदय से श्रीराम की कदर्थित सी स्थिति का एक बिम्बमय दृश्य प्रस्तुत करते हैं। यहां वे श्रीराम की उपमा एक प्रतिपत्ति-शून्य मन्द पदगामी गजराज से देते हैं[3]। राम के विनोदार्थ ही वे त्रिकूट पर्वत तथा वहां से दिखाई पड़ने वाली लंका एवं सागर के जिस दृश्य का वर्णन करते हैं, उससे उनका वो औद्धत्यपूर्ण चित्र बिल्कुल अलग हो जाता है और वे एक सहृदय

- -

1. लक्ष्मणः - - - - - -

   किंतु न्यंगतयावबुध्य तदिदं लज्जान्धकूपे चिरा-

   दुत्थाने खलु ताम्यता ननु वदाम्यार्येण दूयामहे ।।

   -अद्भुतदर्पणम् 1/16

2. लक्ष्मणः - आर्य, समाश्वसिहि समाश्वसिहि। नन्वतिक्रामत्यवसरो धैर्यं प्रकाशयितुम्।

   नष्टश्चेद्विपदादर्शः कुत्राभिव्यज्यतां धृतिः।

   न चेन्नैशं तमस्काण्डं को वेद ज्योतिरोषधेः ।।

   - वही 2/19

3. लक्ष्मणः - (स्वगतम्। सहर्षोत्साहम्।) नन्वसावार्यः

   मन्दं पदानि हि ददत्प्रतिपत्तिशून्या-

   न्यादीपितो हृदि रुषा मुहुरुत्कयेव।

   क्षुद्रैरनुक्षणकदर्थिततयापि गत्या

   प्राप्तव्यदेशमिभराडिव नीत एव ।।

   - वही 4/1

व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत होते हैं[1]।

नारी पात्रों में, रावण के अन्तःपुर स्थित अशोकवाटिका में राक्षसियों से घिरी, पतिवियुक्ता सीता की संवेदनाओं का चित्रण कवि ने कई प्रसंगों में प्रस्तुत किया है । नाटक में इससे सम्बन्धित प्रथम दृश्य का अवतरण, सीता के सम्मुख शूर्पणखा द्वारा लाए गये राम के कटे हुए मायामय शीर्ष के दर्शन के माध्यम से होता है । सीता की घनव्यथा तथा राम के प्रति अनन्य स्नेह इस सीमा तक है कि वे इस भीषण दृश्य को देखते ही संज्ञाशून्य हो जाती हैं । वे होश में भी तभी आती हैं, जब त्रिजटा उनके कान में उनके द्वारा वर्णित एक प्रणय-प्रसंग को कहती है । इस प्रसंग के माध्यम से कवि ने सीता के अनन्य प्रेम की भावना को नाटक में प्रस्तुत किया है । यहाँ कवि ने सीता की नारीसुलभ लज्जा का सुन्दर अंकन किया है[2]।

राम के प्रति प्रगाढ़ प्रीति होने पर भी उनमें नारीसुलभ भावना इतनी तीव्र है कि वे राम-रावण युद्ध में अपनी मुक्ति के लिये किए जाने वाले प्रयासों में,

- -

1. लक्ष्मणः - -

प्रागुष्णीष इव त्रिकूटशिखरे व्यालोकितो रेखया
लंकायाः वरणः स एष हि भवत्यश्रान्तिहैः संक्रमैः ।
यश्च ग्रस्तहरित्स एष जलधिर्लेखावशिष्टाकृतिः
कौशेयीकृत इवासितोत्तरपटः शैलस्य संलक्ष्यते ।।

-अद्भुतदर्पणम् 3/4

2. त्रिजटा - ननु मनःशिलातिलककल्पनफलकपोलचुम्बनं लज्जालुकयापि मयार्यपुत्रस्यैकवारमप्रतिषिद्धमासीदिति त्वयैव कथितवचनाभिज्ञानं धारयन्ती किं सेऽहं सत्यं त्रिजटास्मि । अथवाहमपि ते माया ।

सीता - (समाश्वस्य सलज्जं त्रिजटामालिंग्य ।)

प्रियसखि, किमिति मां लज्जालुकां भूयोऽपि लज्जयसि ।

- वही अंक 5, पृ 62

पति की क्षणिक शिथिलता भी उन्हें क्षुब्ध कर देती है। उनकी व्यग्रता उनके शिष्ट उपालम्भ से स्पष्ट हो जाती है[1]। इसी प्रसंग में वे लक्ष्मण के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाती हैं क्योंकि लक्ष्मण समस्त युद्धनियमों को ताक पर रखकर सीतामुक्ति के लिये युद्ध करने को उत्तेजित हैं[2]। इन प्रसंगों में सीता की मानवीय संवेदनाओं का सुन्दर निदर्शन हुआ है।

प्रतिपक्षी पात्रों में यद्यपि सामान्य रूप से सभी पात्र राक्षस प्रवृत्ति के हैं, उनमें उग्रता है, वे अत्याचारी प्रवृत्ति का समर्थन करते हैं तथा उनके कथोपकथन में भीषण संवाद की प्रक्रिया है, तथापि नाटक में अनेक ऐसे स्थल आए हैं जिनमें उनके हृदय की भी सहज मानवीय भावनाएं व्यक्त हुई हैं। यहां तक कि रावण भी अपने पुत्र और भ्राता के वधोपरान्त इतना संवेदनशील हो जाता है कि उसे राज्य और प्राण तो व्यर्थ लगते ही हैं किन्तु जिस सीता को प्राप्त करने के लिये इतनी बड़ी विनाशलीला उपस्थित कर दी इस समय उसे वह सीता भी व्यर्थ प्रतीत होती है[3]।

इसी प्रकार राक्षस नारी पात्रों में, प्रतीक रूप में प्रस्तुत लंका, सहज

---

1. सीता – सखि सरमे, रणकुतूहल्यार्यपुत्रः। न पुनः सीतापेक्षाकुतूहली।

   –अद्भुतदर्पणम् अंक 8 पृ 119

2. सीता – (सहर्षम्।) सखि सरमे, ईदृशेन वत्सलक्ष्मणस्य रोषावेशेन प्रमार्जित इव मे हृदयमन्युः।

   – वही अंक 7 पृ 88

3. रावणः – – – –

   किं राज्येन किमसुभिः किं न्वनया सीतया वा मे।
   यन्मम सर्वप्राणौ यातौ वत्सौ विमुच्य मां क्वापि॥

   – वही 8/42

संवेदनशील नारीपात्र है। रावणवध के पश्चात् जब वह निकुम्भिला को यथाराजा तथाप्रजा का उपदेश देते हुए उसे जनभावना का आदर करने की सीख देती है तो यह प्रसंग अत्यन्त मर्मस्पर्शी बन जाता है[1]। यही नहीं निकुम्भिला जैसी नारीपात्र जो कि मेघनाद के युग में उसके अभिचार क्रियाओं की महत्त्वपूर्ण स्थली थी तथा आज भी एकमात्र अपने स्वामी मेघनाद में ही अनुरक्त है, वह भी अन्त में हताश होकर जब सीतादेवी के पादमूल में जाने को तत्पर हो जाती है तो वहां पर उसकी मर्मवेदना दर्शनीय है[2]।

कवि ने नाट्यपरम्परा को जीवित रखने वाले रंगमंचकर्मियों के हृदय की पीड़ा को भी विदूषक के माध्यम से व्यक्त किया है। जहां सूत्रधार यह कहता है कि तुम्हें रावण के नर्मसुहृद महोदर की भूमिका निभानी है इसलिये मोदकों का पारितोषिक दे दिया गया है, तब एक बार तो विदूषक के मुख पर प्रसन्नता की झलक आ जाती है और वह कहता है कि "तो आज हमको नाचना है" किन्तु फिर वह हर्ष का प्रकाश एकदम लुप्त हो जाता है तथा अपनी मनोव्यथा को प्रकट करते हुए वह कह उठता है, "हम नटों की तो ऐसी ही दुर्जीविका है।"[3] विदूषक का

---

1. लंका - अतःपरमावाभ्यामपि हतशेषैः राक्षसकुलैः "यथा राजा तथा प्रजाः" इति नीतिमनुसृत्य सौम्यन्तरैरेव भवितव्यम्। त्वया घोराभिचारभूमिभावं परित्यज्य महायज्ञक्षेत्रभावचिरादुररीकर्तव्यः। - अद्भुतदर्पणम् अंक 9 पृ। 27
2. निकुम्भिला - नन्वधा परित्यक्तरावणपक्षातयोरावयोरेषोऽन्योन्यसंवादो-ऽप्यपराधमिवावहति। तत्सीतादेव्या एव पादमूलं गच्छावः। -वही अंक 9 पृ। 133
3. विदूषकः - तव नान्दी वा ब्राह्मणसेवा वा भवतु मंगलं किमपि।
   मम पुनर्मंगलमेतल्लब्धा मोदका अनेन॥

   सूत्रधारः - सखे रोमन्थक अद्य किल लंकेश्वरनर्मसुहृदो महोदरस्य भूमिका निष्प्रमादमभिनेतव्येति प्रागेव दत्तं ते मोदकपारितोषिकम्।

   विदूषकः - कथमद्य नर्तितव्यम्। अथवैद्वयेव दुर्जीविका शैलूषोपजीवकानाम्।

   -वही 1/4 पृ। 2

यह कथन उस युग के नाट्यकलाकारों की दुर्दशा को सर्वथा प्रतिबिम्बित करता है ।

इस प्रकार कवि ने सजीव दृश्यों के वर्णन में काव्यसौन्दर्यजगत के अन्तः एवं बाह्य तत्त्वों का मर्मस्पर्शी वर्णन तो किया ही है किन्तु अन्तर्जगत का तो कवि जैसे कलाकार ही है । पूरे नाटक में बाह्यजगत के सौन्दर्य एवं प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन का तो प्रायः अभाव सा ही है किन्तु मानव के अन्तर्जगत के उद्दीप्त मनोभावों के सजीव चित्रण में कवि सिद्धहस्त प्रतीत होते हैं । इस प्रकरण में इन मनोभावों के कुछ प्रमुख दृश्यों का ही उल्लेख किया गया है, किन्तु नाटक के समस्त प्रसंग कवि की प्रौढ़ वर्णना शक्ति के प्रभाव से मानो सजीव हो उठे हैं ।

अद्भुतदर्पणम् का सामाजिक एवं राजनैतिक दर्शन

साहित्य समाज का दर्पण होता है । समाज की अवधारणाओं, प्रक्रियाओं एवं सामयिक गतिविधियों से जो साहित्य प्रभावित होता है, वस्तुतः वही साहित्य होता है । अथवा समाज की सभी प्रचलित गतिविधियों की झलक जिसमें दिखाई दे, वहीं साहित्य होता है । समाज से कटकर जो रचना होती है, वह किसी भी युग में स्वयं को महत्त्वपूर्ण नहीं सिद्ध कर पाती । कवि महादेव की यह कृति कथानक के आधार पर प्राचीन युग की रामकथा से सम्बन्धित है तथापि कवि ने जिस समाज में, जिस काल में जन्म लिया है उसका प्रतिबिम्ब यत्र-तत्र खोजा जा सकता है ।

धार्मिक परिदृश्य, विशेषतः श्रीराम को विष्णु का अवतार मानकर रामकथा का वर्णन [1], कवि के वैष्णव होने का संकेत देता है किन्तु साथ ही नान्दी में विष्णु का स्तवन तथा प्रस्तावना में यज्ञ का विधान[2] आदि प्रकरण इसकी स्पष्ट परिपुष्टि करते हैं । इसके साथ ही कवि ने चराचरगुरु भगवान महेश की वन्दना के शब्द भी प्रस्तावना में सूत्रधार के माध्यम से प्रस्तुत किये हैं[3]। इस वर्णन से यह प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में भगवान त्रिविक्रम वामन, शारदा, शिव तथा विष्णु जैसे पुराणप्रतिष्ठ देवताओं की पूजा अर्चा पूर्णरूपेण प्रचलित थी ।

---

1. देवोऽभावित्ति शैलयापदलने सान्यतो योऽभव-
   त्क्षारेर्विजये पुनः परिमितो विष्णुः शिवो वेति यः ।
   सोऽयं दाशरथौ हठोपनमतस्ताक्ष्यस्य साक्षात्ततः
   साचिव्ये सति हन्त विष्णुरिति मे तर्कः प्रसादं गतः ।। -अद्भुतदर्पणम् 5/4

2. सूत्रधारः - नन्वेत एव महाब्राह्मणाः संततयजमानतया निरुद्धयजमानशब्दा-
   स्तत्रभवतश्चराचरगुरोरैरावताराधितचरणारविन्दस्य भगवतः परमेश्वरस्य परि-
   संनिधानमुपक्रान्तविविधमहाक्रतु निमंत्रितानामनेकदेशान्तरसमागतानामखिल-
   कलाकलापनिकषाणां - - - - - ।

यद्यपि दक्षिण में शैव एवं वैष्णव सम्प्रदायों के मध्य कुछ विरोध की भावनाएं रही हैं किन्तु कवि ने दोनों सम्प्रदायों के देवों की आराधना के स्वर मुखरित कर साम्प्रदायिक सद्भाव एवं समन्वय पर ज़ोर दिया है ।

उस युग में विशाल यज्ञों का सम्पादन सामान्यतया होता था । इन यज्ञसत्रों के मध्यान्तर में, यजमान तथा प्रतिष्ठित पुरोहित एवं विद्वानों के मनोरंजनार्थ नाट्य कलाकारों के द्वारा नाटकों का अभिनय किया जाता था । कवि ने अपने नाटक की प्रस्तावना में ऐसे ही एक प्रसंग का उल्लेख किया है जिसके अन्तर्गत उनके नाटक अद्भुतदर्पणम् का मंचन हुआ[1]। इतना होने पर भी सामान्य नटों का जीवन सम्भवतः सुखद नहीं था । नाटक की प्रस्तावना में प्रस्तुत विदूषक के शब्दों में उसकी यह मार्मिक वेदना व्यक्त हुई है[2]। सम्भवतः हास्यक्रीडा दिखाने वालों को भी समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता था । यह बात वानर का मायावी रूप धारण करने वाले शम्बर के शब्दों से व्यक्त होती है, जहां वह यह कहता है कि उस जाति को धिक्कार है जो केवल सभी के हास्य की हेतु है[3]।

- -

1. सूत्रधारः - (सस्मितम् ।) नन्वध्वरशोभायै वयमाहूताः ।

- - - - - - - - -

सूत्रधारः - स किल बालवत्सुलभेन चापलेन कविगणनामिच्छन्नाटकमिति यदेतदभिनवमभिनिर्वर्तितवान् तदद्य कर्मान्तरेषु युष्माभिः प्रयुज्यमानमार्या यावत्परिशोधयन्तीति । - अद्भुतदर्पणम् अंक 1, पृ. 4

2. विदूषकः - कथमद्य नर्तितव्यम् । अथवेदृश्येव दुर्जीविका शैलूषोपजीवकानाम् ।
- वही अंक 1, पृष्ठ 2

3. शम्बरः - - - -

धिग्जातिरीदृगपि जीवति जीवलोके

हासाय केवलमशेषजगज्जनानाम् ।

- वही 1/21

उस समय नारियों के सम्बन्ध में अपयश का भय समाज में पूर्णतः व्याप्त था । किसी भी स्त्री के लिये परगृहवास का लांछन दुस्सह होता था । रामरूप-धारी मय के द्वारा सीता पर इस प्रकार का लांछन लगाए जाने से, क्षुब्ध सीता का अग्नि में प्रवेश कर जाना इसी स्थिति का संकेत है[1]। नाटक की प्रस्तावना में भी कवि ने समाज की इस कुत्सित मनोवृत्ति को इंगित किया है[2]। सामान्य प्रजा ही नहीं अपितु शासक भी इस भय से शंकित रहते थे[3]।

समाज में प्रतिशोध लेने की भावना भी सम्भवतः अतिसामान्य थी । यही कारण है कि मायावी शम्बर के द्वारा जब अंगद के हाथों सुग्रीव की हत्या का मिथ्या समाचार दिया जाता है तो श्रीराम को कोई आश्चर्य नहीं होता । यही नहीं वे अंगद के समय पर विकृत होने तथा उसके क्रोध के सफल होने की सराहना

---

1. अहो बत देवी सीता
   मदान्धरक्षोगृहवासदोषशंकानुषक्तेन रघूद्वहेन ।
   त्यक्ता समक्षं महतो जनस्य त्यजत्यहो देहमियं हुताशे ।।
   – अद्भुतदर्पणम् 10/9

2. आशंकिते सकृदसत्यपि वाच्यलेशे स्वस्त्रीसुतेष्वपि जनैः परिशोधनानि ।
   शुद्धिप्रकर्षपिशुनान्यनुमन्यमाना मध्यस्थतापि ममतैव सतां विमृष्टा ।।
   – वही 1/6

3. रामः – {निःश्वस्य स्वगतम् ।}
   प्रागेव सीतां जानेऽहं पश्यामि च तथैव ताम् ।
   किंतु लोकस्य हृदये किमस्तीति विचिन्तये ।।
   रामः – – – – – –
   प्रागेव ज्ञातवृत्तायां प्रस्तुतानुगुणा कथा ।
   किं तु लोकप्रमाणा हि कृत्येष्विक्ष्वाकवो नृपाः ।।
   – वही 6/27, 7/5

भी कर उठते हैं[1]।

राजपरिवारों में भी ज्ञाति द्वेष चरम सीमा पर था। इस सम्बन्ध में श्रीराम का कथन दर्शनीय है जहां वे कहते हैं कि चाचा के प्रति राजपुत्रों में अधिकारों की समानता को लेकर स्वाभाविक ही द्वेष होता है[2]। कुप्रवृत्ति वाले राजा तो राज्याधिकारों के लिये अपने भाई को पुत्रपक्षपात के कारण अपमानित करने से नहीं चूकते थे। मय तथा माल्यवान् के संवाद में रावण एवं विभीषण के उदाहरण के माध्यम से कवि ने इस दुष्प्रवृत्ति को भी प्रकाशित किया है[3]। यही नहीं शम्बर के कथन के द्वारा कवि ने यह भी स्पष्ट किया है कि उस

---

1. रामः -------

मथ्नाति सहजं शत्रुं स्वं चावर्जयते कुलम् ।
कण्टकश्चोपमृद्नासि काले साधु प्रगल्भसे ।।
अभ्यस्त एष बहुशोऽतिविनीतवृत्ति-
रय त्वपूर्वम् इव हन्त विचेष्टते यत् ।
तज्जोषमेव सकलं हृदि मर्षयन्तः
कार्यार्थिनो हि समये सति विक्रमन्ते ।।

-अद्भुतदर्पणम् 3/9, 13

2. रामः - किमाश्चर्यमार्यस्य ।

पितृव्ये राजपुत्राणां प्रकृतिद्वेषो विशिष्यते ।
आनन्तर्यस्य यत्साम्यमभ्यसूयापदं हि तत् ।। - वही 1/24

3. रक्षः श्रीयुवराजभावसमता निष्पन्नयासूयया
तस्मिन्निन्द्रजिता मुहुः प्रकटितं यद्वैरमत्यूर्जितम् ।
तद्गूढं परिवर्धयन्दशमुखस्तैस्तैर्भयोपक्रमै-
र्बन्धुश्रीर्भ्रमिया विहाय निधनं व्युत्थानमस्मै हत ।। - वही 5/15

समय राज्य के लोभ से पिता और भाइयों को राज्य से निष्कासित ही नहीं किया जाता था अपितु पुत्रों तक की हत्या कर दी जाती थी[1]।

उच्चवर्ग के लोगों का रहन-सहन ऐश्वर्यशाली था । स्त्रियाँ शिबिका में बैठकर वेत्रपाणि संरक्षिकाओं के साथ चला करती थीं । मार्ग से भीड़ को हटा दिया जाता था । सीता को ले जाने की प्रक्रिया से इसका स्पष्ट संकेत मिलता है[2]।

राजनीति के प्रसंगों में भी कवि की इस रचना में अनेक विशेषताओं की अभिव्यक्ति हुई है । अत्याचारी एवं क्रूर शासक के द्वारा बलपूर्वक अपहरण की गई सम्पत्ति को न्याय एवं धर्मशील राजा द्वारा पुनः लौटा दिया जाता था । रावण-वध के पश्चात विभीषण के द्वारा दिग्पालों की सम्पत्ति का लौटा दिया जाना, इस प्रकार की तत्कालीन व्यवस्था का सूचक है[3]।

- -

1. पुत्रान्घ्नन्ति विवासयन्ति च पितॄन्भ्रातॄंश्च राज्येच्छया
   राज्ञामेष कुलक्रमस्तदधुना किं कुर्महे क्षम्यताम् ।

   -अद्भुतदर्पणम् 3/13

2. लंके वेत्रकरा पुरश्चर झटित्युत्सारयन्ती जना-
   न्सर्वांश्चाम्ब निकुम्भिले त्वमभितः संमर्दमामर्दय ।
   देव्या मैथिलकन्यया च शिबिकामध्यासिता पार्श्वयो-
   रालम्ब्य त्रिजटा स्वयं च सरमाप्यध्यक्षिते रक्षताम् ।।

   - वही 9/20

3. यद्यद्दिक्पालकेभ्यः प्रसभमपहृतं रावणेनार्थजातं
   तत्तत्तेभ्यो यथास्वं भवदनुमतितः प्रेषितं सर्वमेव ।
   एतत्तु स्वामिचित्तानुगुणगतिगुणं पुष्पकं नाम यानं
   स्वीकर्तुं प्रेषितुं वा पुनरपि धनदायैव देवः प्रमाणम् ।।

   - वही 10/25

युद्ध के प्रसंगों में भी इस नाटक के माध्यम से, कुछ तत्कालीन युद्धनियमों की झलक मिलती है जैसे – युद्ध में अपने सैनिकों को परिचय के लिये संकेत –मुद्रा देने की प्रथा थी[1]। शत्रु के प्रति शान्त रहना उसको बढ़ावा देना समझा जाता था। निरायुध तथा निःशस्त्र पर वार करना निषिद्ध था,[2] किन्तु चोर किसी भी प्रकार दण्डनीय था[3]।

युद्ध समाप्ति के बाद बन्दियों को मुक्त करने के आदेश निर्गत होते थे। प्रजा को निर्भय किया जाता था एवं भग्नावशेषों का उद्धार किया जाता था[4]। प्रजा

---

1. अनलः – ततश्च प्रागेव संग्रामावतरणात्किमपि संकेतितव्याः सर्वे सैनिका इति।
   –अद्भुतदर्पणम् अंक । पृ 14

2. निषिद्धमेतत्प्रागेव रणकर्म निरायुधे। – वही 6/29

3. श्रान्तो मूढः क्षपितसचिवोऽनायुधो विद्रुतो वा
   चोरो हि त्वं दशमुख ततः सच एवासि दण्ड्यः। – वही 8/21

4. लंकारोधात्कपीनां विरमतु पृतना राक्षसेषु प्रहारः
   सज्जोऽपि त्यज्यतां सेऽव्यपजितचकिताः प्रद्रुताः सान्त्वनीयाः।
   स्कन्धावारे पुरे वा भवतु च परितः संचरो निर्निरोधो
   लंका यातु प्रसादं पुनरपि च यथा मन्त्रमुक्ताब्धिवेला॥
   स्पर्धारब्धोऽपि सद्यः कपिपिशिताशुभां संगरः शान्तिमेतु
   प्रीतिश्चान्योन्यमेषामविरतमयतामृद्धिमधोमयेषाम्।
   यो यो रुद्धः स सद्यः कपिषु निशिचरेष्ववर्ज्यतां मुच्यतां वा
   लंकाकिष्किन्धयोर्यद्भवतु तिरकरोदैकराज्यप्रसादम्॥
   – वही

   प्राकारगोपुरगृहोपवनप्रतोली-
   भागेषु भग्नविषमाणि समीक्रियन्ताम्।
   – वही 9/15, 16, 18

भी स्वाभाविक ही नवीन राजा के प्रति स्वयं को ढाल लेती थी, लंका एवं निकुम्भिला के संवाद के माध्यम से इस बात का भी संकेत मिलता है[1]।

इस प्रकार कवि ने तत्कालीन सामाजिक एवं राजनैतिक अवस्था एवं व्यवस्था को अपने इस नाटक में स्वाभाविक अभिव्यक्ति दी है ।

---

1. चिरपरिचितराजव्यत्यये पत्तनानां
   ननु भवति नवीने राज्ञि कोऽपि प्रकारः ।
   तदपि तदनुजन्मा यन्मया च त्वया च
   प्रकृतिषु निजसीमापालनात्पालनीयः ।।

   यक्षाधिराजकलिता स्थितिरावयोर्हि
   रक्षोऽधिराजभुजपालनविस्मृता भूत्
   तद्धर्मभृद्धविभीषणपालनेन
   सर्वोऽप्ययं शममुपैष्यति नौ विषादः ।।

   — अद्भुतदर्पणम् 9/8, 9

सप्तम अध्याय

उपसंहार

1. नाटक की संक्षिप्त समीक्षा ।

2. रचना का उद्देश्य एवं सन्देश ।

सप्तम अध्याय

उपसंहार

[नाटक की संक्षिप्त समीक्षा]

मानव मन अपने जीवन के परिवेश में सदा असामान्य देखने के लिये उत्सुक रहा है। अनदेखे चमत्कार, अनहोने रहस्य और अलौकिक चरित्र उसे न केवल चकित ही करते रहे हैं अपितु अनेक भावों के उतार-चढ़ाव के साथ एक आनन्दानुभूति भी प्रदान करते रहे हैं। वे चाहे अपने दैनिक जीवन में सामने प्रदर्शित जादूगरों के तमाशे हों या पुराणों में वर्णित अवतारी महापुरुषों और ऋषिमुनियों के शाप, वरदानों से उद्भूत चमत्कार। चाहे अहल्या का उद्धार हो या शिव का दश सहस्र राजाओं द्वारा न हिलने वाला पिनाक, जो राम के हाथ में आते ही मृणालदण्ड के समान भंग हो गया, सभी मानवमन में एक अद्भुतरस को जन्म देते रहे हैं।

यही कारण है कि महाकवियों ने अपनी रचनाओं में जिन विशिष्ट अंगी या अंगभूत रसों की उद्भावना की है उनमें यदि कहीं अलौकिक चमत्कार का वर्णन हुआ है तो सामाजिकों ने उसे विशेष आनन्द से ग्रहण किया है। हमारा आलोच्य ग्रन्थ अद्भुतदर्पणम्, उसके रचनाकार कवि, सहृदय मनीषी महादेव के हृदय से उद्भूत एक ऐसी रचना है जिसमें धीरोदात्त राम जैसे प्रधान नायक और वीररस की प्रधानता होने पर भी किसी प्रासाद में की गई रत्नों की पच्चीकारी की भाँति अद्भुत दृश्यों को कथानक के साथ सजाया गया है। उन्होंने इस रचना को असामान्य रूप से सामाजिकों के लिये रुचिकर एवं हृदयग्राही बना दिया है।

अपनी बुद्धि की पिटारी खोलकर कवि ने नाटक में न केवल चमत्कारी पात्र ही प्रस्तुत किये हैं अपितु उनके माध्यम से मायामय चमत्कारों का नाटक के अन्तर्गत कुछ ऐसा ताना-बाना बुन दिया है कि सामान्यजन के हृदय में सरल गति से प्रवेश करने वाली रामकथा उसके मन के धरातल को प्रकम्पित कर देती है। बुद्धि के सूक्ष्म तन्तुओं को झंकृत करती हुई अन्तश्चेतना में समा जाती है।

मायावी शम्बर, कवि द्वारा रचित एक ऐसा ही अद्भुत पात्र तो है ही साथ ही कवि की अद्भुतदर्पण नामक मणि की उद्भावना ने तो पूरे कथानक को ही एक नया आयाम दे दिया है जिसके माध्यम से दूर बैठे राम-लक्ष्मण न केवल रावण, सीता आदि को देख रहे हैं अपितु उनके एकान्त जीवन में, हृदय से निकले हुए उद्गारों को भी ग्रहण कर रहे हैं। इसी प्रकार माया-नाटिका की उद्भावना ने सीता के सम्मुख युद्ध की समस्त प्रक्रिया को चलचित्रवत सजीव कर दिया है।

कवि ने अपनी कल्पना को मूर्तरूप देकर अवतीर्ण करने के लिये जिस सुदृढ़ धरातल का चयन किया, वह था सार्वभौमप्रतिष्ठासम्पन्न रामचरित्र का कथानक। उसके अन्तर्गत भी युद्ध की पृष्ठभूमि, जहाँ ऐसे छल-बल सम्पन्न मायावी चरित्र सर्वाधिक सार्थक हो जाते हैं, साथ ही कथानक के अन्तिम प्रसंगों में कथा की चरम परिणति फलप्राप्ति भी स्वरूप ग्रहण कर लेती है।

नाटकीय संवाद शैली, कथोपकथन के माध्यम से ऐसे कथानकों एवं चरित्रों को विशेष बल प्रदान करती है अतः कवि द्वारा अपनी रचना में अद्भुत भावों के सशक्त एवं प्रभावी प्रस्तुतीकरण के लिये दृश्यकाव्य का आधार ग्रहण किया गया है। कवि ने अपने अद्भुत दृश्यों को सर्वथा प्रभावी बनाने के लिये कालापेक्षिता का इतना अधिक ध्यान रखा है कि उसमें एक के पश्चात् द्वितीय की उपस्थिति स्वाभाविक जैसी ही प्रतीत होने लगती है। जैसे कि जाम्बवान् के द्वारा दधिमुखवेशधारी मायावी शम्बर को पकड़े होने पर भी पत्र पढ़ने के कारण थोड़ी देर के लिये हाथ से मुक्त करना पड़ता है और ठीक उसी समय असली दधिमुख के भी उधर पहुँचने की परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिसका मायावी शम्बर तत्काल लाभ उठा लेता है। इस प्रकार वह स्वयं तो गुप्त हो जाता है और जाम्बवान् की पकड़ में असली दधिमुख आ जाता है। ऐसे ही अनेक दृश्य अद्भुत भावों को नाटक में प्रभावीस्वरूप प्रदान करते देखे जा सकते हैं।

इन अद्भुत दृश्यों की रचनाशैली से कवि इतना अधिक प्रभावित प्रतीत होता है कि उसने नाटक का नामकरण ही अद्भुतदर्पणम् कर दिया है । इस नाम से न तो रामकथा की ही झलक प्राप्त होती है और न ही रावण के किसी वैशिष्ट्य की । केवल कवि की अपनी कल्पनाप्रसूत मणि ही इसमें सर्वथा अपना महत्त्व रखती हुई प्रतीत होती है । इससे कवि की मनोभावना का उद्देश्य स्पष्टतया परिलक्षित होता है, कि वे रामकथा के माध्यम से अपने चमत्कारिक रचनाकौशल को इस नाटक में मूर्त रूप प्रदान करने के लिये उत्सुक हैं, जिसमें वे सर्वथा सफल रहे हैं ।

यद्यपि अद्भुतदर्पणम् में कहीं-कहीं पूर्ववर्ती नाटकों का प्रभाव परिलक्षित होता है, पर वह प्रभाव न होकर शैली-साम्य ही कहा जा सकता है । जैसे - वेणीसंहार के पात्र भीम से इस नाटक के सर्वथा उग्र पात्र लक्ष्मण की प्रकृति की समानता है । ऐसे ही अद्भुतदर्पण की मायानाटिका पर उत्तररामचरित के गर्भांक की छाया प्रतीत होती है पर मायानाटिका की शैली अपना अलग ही वैशिष्ट्य रखती है, जिसे अद्भुतदर्पण नामक मणि एकदम अलग एवं एक निखरा हुआ स्वरूप प्रदान करती है ।

इसी प्रकार नाटकीय रंगमंच पर प्रस्तुत करने के लिये कवि ने पात्रों के चयन में जिस प्रतिभा का परिचय दिया है, उसकी जितनी प्रशंसा की जाए वह कम ही है । रामायण जैसी प्रसिद्ध कथा के प्रमुख पात्रों को रंगमंच पर लाने के लिये कोई कवि किसी प्रकार की कंजूसी करने की भला कैसे सोच सकता था, किन्तु पाठक एवं दर्शक को यह देखकर आश्चर्य होता है कि अद्भुतदर्पण के दृश्यों में रामायण के प्रमुख पात्र- हनुमान, अंगद, कुम्भकर्ण, मेघनाद तो एकदम अदृश्य हैं और युद्ध में अपनी विशिष्ट भूमिका रखने वाले विभीषण भी नाटक के अन्त में मात्र एक ही दृश्य में उपस्थित हुए हैं ।

कवि की यह भी विशेषता देखिये कि इनमें अनेक पात्रों के क्रिया-कलाप, युद्ध-कौशल तथा अन्य कृत्यों के तो दर्शन हो रहे हैं पर दर्शक पात्र के दर्शन

के लिये केवल उत्सुकता लिये ही रह जाता है ।

रंगमंच पर कम से कम पात्रों को प्रस्तुत करते हुए भी सम्पूर्ण दृश्यों और कथानकों को प्रत्यक्ष कर दिखाने की कविवर महादेव की शैली भी अद्भुत ही है । एक ओर जहां प्रसिद्ध पात्रों का नाटक में अमूर्त दर्शन होता है, वहीं कुछ अमूर्त पात्रों को रंगमंच पर प्रत्यक्ष करके कवि ने अपनी प्रतिभा की अद्भुत क्षमता का प्रदर्शन किया है । ऐसे ही दो पात्र हैं, लंका - जो रावण की राजधानी है और दूसरी पात्र है निकुम्भिला, जो मेघनाद की तपस्थली और दुर्ग भी है । यद्यपि उत्तर रामचरित में नाटककार भवभूति ने भी दो नदियों, तमसा और मुरला का मानवीकरण किया है पर महादेव के इन दोनों मानवीकृत पात्रों का उद्देश्य उत्तर रामचरित के इसी प्रकार के पात्रों से कहीं अधिक सार्थक है । इन दोनों पात्रों में जिस उद्देश्य की पूर्ति की है उससे सामान्य दर्शक एवं पाठक को बहुत कुछ उपलब्ध होता है ।

पाठकों ने संस्कृत के अनेक कवियों के ऐसे नाटक पढ़े होंगे जिनके संवाद वाक्य या कथोपकथन, भाषा की दुरूहता एवं समासाच्छन्न शैली की दुर्गमता में डूबकर रह गये हैं । वस्तुतः नाटक में कहे हुए संवाद दर्शक पर तत्काल प्रभाव डालें तभी उनकी सार्थकता सिद्ध होती है । महाकवि महादेव तो जैसे "नावक के तीर" चलाने में सिद्धहस्त हैं । उनके वाक्य सरल, स्वभावतः स्पष्ट एवं प्रभावी होते हैं । इस प्रकार के चुटीले, प्रभावी संवादों में,चाहे प्रथम अंक में राम-लक्ष्मण, जाम्बवान् का प्रकरण हो चाहे द्वितीय अंक में राम-लक्ष्मण के वार्तालाप का प्रसंग हो अथवा अन्य अंकों के संवाद हों, कवि की यह विशेषता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है । हां, कहीं-कहीं श्लोकों में तथा किन्हीं संवादों में भी विषय एवं रसानुकूल समस्तपदों का प्रयोग मिलता है किन्तु वह रस को अधिकाधिक प्रभावी ही बनाता है, जैसे मेघनाद के युद्ध का प्रकरण, कुम्भकर्ण का प्रकरण आदि ।

महाकवि महादेव ने सम्पूर्ण नाटक में अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है परन्तु शब्दार्थ के चमत्कार के लिये वे कहीं भी अलंकारों के चक्रव्यूह में

नहीं फंसे हैं । यही कारण है कि छन्दों का वाक्यविन्यास सरल, सार्थक और सटीक तो है ही उनमें प्रसाद का प्रभाव भी सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है ।

कवि महादेव के इस नाटक का एक मुख्य वैशिष्ट्य है विदूषक का प्रयोग । इसके पहले रामकथापरक नाटकों में विदूषक का प्रयोग नहीं होता था । इस नाटक में न केवल विदूषक को सफलतापूर्वक प्रस्तुत ही किया गया है अपितु रावण के नर्मसचिव के रूप में उसने जिन संवादों को प्रस्तुत किया है वह वस्तुतः कवि की प्रतिभा के ही परिचायक हैं । कामान्ध रावण विदूषक के व्यंग्य वाक्यों को नहीं समझ पाता किन्तु विदूषक महोदर उसकी मदान्धता एवं कामान्धता को सदैव इंगित करते हुए उसकी दुष्टता को व्यक्त करता है । महोदर तो यह भी कह देता है कि यदि राम जीवित रहेंगे तो सीता तुम्हारी ओर देखेगी भी नहीं और यदि राम मारे गये तो सीता जीवित ही नहीं रहेगी । इस प्रकार सीता के चरित्र की उज्ज्वलता को प्रकाशित करते हुए वह एक तरह से राम का सहयोगी ही सिद्ध होता है ।

नाट्यशैली की दृष्टि से भी यह नाटक उत्तम कोटि का नाटक है । कवि ने नाट्यशास्त्र के नियमों का पालन करते हुए ही इसकी रचना की है और अर्थोपक्षेपकों आदि का भी उचित प्रयोग किया है ।

अद्भुत दृश्यों से ओतप्रोत इस नाटक के कुछ प्रसंग भी अपने आप में अद्भुत ही हैं । कवि ने मंगलाचरण के रूप में जिस नान्दी का प्रयोग किया है वह भी अपने आप में एक अद्भुतरस की सृष्टि करता है । इसमें भगवान विष्णु की स्तुति की गई है जो अपनी पत्नी लक्ष्मी के पितागृह समुद्र में केवल इसलिये निवास करते हैं कि कदाचित् वैसी ही अन्य तरुणी वहां पुनः उपलब्ध हो जाय । कवि ने इसके माध्यम से उन लोगों पर भी व्यंग्य किया है जो ससुराल में पड़ाव डाले रहते हैं । यहां कवि ने उनकी नीयित पर भी चोट की है । वास्तव में कवि अपनीरचना को चमत्कारी बनाने का लक्ष्य निर्धारित किये हुए हैं । उनका दूसरा नान्दी श्लोक उनकी इसी आकांक्षा को व्यक्त करता है । इस श्लोक में

उन्होंने माँ शारदा की इसलिये वन्दना की है कि वे कवियों में विभिन्न प्रकार के चमत्कारी भावों को उत्पन्न करती हुई आत्मानन्द की एक समान अनुभूति कराती हैं। इसमें ब्रह्मानन्द की भावना रस में निहित रहने की बात भी व्यक्त की गई है।

इस प्रकार कवि का नाट्यपक्ष अत्यन्त ललित रहा है। शब्दप्रयोग में भी कवि की विशिष्टता दर्शनीय है। उन्होंने अनेक ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जो या तो दक्षिणभारत में संस्कृत में व्यवहृत होते थे अथवा इसकोभी कवि का एक अद्भुत प्रयोग ही माना जाएगा। ऐसे शब्द हैं जैसे - पर्वत की चोटी के लिये"श्रृंग" शब्द का प्रयोग, यज्ञभूमि के लिये "यज्ञवाट," यज्ञअग्नि सुरक्षा करने वाले के लिये "अंगति", नृत्य के लिये अंगहार, हिंसक पशु के लिये शरारु, राक्षसों के लिये"पलभुजा", प्राकार के लिये "साल" तथा सेना के लिये "पृतना" जैसे शब्दों के प्रयोग नाटक में यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं।

<u>रचना का उद्देश्य एवं सन्देश</u>

रामकथा का उद्देश्य तो सर्वविदित ही है। समाज के निर्माण और भारतीय संस्कृति की रचना में रामकथा का प्रमुख स्थान रहा है। किन्तु कविवर महादेव ने रामायण के युद्धकाण्ड को अपनी रचना का आधार बनाकर जो कुछ कहना चाहा है या समाज को जो सन्देश दिया है वह विचारणीय है।

सत्रहवीं शताब्दी में दक्षिण भारत में जन्म लेने वाले कवि महादेव का जीवन जिस प्रकार के वातावरण एवं सामाजिक परिवेश में व्यतीत हुआ, वह वस्तुतः भयंकर संघर्ष, युद्ध, विद्रोह एवं दमनकारी प्रशासन का घोर युग था। भारतभूमि पर मुगलों का शासन था। महाकवि महादेव के काल में शाहजहां एवं औरंगजेब का शासन भारतभूमि पर था। शाहजहां के शासनकाल में ही दक्षिण के राज्यों में निरन्तर विद्रोह और युद्ध होता रहता था। कभी सन्धि तो कभी युद्ध की परिस्थितियों से प्रजा और समस्त समाज को किस प्रकार जीवित रहने के लिये विवश होकर परिस्थितियों का सामना करना पड़ता था इसका ज्ञान निश्चित

चरम सीमा ही हो गई थी ।

सामाजिक परिस्थितियों के तत्कालीन प्रभाव ने ही कवि को राम-कथा के इस युद्ध प्रकरण को अपनी रचना की पृष्ठभूमि बनाने के लिये संभवतः प्रेरित किया है । छल-बल, कूटकला-कौशल से व्याप्त युद्धजीवन का जो जीवन्त चित्र कवि ने अपनी रचना में प्रस्तुत किया है वह निश्चित ही दक्षिण तो क्या समग्र भारत में हो रहे परिदृश्य का ही प्रतिबिम्ब है ।

यह वही समय था जब औरंगजेब ने अपने भाइयों की राज्य प्राप्ति के लिये हत्या करा दी थी । शासन के लिये भाई बन्धुओं की हत्या कराना तत्का-लीन शासकों का चरित्र था,इस बात की कवि ने भी माया अंगद के मुख से चर्चा की है[1]।

अनेक संवादों में कवि ने युद्ध वातावरण में विशेष व्यवहार का वर्णन भी किया है । यह युद्धनीति के विषय में कवि का उपदेश भी है, जैसे-

1. युद्ध में सूचना लाने वाले को औपचारिक प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए[2]।
2. ज्ञानी पुरुष प्रतिशोध के लिये समय की प्रतीक्षा करते हैं[3]।

- -

1. पुत्रान्घ्नन्ति विवासयन्ति च पितृन्भ्रातॄंश्च राज्येच्छया
   राज्ञामेष कुलक्रमस्तदधुना किं कुर्महे क्षम्यताम् ।
   -अद्भुतदर्पणम् 3/12

2. अर्थान्कार्योपयिकानावेदयितुं हितैषिणा राज्ञः ।
   नावसरः प्रतिपाल्यो विशेषतो विग्रहावतीर्णस्य ।।
   - वही 1/18

3. साधुसमयप्रतीक्षाः खलु मानिनः कृतामर्षाः ।
   - वही अंक । पृ 16

3. आपातकाल में सशंकित रहना भी गुण है[1] ।

4. अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुए बन्दी हो जाना भी खेद-जनक नहीं है । शम्बर के वाक्यों में कवि ने इसे भी स्पष्ट किया है[2] ।

कवि ने युद्ध समाप्ति के पश्चात् किये जाने वाले रचनात्मक कार्यों का भी आभास दिया है, जैसे -

1. न्यायशील राजा युद्धसमाप्ति के पश्चात् प्रहारों पर रोक, नगर में शान्ति, बन्दी मुक्ति तथा निर्विरोध संचार आदि का आदेश दिया करते थे । राम के द्वारा लंका युद्ध की समाप्ति पर दिये गये इसी प्रकार के आदेश के माध्यम से कवि ने इस बात को स्पष्ट किया है[3]।

2. युद्धसमाप्ति के पश्चात् टूट-फूट की मरम्मत तथा स्वच्छता आदि का प्रबन्ध भी किया जाता था[4] .

---

1. शंका हि गुणः संकटेषु । -अद्भुतदर्पणम् अंक 2 पृ 19

2. शम्बरः - (स्वगतम् विमृश्य ।) बद्धेऽपि मयि शक्यमिदानीं यातुधानैरध्यवसितुं यदेष निर्वर्तितकाद्रवेयावाहनः कुमारमेघनादः सिद्धिवद्मूलादुत्थितः स्वयमप्य-मित्रीणश्च संवृत्तः । - वही अंक 4 पृ 44

3. लंकारोधात्कपीनां विरमतु पृतना राक्षसेषु प्रहारः
सज्जोऽपि त्यज्यतां तेष्वपि चकिताः प्रद्रुताः सान्त्वनीयाः ।
स्कन्धावारे पुरे वा भवतु च परितः संचरो निर्विरोधो
लंका यातु प्रसादं पुनरपि च यथा मन्थमुक्ताब्धिवेला ।।

स्पर्धारब्धोऽपि सद्यः कपिपिशितभुजां संगरः शान्तिमेतु
प्रीतिश्चान्योन्यमेषामविरतमचलामृद्धिमधोऽभ्येषाम् ।
यो यो रुद्धः स सद्यः कपिषु निशिचरेष्वर्च्यतां मुच्यतां वा
लंकाकिष्किन्धयोर्द्रुममतिरकरोदैकराज्यप्रसादम् ।। - वही 9/15, 16

4. प्राकारगोपुरगृहोपवनप्रतोलीभागेषु भग्नविषमाणि समीक्रियन्ताम् ।
- वही 9/18

कवि का यह भी मन्तव्य है कि धार्मिक एवं न्यायशील राजा के आने पर प्रजा के विषाद की समाप्ति हो जाती है। लंका एवं निकुम्भिला के संवाद के द्वारा कवि ने अपने इस मत को व्यक्त किया है[1]। इसी के साथ उन्होंने प्रजा को यथा राजा तथा प्रजा का सन्देश भी दिया है। उन्होंने नये राजा के प्रति विश्वास की भावना तथा राजा को जनरंजन के लिये समर्पित होने की बात भी कही है। लंका और निकुम्भिला के संवाद के माध्यम से कवि यह भी कहना चाहते हैं कि राजा एवं प्रजा को महायज्ञ क्षेत्र अर्थात् समाज के हित में ही अपने को अर्पित करना चाहिये तथा पारस्परिक राज्यों में सख्यभाव की वृद्धि होनी चाहिये[2]।

इस प्रकार सम्यक् अध्ययन के उपरान्त यह सुनिश्चित हो जाता है कि आलोच्य नाटक अद्भुतदर्पणम् नाटक के समस्त लक्षणों से सम्पन्न है। अनेक अद्भुत एवं चमत्कारिक दृश्यों से सुसज्जित इस नाटक में वैष्णव दर्शन का पूर्णतया परिपाक हुआ है। आचार तथा सामाजिक मर्यादाओं के उपदेश के साथ ही, धर्म-समन्वय एवं वैचारिक उदारता के आधार पर यह नाटक सार्वभौम समाज में अपनी रचनात्मक भूमिका प्रस्तुत करता है।

इति शुभम्

---

1. तद्धर्मभूतविभीषणपालनेन
   सर्वोऽप्ययं शममुपैष्यति नौ विषादः ।। - अद्भुतदर्पणम् 9/9

2. - - - - - -
   घोराश्चारभूमिभावं परित्यज्य महायज्ञक्षेत्रभावश्चिरादुररीकर्तव्यः ।
   लंका - मया च मिथिलाकिष्किन्धाप्रभृतिभिर्नगरीभिः सह सखीभाव-
   मालम्ब्य - - - - - - - - -।

   -अद्भुतदर्पणम् अंक 9 पृ. 127

परिशिष्ट

[क] अद्भुतदर्पणगत सूक्तियां - वर्णक्रमानुसार ।

[ख] सहायक ग्रन्थ सूची - वर्णक्रमानुसार ।

परिशिष्ट – क

अद्भुतदर्पणगत सूक्तियां – वर्णक्रमानुसार

क्रम	सूक्ति	अंक	पृष्ठ
1.	अर्थान्कार्योपयिकानावेदयितुं हितैषिणा राज्ञः । नावसरः प्रतिपाल्यो विशेषतो विग्रहावतीर्णस्य ।।	1	12
2.	अनुचरविरहेऽपि सतामात्मौपयिकी क्रिया चलत्येव । नहि धूमविरतिखिन्नो विरमति शुष्कवनदाहतो वह्निः ।।	4	43
3.	अपि स्वैराचारैः कलुषमितरेषां शमयतः परश्लाघायत्ता भवति महतः स्वेषु शुचिता । अहल्यावैकल्यक्षपणमदरेणोरपि विभोः प्रमाणं वैदेहीचरितपरिशुद्धौ हुतवहः ।।	1	5
4.	आशंकिते सकृदसत्यपि वाच्यलेशे स्वस्त्रीसुतेष्वपि जनैः परिशोधनानि । शुद्धिप्रकर्षपिशुनान्यनुमन्यमाना मध्यस्थतापि ममतैव सतां विसृष्टा ।।	1	5
5.	कार्यार्थिनो हि समये सति विक्रियन्ते ।।	3	35
6.	धिग्जातिरीदृगपि जीवति जीवलोके हासाय केवलमशेषजगज्जनानाम् ।	1	21
7.	नष्टश्चेद्विपदादर्शः कुत्राभिव्यज्यतां धृतिः । न चेन्नैशं तमसकाण्डं को वेद ज्योतिरोषधेः ।।	2	27
8.	भ्रष्टस्य कान्या गतिः।	7	82
9.	मृतस्य सुप्तस्य न किंचिदन्तरमिति ।	5	56

		अंक	पृष्ठ
10.	युध्यन्वायमयुध्यन्वा सायुधोऽथ निरायुधः । तिष्ठन्पलायमानो वा दण्ड्यश्चोरो हि सर्वथा ॥	7	96
11.	शंका हि गुणः संकटेषु ।	2	19
12.	शंक्य:कार्यपरीप्सया परिजनो राजापि नन्वन्ततः स्यादेवं सति कष्टमेव न मिथः शंकेत कः शंकितः । शंका राजहृदि व्यनक्ति यदविश्वासोत्तरंगं भयं तत्प्राणान्तिकमेव हन्त धिगहो दुर्जीवितं मन्त्रिणाम् ॥	2	20
13.	साधुशभयप्रतीक्षाः खलु मानिनः कृतामर्षाः ।	1	16
14.	स्नेहनिवृत्तिरसूयाकोपो वैरम्यमीर्ष्येति । अप्रियवादिषु राज्ञामन्तःकरणानि भिद्यन्ते ॥	5	51
15.	क्षौद्रन्न क्षमते हिताय घटते मित्रेषु दत्ते मनः शंकास्थानविवर्जनैर्विवृणुते विश्वास्यतामात्मनः । नानिश्चित्य करोति नापि कुरुते मन्त्रैर्विना निश्चयं- स्वातन्त्र्यफलं बलोर्जितमपि स्वाम्यं नयत्यंगताम् ॥	2	21

परिशिष्ट "ख"

सहायक ग्रन्थ सूची

(वर्णक्रमानुसार)

1. संस्कृत ग्रन्थ

1. अथर्व वेद	स्वाध्याय मण्डल, पारडी, सूरत
2. अध्यात्म रामायण	गीताप्रेस गोरखपुर
3. अद्भुत रामायण	श्री वेंकटेश्वरस्टीम प्रेस खेतवाडी, मुंबई
4. अभिषेक नाटकम्	महाकवि भास, संस्कृत सेवा संस्थान, धर्मपुर, गोरखपुर
5. अष्टाध्यायी	महर्षि पाणिनि, चौखम्भा, वाराणसी
6. आनन्द रामायण	संस्कृति संस्थान, बरेली
7. आश्चर्यचूडामणि	महाकवि शक्तिभद्र, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, खेतवाडी, बम्बई
8. उत्तररामचरितम्	महाकवि भवभूति, नीलम प्रकाशन, आजमगढ़ (उ.प्र.)
9. ऋग्वेद संहिता, सं० सातवलेकर	स्वाध्यायमण्डल पारडी, सूरत
10. कठोपनिषद्	गीताप्रेस, गोरखपुर
11. काव्यप्रकाश	आचार्य मम्मट, साहित्य भण्डार शिक्षा साहित्य प्रकाशन, मेरठ
12. काव्यादर्श	आचार्य दण्डी, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
13. काव्यालंकारसूत्र	आचार्य वामन, आत्माराम एंड संन्स दिल्ली
14. काव्यालंकार	आचार्य भामह, बिहार राष्ट्रभाषा

15. कुवलयानन्द — अप्पय्य दीक्षित, निर्णयसागर प्रेस बम्बई

16. कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय ब्राह्मण — आनन्द आश्रम ग्रन्थावली, पुणे

17. कृष्णयजुर्वेदीय मैत्रायणी संहिता — आनन्द आश्रम ग्रन्थावली, पुणे

18. कृष्णयजुर्वेदीय मैत्रायणी संहिता-उपनिषद् — खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई

19. कौशिक गृह्यसूत्र — हरदत्त कृत टीका, कुम्भकोणम्

20. छन्दोमंजरी — गंगादास, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

21. छन्दोलंकार सौरभम् — डा॰ राजेन्द्र मिश्र, अक्षयवट प्रकाशन, प्रयाग

22. छान्दोग्योपनिषद् — संस्कृति संस्थान, बरेली

23. जानकीहरण — कवि कुमारदास – मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद

24. तैत्तिरीयारण्यक — आनन्दआश्रम ग्रन्थावली, पुणे

25. दशरूपकम् — आचार्य धनंजय, साहित्य भण्डार, मेरठ

26. ध्वन्यालोक — आचार्य आनन्दवर्धन, गौतम बुक डिपो, दिल्ली – 1952

27. नाट्यदर्पण — रामचन्द्र, गुणभद्र (हिन्दी व्याख्या) दिल्ली विश्वविद्यालय, 1961

28. नाट्यशास्त्रम् — आचार्य भरतमुनि, गायकवाड़ ओरिएन्टल सीरीज, बड़ौदा

29. निरुक्त — यास्कमुनि, बाल मनोरमा प्रेस, मद्रास

		भारतीय विद्याभवन, बम्बई
31.	पद्मचरितम्	रविषेणकृत, बम्बई विश्वविद्यालय प्रकाशन
32.	प्रतिमानाटकम्	महाकवि भास, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी
33.	प्रसन्नराघवम्	महाकवि जयदेव, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी
34.	बालरामायणम्	राजशेखर, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
35.	बृहद्धर्मपुराण	संस्कृति संस्थान, बरेली
36.	ब्रह्मसूत्र	गीताप्रेस, गोरखपुर
37.	भट्टिकाव्य [रावणवध]	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
38.	महाभाष्य	आचार्य पतंजलि, प्रसाद प्रकाशन पुणे 1956
39.	महावीरचरितम् [वीर चरित]	भवभूति, चौखम्भा विद्याभवन,वाराणसी
40.	मालविकाग्निमित्रम्	महाकवि कालिदास, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
41.	यजुर्वेद	स्वाध्याय मण्डल पारडी, सूरत
42.	योगवाशिष्ठ	गीताप्रेस, गोरखपुर
43.	रघुवंश	महाकवि कालिदास, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
44.	रामचरितम्	कवि अभिनन्द, गायकवाड़ ओरिएन्टल सीरीज संख्या 43, बड़ौदा

45.	राम-पूर्वोत्तरतापनीय उपनिषद्	संस्कृति संस्थान बरेली
46.	वाल्मीकीय रामायण	गौडीय पाठ, गीताप्रेस, गोरखपुर
47.	वाल्मीकीय रामायण	दाक्षिणात्य पाठ, गुजराती प्रिन्टिंग प्रेस, बम्बई
48.	वेणीसंहार	भट्ट नारायण, पं. छन्नूलाल ज्ञानचन्द, संस्कृत पुस्तकालय, कचौड़ी गली, वाराणसी
49.	वृत्तरत्नाकर	भट्ट केदार, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
50.	शतपथ ब्राह्मण	आनन्द आश्रम ग्रन्थावली, पुणे
51.	श्रीमद् भागवत पुराण	गीताप्रेस, गोरखपुर
52.	श्रुतबोध	कालिदास, बालमनोरमा प्रेस, मद्रास
53.	साहित्यदर्पण:	आचार्य विश्वनाथ, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी
54.	सेतुबन्धम्	कवि प्रवरसेन, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
55.	हनुमन्नाटक [महानाटक]	दामोदर मिश्र संकलन, खेमराज श्रीकृष्णदास, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, खेतवाडी मुंबई
56.	हरिवंश पुराण	गीताप्रेस, गोरखपुर

2. हिन्दी ग्रन्थ

57.	प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला, राजनीति, धर्म, दर्शन	डा. ईश्वर प्रसाद, मीनू पब्लिकेशन इलाहाबाद
58.	योगवाशिष्ठ और उसके	डा. भीखनलाल आत्रेय, इण्डियन बुक

59. रामकथा — फादर कामिल बुल्के, हिन्दी परिषद् प्रकाशन; प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

60. रामायणमीमांसा — स्वामी करपात्री जी, श्री काशी-विश्वनाथ प्रकाशन, कर्णघण्टा, वाराणसी

61. रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय — भगवतीप्रसादसिंह, बलरामपुर

62. विशाल संस्कृत साहित्य का इतिहास — प्रोफेसर एम.पी. काला, विशाल प्रकाशन, चन्दौसी

63. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास — डा. बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, रवीन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड वाराणसी

64. संस्कृत साहित्य का इतिहास — डा. बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन वाराणसी

65. हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता — बेनीप्रसाद, प्रयाग

3. <u>अंग्रेजी ग्रन्थ</u>

66. History of Sanskrit Poetics (H.S.P.) — P.V. Kane, Moti Lal Banarasi Das _ Delhi

67. History of Ancient Sanskrit Literature _ Max Muller, Allahabad.

68. History of Sanskrit Literature _ C.V.Vaidya, Pune

69. The Sanskrit Drama _ A.B.Keith, University Press

70. The Problem of the Mahanataka (IHQ) Vol. 7 — S.K. De; Calcutta

पत्रिकाएँ

1. कल्याण - विशेषांक - महाभारतांक — वर्ष - 1, संख्या 7, 8, 9, 10, 11, 12 - सन् 1956 गीताप्रेस गोरखपुर

2. कल्याण विशेषांक - श्रीरामांक — वर्ष-46, अंक- 1 जनवरी 1972 गीताप्रेस, गोरखपुर

3. नागरीप्रचारिणी पत्रिका — वर्ष - 54 अंक- 3. वाराणसी